सर्वोदय-समाज

ग्यारहवाँ वार्षिक सम्मेलन

अजमेर (राजस्थान)

[ता० २७, २८ फरवरी तथा १ मार्च १९५९]

विवरण

•

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, काशी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ
वर्धा (बम्बई-राज्य)

प्रतियाँ : १००००
मई, १९५९
मूल्य : एक रुपया

मुद्रक :
पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस,
गायघाट, वाराणसी

निवेदन

सर्वोदय में दिलचस्पी रखनेवाले भाई-बहन हर साल सम्मेलन में इकट्ठे होते हैं। वार्षिक सम्मेलन की यह प्रथा १९४९ में शुरू हुई और अभी फरवरी-मार्च १९५९ में अजमेर में ग्यारहवाँ सर्वोदय-सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इस वार्षिक मेले का—वास्तव में यह एक 'मेला' ही है—महत्त्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है और चूंकि सर्वोदय-विचार धीरे-धीरे एक आन्दोलन का रूप ले रहा है, इसलिए इस मेले के स्वरूप में भी एक सहज परिवर्तन होता जा रहा है। सर्वोदय-समाज की स्थापना के प्रत्यक्ष प्रयत्न के रूप में जब भूदान-यज्ञ की शुरुआत हुई और उसने उत्तरोत्तर गति पकड़ी, तो यह स्वाभाविक ही था कि यह वार्षिक सम्मेलन केवल विचारों के आदान-प्रदान का ही मौका न रहे, बल्कि जो हजारों लोग इस आरोहण के काम में लगे हैं, उनके लिए अपने पिछले काम की समीक्षा, अनुभवों के आदान-प्रदान और आगे के कार्यक्रम के बारे में स्पष्टता कर लेने का अवसर बन जाय। अतः सम्मेलन के कार्यक्रम और पद्धति में विकास और आवश्यक परिवर्तन होता रहा है।

इस विकास का प्रतिबिम्ब पाठकों को सम्मेलन के इस विवरण में मिलेगा। इस विवरण में केवल सम्मेलन के तीन दिनों की कार्रवाई ही नहीं, लेकिन उसके साथ-साथ जो अन्य महत्त्व की प्रवृत्तियाँ जुड़ गयी हैं, उनका भी लेखा दिया गया है। सम्मेलन हर सर्वोदय-प्रेमी के लिए खुला है। देश के कोने-कोने से और विदेशों से भी, हजारों लोग उसमें एकत्र होते हैं। सम्मेलन में आनेवालों की संख्या भी दिनोंदिन बढ़ रही है। दूसरी ओर यह आवश्यकता भी अधिकाधिक महसूस होने लगी कि प्रत्यक्ष काम के संबंध में ऊपर बताये अनुसार विचार-विनिमय आवश्यक है, जो इतने बड़े सम्मेलन में संभव नहीं होता और देशभर से कार्यकर्ताओं का एक जगह एकत्र होना भी बार-बार संभव नहीं होता। इसलिए गये साल पंढरपुर के सम्मेलन से सम्मेलन के तुरंत पहले आन्दोलन के प्रत्यक्ष काम में लगे हुए देश के भिन्न-भिन्न हिस्सों के १००-५० कार्यकर्ताओं के एक परिसंवाद की योजना शुरू हुई है। अजमेर-सम्मेलन के पहले भी

हट्टुण्डी में चार दिन का एक परिसंवाद आयोजित किया गया था। परिसंवाद की योजना में, उसकी कार्य-पद्धति आदि में, अनुभव से और भी सुधार होंगे; पर यह परिपाटी उपयोगी साबित हो रही है। इस विवरण में परिसंवाद की चर्चाओं का समावेश भी किया गया है।

सम्मेलन के साथ प्रदर्शनी का आयोजन भी सहज ही जुड़ गया है। सर्वोदय-सम्मेलन के साथ होनेवाली प्रदर्शनी का एक विशेष उद्देश्य होना चाहिए। उससे लोगों को सर्वोदय की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिलनी चाहिए। यह प्रदर्शनी 'बाजार' तो हो ही नहीं सकती, केवल खादी-ग्रामोद्योग आदि की प्रक्रियाओं का या चीजों का प्रदर्शन भी वह नहीं हो सकती। इस वर्ष अजमेर में जो प्रदर्शनी खड़ी की गयी, उसके पीछे एक नयी दृष्टि थी। पू० विनोबाजी के शब्दों में "अजमेर-सर्वोदय-सम्मेलन के साथ जो प्रदर्शनी हुई थी, वह बहुत ही व्यवस्थित और सुन्दर रही। इसमें आप लोगों ने जो दृष्टि रखी, वह मुझे हृदयंगम हुई।" प्रदर्शनी के उद्‌घाटन भाषण में श्री जयप्रकाशजी ने भी प्रदर्शनी के इस नये दृष्टि-कोण और उपयोग का अच्छा विवेचन किया था। चूंकि अजमेर-सर्वोदय-सम्मेलन में प्रदर्शनी के काम को एक नयी दिशा मिली है, इसलिए यह कोशिश की जा रही है कि इस प्रदर्शनी का एक विस्तृत विवरण और विवेचन अलग से छपे।

सम्मेलन का स्थान तय करने में एक महत्त्व की दृष्टि यह रहती है कि वह जन-साधारण का श्रद्धा-स्थान हो। काशी, बोधगया, जगन्नाथपुरी, कांचीपुरम्, कालड़ी, पंढरपुर आदि जिस तरह हिन्दुओं के श्रद्धा-स्थल थे, उसी तरह अजमेर हिन्दुस्तान का ही नहीं, बल्कि पाकिस्तान के मुसलमानों का भी एक आदरणीय श्रद्धा-स्थल है। सम्मेलन के लिए अजमेर का चुनाव करने में यह दृष्टि भी थी। सम्मेलन के दौरान में १ मार्च को सवेरे विनोबाजी देश के कोने-कोने से आये हुए सर्वोदय-सेवकों और दर्शकों के एक विशाल समुदाय के साथ ख्वाजासाहब की दरगाह में दर्शनार्थ गये। वहाँ जनमेदिनी के सामने विनोबाजी का प्रवचन भी हुआ।

सर्वोदय-सम्मेलन के साथ सफाई-शिविर की प्रवृत्ति उसका एक अभिन्न और उपयोगी अंग बन गयी है। श्री कृष्णदास शाह, श्री अप्पासाहब पटवर्धन और दूसरे सफाई-विशेषज्ञों के सहयोग और प्रेरणा से हर साल लगभग १०० कार्य-

कर्ता सम्मेलन से कुछ समय पहले ही सम्मेलन-स्थान पर आ जाते हैं। सम्मेलन की सफाई की सारी व्यवस्था खड़ी करने और उसका जिम्मा उठाने का काम तो यह कार्यकर्ता करते ही हैं, साथ में उनका शिक्षण भी होता है।
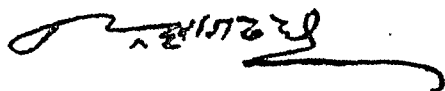
सम्मेलन के अवसर पर विनोवाजी भिन्न-भिन्न प्रांतों से आये हुए लोगों से अलग-अलग मिलते रहे हैं। इस वर्ष श्री जयप्रकाशजी का भी इस प्रकार प्रांतीय कार्यकर्ताओं से मिलने का कार्यक्रम रखा गया था। सम्मेलन के अवसर पर एक विशेष आयोजन देशभर के खादी-ग्रामोद्योग के कार्यकर्ताओं के सम्मेलन का था। संघ की खादी-ग्रामोद्योग-समिति और खादी-कमीशन के सहयोग मे यह उपयोगी आयोजन हुआ। इसी प्रकार महिलाओं का एक सम्मेलन अलग से आयोजित किया गया, जिसमें स्त्री-शक्ति के वारे में विनोवाजी का एक मार्मिक प्रवचन हुआ। कुछ साहित्यिक भी अजमेर-सम्मेलन के अवसर पर इकट्ठे हुए थे, जिन्हें श्री विनोवाजी ने अलग से संवोधित किया। भारत-सेवक-समाज के कार्यकर्ताओं के वीच भी विनोवाजी ने प्रवचन किया।

सम्मेलन खतम होने के दूसरे दिन सवेरे श्री विनोवाजी अगले पड़ाव के लिए रवाना हुए। इस अवसर पर हिंदुस्तानभर के शांति-सैनिकों का एक कूच आयोजित किया गया था। इस प्रकार शांति-सैनिकों की अखिल भारतीय 'रैली' होने का यह पहला ही मौका था। करीव ९०० स्त्री-पुरुष शांति-सैनिकों ने श्री विनोवाजी के नेतृत्व में अजमेर से आगे के पड़ाव गगवाना तक करीव ९ मील तक व्यवस्थित कूच किया। यह कूच अजमेर-सम्मेलन की एक विशेषता थी।

इस प्रकार अजमेर-सर्वोदय-सम्मेलन की इस रिपोर्ट का दायरा थोड़ा व्यापक करके सम्मेलन और सम्मेलन के साथ होनेवाली प्रवृत्तियों का विवरण इसमें जोड़ दिया गया है। आशा है, यह रिपोर्ट न केवल रेकार्ड की दृष्टि से; वल्कि आगे के काम के लिए कुछ प्रेरणा और मार्ग-दर्शन पाने की दृष्टि से भी उपयोगी होगी।

काशी
१४-४-'५९

अनुक्रम

पहला दिन : ता. २७ फरवरी, १९५९

दूसरा दिन : ता. २८ फरवरी १९५९

तीसरा दिन : १ मार्च, १९५९

पहली बैठक

दूसरी बैठक

परिशिष्ट

अध्यक्ष श्री केलप्पन

श्री कृष्णराज मेहता राष्ट्रपति का सन्देश सुनाते हुए

विनोवा दर्शकों के वीच

दरगाह में विनोवाजी का सम्मान

अखिल भारत

सर्वोदय-समाज-सम्मेलन

सर्वोदयनगर, अजमेर

ग्यारहवाँ अधिवेशन

ता० २७, २८ फरवरी तथा १ मार्च १९५९

पहला दिन

शुक्रवार, २७ फरवरी, १९५९ : तीसरे पहर २॥ बजे

(खुला अधिवेशन)

अखिल भारत सर्वोदय-समाज-सम्मेलन के ग्यारहवें अधिवेशन की विधिवत् कार्रवाई शुक्रवार ता० २७ फरवरी, १९५९ को अजमेर शहर से बाहर बनाये गये सर्वोदयनगर के विशाल सभामंडप में तीसरे पहर ढाई बजे शुरू हुई। प्रारंभ में आधा घंटा सामुदायिक सूत्र-यज्ञ हुआ। ३ बजे वनस्थली-विद्यापीठ (राजस्थान) की छात्राओं ने 'शान्ति के सिपाही चले चले' शीर्षक कूच-गीत (मार्चिङ्गसाँग) गाया। उसके बाद उन्होंने ही 'तुम आओजी ......' शीर्षक राजस्थानी स्वागत-गीत गाया। तत्पश्चात् श्री वल्लभस्वामी ने प्रास्ताविक भाषण किया।

वल्लभस्वामी :

गुरुजनो, भाइयो और बहनो, सर्वोदय-समाज का यह ग्यारहवाँ सम्मेलन आज यहाँ राजस्थान में हो रहा है। इस सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए

श्री केलप्पनजी से विनती की गयी थी। उसे उन्होंने स्वीकार किया है। उनका परिचय कराने का काम मुझे सौंपा गया है।

केलप्पनजी केरल के हैं। सत्तर साल से अधिक उनकी उम्र है। पिछले चालीस बरस से उनका जीवन रचनात्मक काम और लोक-सेवा में बीतता आया है। फिर भी यहाँ उनका परिचय देना पड़ रहा है। इससे मुझे एक किस्सा याद आता है।

बापू की मृत्यु के बाद सन् '४८ में—सेवाग्राम में गांधीजी के सहकारियों और अनुयायियों का एक सम्मेलन हुआ था। उसमें राजेन्द्रबाबू, जवाहरलालजी, मौलाना, कृपालानीजी वगैरह नेता आये थे। उस सम्मेलन में बोलते हुए बाबा ने कहा था : "हम सब एक ही परिवार के—गांधी-परिवार के—लोग हैं, पर मुझे नहीं लगता कि इससे पहले कभी हम सब इतनी देर एक साथ बैठे हों। इसमें हमारा दोष नहीं है। अगर दोष है, तो वह उसका है, जिसने अपना परिवार इतना बड़ा बनाया।" इसी तरह केलप्पनजी का परिचय यहाँ देना पड़ रहा है, इसका अर्थ इतना ही है कि हमारा परिवार बहुत बड़ा है।

केलप्पनजी की उच्च शिक्षा मद्रास के क्रिश्चियन कॉलेज में हुई थी। वहाँ के प्रिन्सिपल और प्राध्यापकों से ही उन्हें लोक-सेवा की प्रेरणा मिली। अर्थात् गांधीजी के भारतीय राजनीति में आ जाने से पहले ही केलप्पनजी के जीवन में परिवर्तन हो गया था। उन्होंने अपने पिताजी को लिखा था कि "आपने सोचा होगा कि मैं वकील-बैरिस्टर बनकर पैसा कमाऊँगा; मगर आप वैसी आशा अब न रखें। मैंने जन-सेवा करने का निश्चय कर लिया है।"

आगे चलकर १९२० में गांधीजी और उनके आन्दोलन के साथ सम्बन्ध आने पर वे गांधीजी के भक्त और अनुयायी बन गये। सन् १९२५ में वायकम् (केरल) का प्रसिद्ध हरिजन-सत्याग्रह हुआ। यह सत्याग्रह हरिजनों को मन्दिर-प्रवेश दिलाने के लिए नहीं, बल्कि केवल इस बात के लिए था कि हरिजनों को मन्दिर के आसपास के रास्तों पर से चलने की इजाजत हो। दक्षिण में अस्पृश्यता इतनी गहरी थी कि अछूतों को देखना भी पाप समझा जाता था। इस अन्याय के विरुद्ध केलप्पनजी ने जो सत्याग्रह शुरू किया था, उसका निरीक्षण करने के लिए बापू ने बाबा को भेजा था। उस समय उन दोनों का परिचय हो गया।

गांधीजी के नेतृत्व में हुए प्रत्येक स्वतंत्रता-आन्दोलन में केलप्पनजी ने भाग लिया है।

सन् १९३३-३४ में बापू ने अस्पृश्यता-निवारण का काम जोरों से चलाया। उन दिनों भारत में ख्यातिप्राप्त गुरुवायूर के मन्दिर में हरिजनों को प्रवेश दिलाने के लिए केलप्पनजी ने उपवास किया था। बापू के आग्रह के कारण उन्होंने उस वक्त वह उपवास बाद में छोड़ दिया था।

केलप्पनजी पहले कांग्रेस में थे, फिर प्रजा-समाजवादी पक्ष में गये। उस पक्ष में रहते हुए उनका ध्यान भूदान की तरफ था और उस काम में वे मदद भी देते थे। आगे चलकर बाबा की केरल-यात्रा में वे उनके निकट संपर्क में आये। एक दिन बाबा ने उन्हें राजनीति और लोकनीति की बात समझायी, तो वह उन्हें इतनी जँच गयी कि उन्होंने तुरन्त पक्ष-मुक्ति का निर्णय कर लिया और भूदान के काम को पूरी शक्ति के साथ उठा लेने की अपनी प्रतिज्ञा बाबा को पत्र लिखकर प्रकट की। उसे पढ़कर बाबा ने कहा कि मेरी केरल-यात्रा सफल हुई।

केरल में बाबा ने शान्ति-सेना का प्रस्ताव रखा, तो केलप्पनजी उसके सर्व-प्रथम सैनिक बने। उसके बाद केरल में विद्यार्थियों का आन्दोलन शुरू हो गया। यह आन्दोलन इतना बढ़ गया कि उसे रोकने की सामर्थ्य किसी पक्ष में नहीं रही। तब शान्ति-सैनिक के नाते केलप्पनजी आगे बढ़े और उन्हींके प्रयत्नों से वह आन्दोलन समाप्त हुआ।

केलप्पनजी अपने काम में इतने तन्मय हो गये हैं कि काम छोड़कर कहीं जाने को भी तैयार नहीं होते। मैंने उनसे ३० जनवरी से १२ फरवरी तक के अरसे में बँगलोर आकर थोड़ा समय देने की प्रार्थना की थी, तब उनका जो पत्र आया था, उसका कुछ अंश मैं आप लोगों को पढ़ सुनाता हूँ। (अंग्रेजी पत्र का अंश पढ़ सुनाया, जिसका सारांश यह था कि मैं अपने काम में गड़ जाना चाहता हूँ। केवल सर्वोदय-सम्मेलन के लिए ही मैं केरल से बाहर जाऊँगा, अन्यथा नहीं।) केलप्पनजी जिस किसी काम को उठाते हैं, उसे पूरा करके ही छोड़ते हैं। उनके प्रति सबके मन में प्रेम और आदर है। उनका नाम के० केलप्पन है। उसमें 'के०' शब्द का क्या अर्थ है, यह मुझे बताया गया था, पर वह तो मैं

भूल गया। मैंने अपने विचार में और ही अर्थ लगा रखा है। के० का अर्थ मैं केरल करता हूँ।

मुझे आशा है कि केलप्पनजी की अध्यक्षता में हमारा यह सम्मेलन पूरी सफलता के साथ सम्पन्न होगा।

गोकुलभाई भट्ट (राजस्थान) :

राजस्थान की जनता की ओर से मैं आप सबका हार्दिक स्वागत करता हूँ। हमारे अभिवादन के प्रतीक के तौर पर मैं यह सूत की माला अध्यक्षजी को पहनाता हूँ।

आपका स्वागत करते समय एक तरफ से मेरे हृदय में आनंद की लहर दौड़ रही है, तो दूसरी तरफ हमारी अपूर्णताओं का प्रदर्शन भी मेरी आँखों के सामने आ रहा है। परंतु मुझे पूरा विश्वास और श्रद्धा है कि आप हमारी त्रुटियों पर ध्यान नहीं देंगे, इसलिए आपका स्वागत करने में मुझे कोई भार नहीं लगता।

जब बाबा की यात्रा किसी प्रदेश में चलती रहती है, तब उस प्रदेश में सम्मेलन का प्रबन्ध करना कुछ कठिन हो जाता है; क्योंकि कार्यकर्ताओं की शक्ति दोनों कामों में बँट जाती है। फिर भी हमने सम्मेलन करना स्वीकार किया, क्योंकि साथियों ने हिम्मत बँधायी कि हम ये दोनों काम एक साथ कर सकेंगे। बाबा के तथा गुरुजनों के आशिष से हमने जैसा भी बन पड़ा, यह काम कर दिया है।

मैं यहाँ राजस्थान की पुरानी गाथाओं को दुहराकर आपका कीमती समय जाया नहीं करूँगा। फिर भी मुझे एक घटना याद आती है। राजस्थान में प्रवेश करने के बाद बाबा ने एक दिन एक टेकरी पर प्रार्थना की थी। उस वक्त उन्होंने कहा था कि "ऐ प्रताप, तेरी वीरभूमि में मेरे शान्ति-सैनिकों को तू भेज दे।" मुझे पूरा विश्वास है कि बाबा की माँग इस प्रदेश से अवश्य पूरी हो जायगी; क्योंकि राजस्थान का हृदय हरा-भरा और भक्तिवान् है। हम गांधीजी का और बाबा का सन्देश लेकर जब गाँवों में जाते हैं, तब देखते हैं कि लोगों में बड़ा उत्साह है। वे यह समझ गये हैं कि यह काम बड़ा क्रान्तिकारी है। ग्रामदान का सन्देश सुनने के बाद लोग आ-आकर हमसे कहते हैं कि हम अपनी सारी

भूमि ग्रामदान में देना चाहते हैं। उनका वह उत्साह देखकर हम जैसे छोटे कार्यकर्ताओं की हिम्मत बढ़ती है।

बाबा की यह राजस्थान की दूसरी पदयात्रा है। मैं तो इसे मार्ग-यात्रा ही कहता हूँ। पहली बार वे राजस्थान में तब आये थे, जब वे योजना-आयोग के सदस्यों से मिलने के लिए पैदल दिल्ली जा रहे थे। उस समय धौलपुर में पहला भूदान हुआ था। इस बार बाबा के राजस्थान में प्रवेश करते ही ग्रामदान की धूम मच गयी। अब तक राजस्थान के डूंगरपुर, बाँसवाड़ा के सघन क्षेत्र में लगभग १५० ग्रामदान मिले हैं।

मगर बाबा की भूख-प्यास बड़ी अजीब है। वह इतने से नहीं बुझती। वह तो बढ़ती ही जाती है। वे तो दौड़नेवाले हिरन की तरह छलाँगें भरते हुए भागते हैं। इसीलिए हम बीच-बीच में पिछड़ जाते हैं। फिर भी उनका आदर्श सामने रहने से हिम्मत करके आगे बढ़ने की चेष्टा करते रहते हैं।

ग्रामदान तो बढ़ने ही चाहिए। मगर ग्राम-स्वराज्य के बिना ग्रामदान व्यर्थ है। सच्चे ग्राम-स्वराज्य की मिसाल शांति-सैनिक ही पेश कर सकेगा। इस काम में प्राणार्पण कर देनेवाले शांति-सैनिक राजस्थान की वीरभूमि से मिलेंगे, ऐसी आशा हमसे रखी गयी है। आप हमें आशीर्वाद दें कि इस आशा को हम पूरा कर सकें।

फिर एक बार मैं आप लोगों का स्वागत-समिति की ओर से स्वागत करता हूँ और अपने दोषों एवं त्रुटियों की क्षमा चाहता हूँ।

अधूरो अधूरो स्वागत म्हारो।
मानो मधूरो भाई·······

कृष्णराज मेहता :

जिन सज्जनों को यहाँ आने के लिए निमंत्रित किया गया था, उनमें से जो यहाँ पधारे हैं, उनका मैं स्वागत करता हूँ। हम तो सभी पंथों-पक्षों के सज्जनों को निमंत्रण देते हैं, क्योंकि जैसा कि संत तुकड़ोजी ने कहा है :

सबके लिए खुला है, मंदिर यह हमारा !

जो सज्जन किसी कारणवश यहाँ नहीं आ सके, उन्होंने अपने सन्देश भेजे हैं। उनमें से कुछ महानुभावों के सन्देश पढ़ सुनाता हूँ :

नीचे लिखे सन्देश पढ़ सुनाये : १. राष्ट्रपतिजी का सन्देश, २. प्रधान-मंत्रीजी का सन्देश, ३. आचार्य दादा धर्माधिकारीजी का पत्र तथा ४. श्री जेड० ए० अहमद का सन्देश।

सन्देश

मेरा यह सौभाग्य रहा है कि गत कई वर्षों से सर्वोदय के वार्षिक सम्मेलनों में भाग लेता आया हूँ और प्रतिवर्ष वहाँ से एक नयी प्रेरणा ग्रहण करता रहा हूँ। इसलिए मुझे इस बात का खेद है कि इस वर्ष किन्हीं कारणों से अजमेर में होने-वाले सर्वोदय-सम्मेलन में भाग लेना मेरे लिए सम्भव नहीं होगा।

सर्वोदय-विचारधारा प्रधानतः जीवन के सात्त्विक तत्त्वों पर आश्रित है। किसी भी युग में इस विचारधारा की उपादेयता नन्देह से ऊपर मानी जा सकती है। किन्तु मैं समझता हूँ कि आधुनिक युग में इसकी विशेष आवश्यकता है। विज्ञान के बड़े-से-बड़े चमत्कार और क्रान्तिकारी आविष्कार भी एक ठोस सचाई को धूमिल नहीं कर सकते। वह सचाई है, मानव की आन्तरिक क्षमताओं और प्रवृत्तियों का बल। इन प्रवृत्तियों के विकास द्वारा ही मानव सच्ची उन्नति कर सकता है और द्वेष तथा संघर्ष पर विजय पा प्रकृति के वरदान का उपभोग कर सकता है। सर्वोदय की भावना इन प्रवृत्तियों को जाग्रत कर मानव-समाज को सच्चे सुख और समृद्धि के निकट लाने की क्षमता रखती है। मेरी यह कामना है कि आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व में संचालित यह आन्दो-लन दिनोंदिन व्यापक और लोकप्रिय हो। अजमेर-अधिवेशन के लिए मैं अपनी शुभकामनाएँ भेजता हूँ।

राष्ट्रपति भवन, नयी दिल्ली

२३-२-'५९ **—राजेन्द्रप्रसाद**

अजमेर में होनेवाले सर्वोदय-सम्मेलन को मैं अपनी शुभकामनाएँ भेजता हूँ। सर्वोदय एक आदर्श है। लेकिन इस आदर्श को ध्यान में रखना अच्छा है।

आचार्य विनोबा भावे, जो सर्वोदय के प्रतीक हैं और जिन्होंने इसका संदेश हिन्दुस्तान के अनगिनत गाँवों में पहुँचाया है, ऐसी चीज का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो हिन्दुस्तान के अपने संदेश का प्राण है। राजनीति की दलदलभरी दुनिया में वह एक मशाल की तरह हैं, जिससे चारों तरफ से अक्सर घेर लेनेवाले अँधेरे पर रोशनी पड़ती है।

नयी दिल्ली

२५-२-'५९ (अंग्रेजी से) —जवाहरलाल नेहरू

प्रिय कृष्णराज भाई,

आपका ता० २० फरवरी का पत्र मिला। नवेगाँव (छिंदवाड़ा) सॅनिटोरियम के डॉ० सेन, होमियोपैथ में मेरी श्रद्धा है। वे ता० १० को काशी आये थे। उनकी सम्मति से मैं ता० १२ को रवाना होकर ता० १३ को यहाँ पहुँचा। ता० १५ को खून और पेशाब की परीक्षा की गयी। सब कुछ ठीक निकला। (ता० १९ को डॉ० सेन की सम्मति से 'कार्बंकल' चीर दिया गया। तब से रोज सुधार हो रहा है।) टेंपरेचर मुँह में ९८'५ तक रहता है। घूम-फिर सकता हूँ। सीढ़ियाँ भी चढ़-उतर सकता हूँ। खाने में पथ्य-परहेज कुछ नहीं। दर्द नहीं, जलन नहीं। फोड़ा घर पर ही चीरा गया। ड्रेसिंग घर पर ही होता है। इतनी शान जिस बीमारी में है और इतना कम कष्ट है, उसके लिए चिंता का कोई कारण है ? आप निश्चिन्त होकर अपना काम करें।

संदेश मेरे पास कोई नहीं। सारी जीवन-यात्रा में स्वजनों का और मित्रों का निरपेक्ष स्नेह ही मेरा बल और संबल है। अपनी अंटी में कुछ नहीं है। न अर्थ है, न परमार्थ है। साथियों और स्वजनों के स्नेह के कारण बादशाही जुलूस की तरह बड़े ठाठ-बाट से जीवन-यात्रा व्यतीत हो रही है। संस्था, संविधान, शासन-सत्ता, दंड और संपत्ति किसीने छेड़छाड़ नहीं की। अब ऐसे जीवन में संदेश क्या हो ? जो कुछ है, सब आप लोगों का है। मित्र ही मेरे क्षितिज के सूर्य हैं और दोस्ती ही रोशनी है।

पू० विनोबा को प्रणाम। स्नेहाधीन

टिकेकर रोड, धंतोली, नागपुर —दादा धर्माधिकारी

२३-२-'५९

मैं आपके सम्मेलन की पूरी कामयाबी चाहता हूँ। मैं उन लोगों में से हूँ, जिनकी यह पक्की राय है कि हमारी दुखी मानवता की बेहतरी के लिए सब ईमानदार और देशभक्त आदमियों को मिलकर एक हो जाना चाहिए। अपने देश के किसानों को सदियों पुरानी गुलामी में से मुक्त कराने का काम ऐसा ऊँचा है कि देशहित की चिन्ता करनेवाले हर आदमी को इसमें मदद देना चाहिए। और इस दिशा में जो शानदार काम आप कर रहे हैं, उसके लिए आपको मुबारकबाद देता हूँ। मेरी अदना सेवाएँ आपकी खिदमत में हर वक्त हाजिर हैं।

(अंग्रेजी से) —जैनउल आब्दीन अहमद

(जेड० ए० अहमद)

अध्यक्ष (केलप्पन) :

[श्री केलप्पन मलयालम् में बोले, जिसका हिन्दी अनुवाद श्रीमती राजम्मा बहन साथ-साथ सुनाती गयीं।]

मुझे खुशी है कि मेरे मित्र श्री वल्लभस्वामी ने मेरे बारे में जो कुछ कहा, उसे मैं ठीक तरह से नहीं समझ पाया। इसलिए उनकी स्तुति ने शरमाने की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरी योग्यता के कारण नहीं, बल्कि इस देश की एकता को दृढ़ बनाने के लिए ही मुझे इस पद पर चुना गया है। सर्वोदय-सम्मेलन में सबसे निचले आदमी को भी सबके समान माना जाता है। मेरी यह नियुक्ति इसी तथ्य का सबूत है।

हम देख रहे हैं कि हमारा यह आन्दोलन सफल होने जा रहा है। अतः इसे जल्दी सफल बनाने के लिए हमें फिर एक बार जोर से काम करना चाहिए।

मित्रो, मलयालम् का यह व्याख्यान मैं और आगे चलाना नहीं चाहता। मुझे आशा है कि आप लोग मुझे अंग्रेजी में बोलने की इजाजत देंगे। अगर मैं मलयालम् में बोलूंगा, तो १०-५ लोग ही उसे समझ पायेंगे। अंग्रेजी में ज्यादा लोग समझेंगे। अंग्रेजी में बोलने का दूसरा भी एक कारण है। जो लोग अंग्रेजी

को छोड़ दूसरी कोई भाषा नहीं जानते, उनका भी तो खयाल हमें रखना चाहिए। वे भी तो हमारे ही हैं। सर्वोदय-समाज में उनको भी उतना ही महत्त्व है, जितना हम सबको है। फिर इसका हिन्दी अनुवाद भी सुनाया जायगा। [अंग्रेजी भाषण पढ़ सुनाया, जिसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है :]

इस सम्मेलन का अध्यक्ष बनाकर आपने मुझे जो आदर दिया है, उसके योग्य मैं नहीं हूँ। फिर भी मैं यह सफाई नहीं देना चाहता कि मैंने इसे क्यों स्वीकार किया है। मैंने सर्व-सेवा-संघ और विनोबाजी की आज्ञा का पालन किया है। मेरे सामने कोई दूसरा रास्ता नहीं था। शान्ति-सैनिक होने के नाते बाबा का हुक्म मानने के सिवा मुझे कोई चारा नहीं था। वे मेरे सेनापति हैं।

हर साल विनोबाजी की मौजूदगी में सर्वोदय-सम्मेलन हुआ करता है। यहाँ का विशाल जन-समुदाय उनसे आशीर्वाद लेने और प्रेरणा पाने के लिए उत्सुक है। मुझे खुद उनसे मार्ग-दर्शन लेने की बड़ी लालसा है। इस सम्मेलन के अध्यक्ष होने की हैसियत से मेरा काम सिर्फ यह है कि मैं अपने अनुभव और कठिनाइयाँ बाबा के सामने पेश करूँ।

संसार का छोटा नमूना—ग्राम

अपने निजी ढंग से विनम्रतापूर्वक मैंने अपने को सर्वोदय-आन्दोलन के लिए समर्पण कर दिया है,क्योंकि मैं मानता हूँ कि दुनिया की समस्याओं के समाधान का एकमात्र वही रास्ता है। जिसे हम ग्राम कहते हैं, वह संसार का एक छोटा-सा, मगर सही नमूना है। जिस तरह गाँव के कुटुम्बों की आपस में इस बात के लिए लाग-डाँट चलती है कि गाँव की पैदावार का ज्यादा-से-ज्यादा हिस्सा मिल जाय और उनका अपना-अपना जीवन-स्तर ऊँचा उठे, उसी तरह दुनिया के देशों की आपस में इस बात की लाग-डाँट लगी रहती है कि उनका जीवन-स्तर ऊँचा उठे, आमदनी बढ़े, अपने कारखानों के लिए कच्चा माल मिले और उनके पक्के माल के लिए बाजार हाथ में आये। जिस तरह हर परिवार अपने लिए चिंता करता है, उसी तरह हर राष्ट्र अपने हितों के लिए चिंता करता है। अगर सहकार, सामुदायिक मालकियत और एकता की भावना से गाँव के मानव-समुदाय के मसलों का हल होता है, तो वही हल विश्व-समुदाय के मसले पर

लागू किया जा सकता है। ग्रामदान से जब गाँव की समस्याओं का समाधान हो जाता है, तो ग्रामदान से ही संसार की समस्याओं का भी हल हो जायगा।

सर्वोदय लक्ष्य, ग्रामदान साधन

हमारे देश के गाँव जीर्ण रोगों के शिकार हैं और जीर्ण रोगों के लिए अचूक दवाओं की आवश्यकता होती है। ग्रामदान इसी तरह की एक अचूक दवा है। ग्रामदान साधन है और सर्वोदय साध्य। यहाँ साधन और साध्य एक-से हैं। सारे रोगों की जड़ है निजी मालकियत। धन कमाने या बटोरने की इच्छा निजी मालकियत के कारण होती है। जहाँ आपने निजी मालकियत छोड़कर गाँव की मालकियत कबूल की कि नकशा बदल गया। सामूहिक हित के लिए काम कीजिये। समूह के हित में अपना हित समझिये। प्रतियोगिता की जगह सहकार अपनाइये। सर्वोदय हमारा लक्ष्य है, जिसकी प्राप्ति का मार्ग ग्रामदान है।

सर्वोदय एक अत्यन्त क्रांतिकारी विचार है। सर्वोदय—सबका हित—से बढ़कर कोई आदर्श हो नहीं सकता। गुलामी से आजादी की ओर बढ़ना भी एक ऐसा ही क्रांतिकारी लक्ष्य था। जब एक साल में स्वराज्य-प्राप्ति का आश्वासन दिया गया, तो सारे देश में उत्साह छा गया और स्वतंत्रता-संग्राम में हजारों की तादाद में लोग कूद पड़े। इसी तरह से सर्वोदय के द्वारा सारे देश में उत्साह आना चाहिए। संघर्ष, दारिद्र्य और मुसीबतों से भरी इस दुनिया में वह बड़ा बहादुर जीव होगा, जो यह कहेगा कि बिना किसी अपवाद के सबके हित से कम में संतोष कर लेगा। दक्षिण भारत के राष्ट्रीय कवि, मानवता के सच्चे प्रेमी और दूरदर्शी विचारक श्री सुब्रह्मण्यम् भारती ने कहा है : "अगर एक आदमी भी बिना खाये रहता है, तो यह दुनिया टुकड़े-टुकड़े हो जायगी। यह रहने लायक नहीं रहेगी।" सर्वोदय-आन्दोलन में भाग लेनेवालों के भीतर भी यही भावना रहती है।

भूमिदान और ग्रामदान

सर्वोदय-कार्यकर्ताओं को बेचैनी है कि सर्वोदय का काम तेजी से नहीं बढ़ रहा है। कुछ लोगों को ऐसा भी लगता है कि पलनी में निधि-मुक्ति और तंत्र-मुक्ति का फैसला समय के पूर्व हो गया और जब ५ करोड़ के लक्ष्य का केवल १०वाँ हिस्सा मिला था, तो भूदान छोड़कर ग्रामदान पर आ गये। उच्च

पदासीन मिनिस्टरों और व्यक्तियों को इस तरह की टीका करते हुए मैंने सुना है। इस पर मुझे यही कहना है कि वे समस्या को समझ ही नहीं पाये। मान लीजिये, हमने अपने लक्ष्य को हासिल करके जमीन भी बाँट डाली होती, तो कुछ लोगों के पल्ले तो खराब, बंजर जमीन पड़ती, जिससे गुजारे के लायक आमदनी भी नहीं निकल पाती। इसके बजाय वे लोग यह ज्यादा पसंद करते कि अगर किसी जमींदार की जमीन ज्यादा अच्छी हो और सिंचाई की सुविधा हो, तो उसके यहाँ मजदूरी का काम मिल जाय, जिससे कि बाल-बच्चों की परवरिश तो हो सके। लाजिमी तौर पर कुछ लोग जमींदार हो जाते और कुछ लोग मजदूरी करते। भूदान में तो अपनी जमीन का एक छोटा हिस्सा दिया जाता है। ग्रामदान में अपनी कुल जमीन की मालकियत ग्राम-समुदाय के सुपुर्द कर देते हैं। भूदान पहला कदम है और ग्रामदान आखिरी। भूदान से यह खयाल पैदा हो सकता है कि जमीन ईश्वर की है। जमीन थोड़ी है और उन लोगों के लिए है, जो इसके सहारे रहते हैं और यह केवल चन्द लोगों की बपौती नहीं हो सकती, लेकिन अगर भूमिदान का रूपान्तर ग्रामदान में नहीं होता, तो उससे भूमि-समस्या हल नहीं होगी। भूमिदान अपने में साध्य नहीं है।

किसान का सबसे अधिक शोषण

हिन्दुस्तान की ८० प्रतिशत जनता देहातों में रहती है। इसलिए ग्राम की सुख-समृद्धि ही देश की सुख-समृद्धि है। ग्राम की समृद्धि की कसौटी किसान की समृद्धि है। हमारे देश में सबसे ज्यादा शोषण किसान का ही होता है। वह अनपढ़ है, अज्ञानी है और हद दर्जे का गरीब है। साथ-ही-साथ वह हद दर्जे का कर्जदार भी है। उसका शोषण एक-दो ही नहीं, अनेक लोग करते हैं—जमींदार करते हैं, कारखानेदार करते हैं, महाजन-साहूकार करते हैं और संगठित मजदूर तक करते हैं। किसान का शोषण उत्पादक के तौर पर ही नहीं, उपभोक्ता के तौर पर भी होता है, क्योंकि वह सदा कर्जदार रहता है। इसलिए उसे अपनी चीज सस्ते-से-सस्ते बाजार में बेच देनी पड़ती है और चूंकि वह उधार खरीदता है, इसलिए उसे महँगे-से-महँगे बाजार में जरूरत की चीज खरीदनी पड़ती है। उसकी मुसीबतों का कोई अंत ही नहीं है।

निराकरण का एक ही मार्ग—ग्रामदान

उसकी मुक्ति का और भूमि-समस्या के निराकरण का रास्ता ग्रामदान ही है। ग्रामदान का अर्थ है—जमीन पर निजी मालकियत न हो, गाँव की मालकियत हो। कांग्रेस पार्टी केवल आधी दूर तक जाने को तैयार मालूम पड़ती है। उसका नागपुर प्रस्ताव कहता है कि भूमिवानों से बेशी ज़मीन लेकर पंचायतों को दे दी जाय और उस पर सहकारी ढंग से खेती हो। जो अच्छी और जरखेज जमीनें हैं, वे तो बदस्तूर सम्पन्न व्यक्तियों की जायदाद बनी रहेंगी और जो खराब और बंजर जमीनें हैं, वे पंचायत के पास पहुँचकर उन लोगों को बाँटी जायेंगी, जो सहकारी ढंग पर खेती करने को राजी हों। इससे न तो सब भूमिहीनों को भूमि मिल जायगी और न भूमि-समस्या ही हल होगी। सरकार को और ज्यादा जानदार भूमि-नीति अपनानी चाहिए। जिनके पास गुजारे का दूसरा कोई साधन नहीं है, उनको जमीन मिलनी चाहिए। जिसके पास आराम से जिंदगी बसर करने लायक आमदनी के पर्याप्त साधन हैं, उसे जमीन की जरूरत नहीं है। इसके विरुद्ध ऐसे परिवार हो सकते हैं, जिनकी रोजी के साधन मारे गये हैं और जिन्हें जमीन से ही अपनी गुजर करनी पड़ेगी। जमीन का इस तरह से सही और विवेकपूर्ण बँटवारा तभी संभव है, जब गाँव की कुल जमीन पर पंचायत की मालकियत हो। कोई ठोस नीति अपनाये बिना कुछ भूमि-सुधार कर देने से गाँव की समस्या हल नहीं हो सकती।

अदूरदर्शी औद्योगिक नीति

हमारी औद्योगिक नीति में भी दूरदर्शिता नहीं है और देश की जो माँग है, उसे वह पूरा नहीं करती। भारत की जो विचित्र परिस्थिति है, उसे वह नजर-अंदाज करती है। हम आँख मूँदकर एक ऐसे नमूने की नकल कर रहे हैं, जिसका हमारे देश की जरूरतों से मेल नहीं बैठता। हमारे देश में पूँजी बहुत कम है, लेकिन मनुष्य-शक्ति का भरपूर नाशवान् भंडार है। अकलमंदी इस बात में है कि इस मनुष्य-शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग किया जाय। हम गांधीजी की भक्ति करते हैं, लेकिन उनके अनुसार चलते नहीं हैं। उनका कहना है: "देश के भीतर की या बाहर की बड़ी-बड़ी मिलों से तैयार कराकर

हिन्दुस्तान को कपड़ा देना अव्वल दर्जे की और उसी तरह की आर्थिक भूल होगी, जिस तरह खास-खास केन्द्रों में बड़ी-बड़ी 'बेकरियों' से 'रोटी' बनवाकर और घरेलू रसोइयां को बरबाद कर घर-घर रोटी पहुँचाना एक भूल होगी। हिन्दुस्तान के लाखों देहाती साल में कम-से-कम ४ महीने मजबूरन बेकार रहते हैं। चरखे के पुनरुद्धार से हमारी आर्थिक समस्या एक झटके में ही हल हो जाती है।"

नागपुर-कांग्रेस का प्रस्ताव

करोड़ों की तादाद में रुपया उधार लेने से भी हमारी बेकारी का मसला हल नहीं हो पाया। दो पंचवर्षीय योजनाओं में करोड़ों रुपये नियोजित ढंग से खर्च करने पर भी अगर, जैसा कि ढेवर भाई ने अपने नागपुर-कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में कहा कि अमीर ज्यादा अमीर और गरीब ज्यादा गरीब होते जाते हैं, तो इसका अर्थ यह है कि हमारे नियोजन में कोई जबरदस्त दोष है। सर्वोदय-आन्दोलन देश की भयानक गरीबी और दर्दनाक बेरोजगारी मिटाने के लिए पूरी तरह से सरकार को सहयोग देने को राजी है। लेकिन हमारी निगाह में ग्रामदान ही इसका हल है। किसानों का संघटन करने में वह हमें मदद दे। अगर हम यह चाहते हैं कि किसान अपनी पूरी कोशिश से काम करे, तो जरूरत इस बात की है कि कर्ज के बोझ से उसे मुक्त किया जाय। यह ऐसा काम है, जो सरकार ही कर सकती है। सरकार कर्ज अदा करके किश्तों के रूप में वसूल कर सकती है। यह तभी हो सकेगा, जब सहकारी खेती हो और जमीन पर स्वामित्व गाँवों का हो। संसद् में राष्ट्रपति के भाषण की टीका का उत्तर देते हुए प्रधानमंत्री ने कहा है कि गाँववालों को सहकारी खेती का परामर्श देने के लिए वे गाँव-गाँव जाकर घर-घर समझाने को तैयार हैं।

ग्रामदानी गाँवों में प्रयोग करें

सहकारी खेती ग्रामदानी गाँवों में सबसे ज्यादा सफल होगी, जहाँ जमीन जरूरत के अनुसार बाँटी जा सकेगी। जब यह धमकी दी जा रही हो कि सहकारी खेती लादने से गृह-युद्ध हो जायगा, खून-खराबी हो जायगी और मनचले ज्योतिषी लोग भी यह घोषणा करते हों कि जमीन की पैदावार घट जायगी,

तो सरकार इस चुनौती को स्वीकार क्यों नहीं कर लेती और ग्रामदानी गाँवों में उसे सफल बनाने का बीड़ा क्यों नहीं उठा लेती? कुछ ग्रामदानी गाँवों में इसका प्रयोग किया जा सकता है।

मैं यह नहीं चाहता कि सरकार हमारे दावे मान ले और ज्यादा पैसा लगाने की जोखिम उठाये। जो सरकार तीसरी योजना में १० हजार करोड़ रुपया खर्च करने जा रही हो, उसके लिए चन्द करोड़ बूंद के समान हैं। सर्वोदय के आधार पर गाँव की उन्नति के लिए सरकार एक प्रयोग रूप से १०० करोड़ रुपया खर्च करे और यह देखे कि यह खर्च होने लायक था कि नहीं।

ग्राम-निर्माण में बाधाएँ

इस मंच से यह भी कहना चाहता हूँ कि ग्राम-रचना या निर्माण के कार्य में हमें तरह-तरह की दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है। आम तौर से सरकारी कर्मचारी पुरानी लकीर के फकीर हैं। ग्रामदानी गाँवों में हम सर्वोदय सहकारी समितियाँ बना रहे हैं। उनके पास शेयर पूँजी ज्यादा नहीं होती। जब यह समितियाँ उधार माँगती हैं, तो यह कह दिया जाता है कि शेयर पूँजी तो है नहीं। अगर यह कहा जाय कि गाँव की जमीन को जमानत समझ लें, तो जवाब यह मिलता है कि ग्रामदान की कोई कानूनी मान्यता नहीं है। केरल में और देश के दूसरे बहुत-से प्रदेशों में 'ग्रामदान कानून' नहीं है। अगर अलग-अलग व्यक्ति कर्ज माँगते हैं, तो उनसे कहा जाता है कि आपने ग्रामदान कर दिया, आपके पास तो कोई जमीन ही नहीं है। तो कहना मैं यह चाहता हूँ कि आम तौर से सरकारी अधिकारियों का रुख अच्छा नहीं है। ब्लॉक विकास अधिकारी और उनके सहयोगी आन्दोलन से अच्छी तरह वाकिफ नहीं हैं, यद्यपि केन्द्रीय विकास मिनिस्टर को सर्वोदय से बड़ी हमदर्दी है। मैं आशा करता हूँ कि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारें आन्दोलन को जितना ज्यादा समझती जायेंगी, उतनी ही ज्यादा दिलचस्पी इसमें दिखाती जायँगी।

सरकार की दुरंगी नीति

लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि सरकारें पूरी तरह हमारे साथ चल सकेंगी। सर्वोदय और केन्द्रीय नियन्त्रण में मेल नहीं है। सर्वोदय में दलगत

राजनीति की गुंजाइश नहीं है। सर्वोदय की आस्था शासन-मुक्त समाज और ग्राम-स्वराज्य में है। मैं ऐसी अपेक्षा नहीं रखता कि कोई भी सरकार हमारे आंदोलन को पूरी-पूरी मदद देगी, जब तक कि वह हमारे आदर्शों से प्रेरित न हो। पर ये कुछ दूर की बातें हैं, जिनके बारे में किसी सरकार को ज्यादा चिंता करने की जरूरत नहीं। लेकिन दूसरे ऐसे कई मसले हैं, जिन्हें टाला नहीं जा सकता। सरकार की औद्योगिक नीति की हमारे कार्यक्रम से टक्कर हो सकती है।

खादी को भी मदद, मिलों को भी

हमारी सरकार तो एक नामुमकिन काम करने में लगी दीखती है। वह देहातों, छोटे-बड़े सब तरह के उद्योगों को मदद देना चाहती है। मैं शुरू में ही यह बता दूँ कि बड़े कारखानों से मेरा विरोध नहीं है। जहाँ मनुष्य-शक्ति से काम न चले, वहाँ यन्त्र-शक्तिवाले बड़े कारखाने हम चाहते हैं। लेकिन मैं ऐसे बड़े उद्योग हरगिज नहीं चाहता, जो ग्राम-उद्योगों से मुकाबला करते हों। पर सरकार इस बात के लिए तैयार नहीं है, शायद वह इससे डरती भी है कि हरएक का क्षेत्र अलग-अलग कर दे। नतीजा यह है कि बड़े यांत्रिक उद्योग और ग्रामोद्योगों में लाग-डाँट मची है। सरकार चाहती है कि दोनों ही बने रहें और इसलिए वह दोनों को सहारा देती है। इसका परिणाम यह है कि पैसा खूब नष्ट होता है और कमजोर उद्योग टूटता है। करघे को मदद देने की खातिर सरकार मिल-उद्योग पर टैक्स लगाती है। मिल के कपड़े पर आबकारी चुंगी लगाकर करघे की इमदाद करती है। सरकार खादी की भी मदद करना चाहती है और इसलिए खादी की इमदाद कुछ ज्यादा खुले हाथ से करती है और ऐसी पवित्र आशा रखती है कि इस तरह मदद पाकर खादी मिल और करघे दोनों से टक्कर ले सकेगी। इस तिकोनी लड़ाई का नतीजा यह है कि खादी खतम होती जाती है और करघे की जान भी खतरे में है।

दूसरे उद्योगों में भी यही नीति बरती जा रही है। धान की हाथ-कुटाई को मदद इस उद्देश्य से दी जाती है कि वह धान की मिलों की प्रतियोगिता में टिक सकें, लेकिन साल-दो साल धान की मिलों के लिए लाइसेंस भी खूब दे दी जाती है। सहायता-प्राप्त धान-कुटाई इस मुकाबले का सामना नहीं कर सकती।

धान की जो सम्पन्न मिलें हैं, वे खलियान के वक्त सारा धान हथिया लेती हैं और हाथ-कुटाई के बेचारे लाचार उद्योग को सालभर चलने लायक धान भी नसीब नहीं होता। यही दशा तेलघानी, साबुन-उद्योग आदि ग्रामोद्योगों की है। सरकार की इस अविवेकपूर्ण नीति ने एक असंभव स्थिति पैदा कर दी है।

बेमेल प्रतियोगिता रोकी जाय

अगर सरकार खादी और ग्रामोद्योग की दरअसल मदद करना चाहती हो और यह समझ सकती हो कि देहात की बेकारी का इलाज यही है, तो इस बेमेल प्रतियोगिता को रोकना पड़ेगा। सच यह है कि जब सरकार इस प्रतियोगिता को रोकने के लिए तैयार नहीं है, तो इस तरह मदद लेने से आन्दोलन के ऊपर हानिकारक और अनैतिक असर पड़ता है। आन्दोलन से जो क्रांतिकारी चेतना पैदा होती है, उसे यह पंगु कर देती है और सर्वोदय को केवल एक राहत के प्रोग्राम की शकल दे देती है। जिस तरह सत्य और असत्य में, हिंसा और अहिंसा में मेल नहीं है, उसी तरह सर्वोदय और औद्योगीकरण में मेल नहीं हो सकता। क्योंकि सर्वोदय का लक्ष्य है, समानता और ग्राम-स्वावलंबन; औद्योगीकरण का अर्थ है, असमानता और बाजारों की तलाश। सर्वोदय का मेल न तो केन्द्रित उद्योगों से बैठता है और न केन्द्रित शासन से। केन्द्रित उद्योग को अपने खड़े रहने के लिए केन्द्रित सरकार चाहिए। लेकिन लोगों के सच्चे शाश्वत अधिकार और सच्चे लोकतंत्र के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण चाहिए। व्यक्ति का स्वातंत्र्य और केन्द्रीय शासन साथ-साथ नहीं चल सकते। लोगों के शाश्वत अधिकारों की रक्षा तो ग्राम-स्वराज्य में ही है, जहाँ सारे फैसले सर्वसम्मति या एक राय से होते हैं।

दलगत राजनीति के दोष

दलगत राजनीति में सर्वोदय का विश्वास न होने का भी एक ऐसा कारण है। अपनी पार्टी को सत्ता में बरकरार रखने के लिए और उसकी शक्ति बनाये रखने के लिए पार्टी के सदस्य को अपने विचार की कुर्बानी दे देनी पड़ती है। मजबूत और सुसंगठित पार्टियों में नेतृत्व का ही बोलबाला रहता है। पार्टी के सदस्यों के बजाय, पार्टी के प्रधान कार्यालय में उसकी नीति तय होती है।

नेता जो चाहते हैं, करते हैं और पार्टी को हुक्म बजाना पड़ता है। व्यक्ति का कोई स्थान नहीं है। दलगत राजनीति का यह अभिशाप है। सर्वोदय-रचना के संगठन के लिए हमारे दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन की जरूरत है। कुछ शाश्वत सामाजिक मूल्यों के बिना सर्वोदय नहीं होता। हमें अपने-आपको अपनी दौलत और शक्तियों का ट्रस्टी समझना चाहिए, जिनका समाज के हित में उपयोग करना है। इसके लिए यह जरूरी हो जाता है कि व्यक्तिगत स्वामित्व छोड़कर समाज का स्वामित्व स्वीकार किया जाय।

सर्वोदय-समाज की विशेषताएँ

सर्वोदय-समाज की विशेषताएँ ये हैं कि उसमें शोषण नहीं है, उसमें मनुष्य के श्रम की उचित मजदूरी मिलती है, उसमें आदमी दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करता है, जैसा कि वह अपने साथ चाहता है; उसमें हर काम की कसौटी व्यक्ति का अंतिम हित है। उसमें व्यक्ति की आजादियों और उसके अधिकारों में टक्कर नहीं है और उसमें अधिकार के बजाय कर्तव्य पर ज्यादा जोर दिया जाता है।

मद्य-निषेध बनाम मद्य-प्रचार

कुछ चीजें ऐसी हैं कि जिनसे समाज की जड़ों पर चोट पहुँचती है और इसलिए समाजवादी ढाँचे के खिलाफ हैं। गांधीजी के स्वराज्य-आंदोलन में मद्य-निषेध की एक विशेष स्थिति थी। लेकिन अब नशाबन्दी जहाँ कहीं भी है, अभिशाप बन गयी है। मैं कहना चाहता हूँ कि नशाबन्दीवाले क्षेत्रों में शराब और भी ज्यादा फैल गयी है। वहाँ पर गैरकानूनी शराब की संगठित रूप से बिक्री चलती है, यहाँ तक कि स्कूलों में पढ़नेवाले लड़के भी शराब पीने लगे हैं। इस शराब में बहुत-से हानिकारक तत्त्व रहते हैं। ऐसी मिसालें मौजूद हैं, जहाँ शराब पीते ही लोग तुरन्त मर गये हैं। नशाबन्दी लागू करने पर अर्क का व्यापार जोरों से चला और उसके बीसियों नये कारखाने खुल गये। चाय और सोडा की दूकानों में यह अर्क बड़ी तादाद में जमा किया जाता है। कहीं-कहीं तो शराब के बजाय सोडे का प्रयोग चला है। उसमें कहीं-कहीं तो ऐसे-ऐसे अर्क मिला दिये गये, जिनमें अल्कोहल ऊँचे अनुपात में रहती है। शायद इस तरकीब से स्कूल

के बच्चों के भीतर इसकी आदत पैदा की गयी। अब जब गैरकानूनी शराब की खुली बिक्री चलती है, तो एवजी चीजों की जरूरत नहीं पड़ेगी। नशाबन्दी पुलिस-विभाग के मातहत है। शराब की तैयारी में और बिक्री में पुलिस चुपचाप मदद देती है। इस साधन से उसे जो आमदनी होती है, वह उसकी तनख्वाह से कहीं ज्यादा है। लेकिन कोई भी राजनीतिक पार्टी इसके विरोध में चूँ तक नहीं करती। अगर इस बुराई को रोका नहीं जाता है, तो यह देश के लिए नैतिक अधःपतन और जहर सिद्ध होगी। सर्वोदय के साथी कार्यकर्ताओं से मैं यह पूछता हूँ कि जब जन-स्वास्थ्य के हित के खिलाफ कानून का इस तरह उल्लंघन होता हो, तो आपका क्या कर्तव्य है। कल्याणकारी राज्य और शराब का साथ कैसे हो सकता है? केरल में बहुत-से राजनीतिक कत्ल नशे में चूर पागलों के कारण हुए। शान्ति-सेना और शान्ति-सहायकों के लिए यह एक दावत है।

छात्रों में अनुशासनहीनता

देश में एक चीज और भी तेजी से बढ़ रही है, जो शराब से ज्यादा भयानक रूप ले रही है। वह है—विद्यार्थियों के बीच अनुशासन का अभाव और अधिकारियों की अवज्ञा। विद्यार्थी अपने अनुशासन की मान-मर्यादा नहीं रखते। जब चाहा क्लास में गये, जब चाहा नहीं गये, जब चाहा ज्यादा शोर मचाने लग गये और अध्यापक का पढ़ाना नामुमकिन कर दिया। अधिकारी इनके खिलाफ कार्यवाही करने की कोई हिम्मत नहीं कर पाते कि कहीं वे हड़ताल या जुलूस न निकाल बैठें। अधिकारियों को भी न तो अभिभावकों का सहयोग मिलता है और न राजनीतिक पार्टियों का। सब राजनीतिक पार्टियाँ विद्यार्थियों को अपने दलीय संघर्षों में इस्तेमाल करती हैं। सब राजनैतिक पार्टियों के अपने-अपने विद्यार्थी-संगठन हैं, जो आक्रमण और प्रतिरक्षा के लिए दूसरी पंक्ति के तौर पर हैं। रेल में वे बिना टिकट जाते हैं और अक्सर टिकट-कलेक्टरों को गाली देते हैं और उनकी मरम्मत करते हैं। बहुत-से टिकट-कलेक्टरों ने अपनी शिकायतों की लम्बी-लम्बी सूचियाँ मुझे दी हैं। विद्यार्थी रेलवे के सामान की कोई चिन्ता नहीं करते, पानी के नल निकाल दें, बिजली का बल्ब साफ कर फेंक दें, बाथरूम की टंकी का पानी खोल दें, अपर क्लास के तकियों को बाथरूम

में दें, जो भी कर दें, कोई ठिकाना नहीं है। और जब विद्यार्थी हड़ताल पर उतरते हैं—चाहे वे विद्यालय के अधिकारियों के खिलाफ हों या सरकार के खिलाफ हों, तो मनमानी हिंसा करते हैं। फर्नीचर और खिड़की के शीशे तोड़ डालते हैं। ऐसी भी मिसालें हैं, जब स्कूल की इमारतों को आग लगा दी गयी है। जुलूस में वे बहुत गन्दे नारे लगाते हैं। यह अनुभव केवल केरल में ही नहीं, उत्तर प्रदेश, बम्बई और दूसरे प्रान्तों में भी आया है। यह ऐसा सवाल है, जिस पर देश के सभी हितैषियों को ध्यान देना चाहिए। राजनीतिक दल के नेताओं से मेरा निवेदन है कि इस समस्या पर मिलकर विचार करें और यह प्रण करें कि अपने राजनीतिक स्वार्थों के लिए विद्यार्थियों का उपयोग नहीं करेंगे।

यह नामुमकिन है कि सर्वोदय-कार्यकर्ता भूमिदान, ग्रामदान और सर्वोदय-पात्र का काम करते रहें और ऐसी खतरनाक चीजों को नजरअन्दाज करें। बनारस विश्वविद्यालय में जितने विद्यार्थी हैं, उनसे ज्यादा पुलिस के सिपाही रहे हैं। यह स्थिति कौन बर्दाश्त कर सकता है कि एक कॉलेज में वर्ग चलाने के लिए हथियारबंद पुलिस की जरूरत पड़े? मैं यह नहीं कहता कि सारा दोष विद्यार्थियों का है। हमारी शिक्षण-संस्थाएँ अब विद्या-मन्दिर नहीं रह गयी हैं। वे उन कारखानों की तरह हैं, जहाँ शिक्षा बेची और खरीदी जाती है। विद्यार्थी और शिक्षक में कोई प्रेम नहीं है। शिक्षक वेतनभोगी दूकानदार की तरह है और विद्यार्थी ग्राहक है। यह सम्बन्ध समाप्त होना चाहिए।

शिक्षण-संस्थाएँ गुरुकुल बनें

हमारी शिक्षण-संस्थाओं को गुरुकुल का रूप लेना चाहिए, जहाँ शिक्षक और विद्यार्थी साथ-साथ रहते हों और ज्ञान की एक संयुक्त खोज में लगे हों। आपस में प्रेम हो, एक-दूसरे की चिन्ता हो, एक-दूसरे के प्रयत्न की सफलता के लिए मिलकर प्रार्थना हो। **ॐ सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सह वीर्यं करवावहै तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै**—यह एक ऐसा मंत्र है, जिसे वह सुबह-शाम दोहरायें। हमारी सारी शिक्षण-संस्थाओं का रूपान्तर बेसिक संस्थाओं में हो जाय। ऊँचे अध्ययन के लिए ग्रामीण विश्वविद्यालय हों। शिक्षण-पद्धति में मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता है। विदेशी शासकों ने आज की पद्धति इस

विशिष्ट दृष्टि से चालू की थी कि अपने लिए द्विभाषी मिल जायँ। जब तक सरकार शिक्षा के पुनर्गठन के लिए तात्कालिक कदम नहीं उठाती, तब तक सारी खर्चीली योजनाएँ बेकार सिद्ध होंगी।

छात्रों में अद्भुत शक्ति

हमारे विद्यार्थियों में काम करने की सुन्दर और अद्भुत शक्ति भी है। हिम्मत और जोखिम के काम उन्हें बहुत पसन्द आते हैं। कुछ विद्यार्थी ऐसे उत्साही भी होते हैं, जो हर मुश्किल का सामना कर सकते हैं। विद्यार्थियों को लेकर मैं जलते हुए मकानों में गया हूँ। उनकी मदद से हम सारी कीमती चीजें बचा सके और इमारतों के कुछ हिस्से को जलने से भी रोक सके। उन्होंने कम-से-कम समय के अन्दर कुओं, तालाबों और गलियों की भयानक गन्दगी को साफ किया है। कॉलेज और स्कूल के विद्यार्थी अपना-अपना समय देहात में शिविरों में लगा सकते हैं। अपनी कक्षा से कहीं ज्यादा ज्ञान उन्हें गाँवों में मिलेगा। आप देखेंगे कि उनमें अनुशासन, जिम्मेवारी और नम्रता पैदा होगी।

सर्वोदय-कार्यकर्ताओं और शान्ति-सेनावालों को चाहिए कि सामाजिक प्रवृत्तियों में विद्यार्थियों की दिलचस्पी पैदा करें, अध्ययन-मंडल चलायें, विद्यार्थी-शिविरों का संगठन करें, ग्राम-जीवन का उन्हें परिचय करायें और राजनीतिक दलों के हथकंडों से उन्हें सावधान करें। हमारे राजनीतिक दलों में कहीं ज्यादा शुद्धता और बल आ जायगा, अगर हम विद्यार्थियों को आजादी से पढ़ने दें और सामाजिक कार्यक्रम में उन्हें हिस्सा लेने दें। साथ-ही-साथ मजदूरों के भी अपने संगठन हों, जिनके द्वारा वे अपने हितों की रक्षा करें। जब ये बैसाखियाँ छोड़ दी जायँगी, तो राजनीतिक पार्टियाँ भी अपने पैरों पर खड़ी हो सकेंगी। रक्षा की दूसरी श्रेणी के तौर पर विद्यार्थियों और मजदूरों का इस्तेमाल करने से पार्टियाँ न केवल कमजोर बनेंगी, बल्कि देश को भी हमेशा के लिए घातक नुकसान पहुँचायेंगी।

शांति-सेना का देशव्यापी संघटन हो

अब मैं कुछ शब्द शान्ति-सेना और सर्वोदय-पात्र के बारे में कहूँगा। ग्राम-स्वराज्य पर आधारित सर्वोदय का अनिवार्य अंग शान्ति-सेना है। देश के लिए

सब जिलों में शान्ति-सेना का संगठन होना चाहिए। अनुभवी शान्ति-सैनिकों की छोटी-सी एक अखिल भारतीय टुकड़ी—जिसके सदस्य आपस में सलाह-मशविरे के लिए मिल सकें और विनोवाजी का मार्गदर्शन ले सकें—जिला इकाइयों का संघटन करें और वे फिर ग्राम-इकाइयों का संघटन करें। देश-भर में शान्ति-सहायकों का संगठन होना चाहिए। केरल में हमने शान्ति-मंडल बनाये हैं। उनका दर्जा लगभग शान्ति-सहायकों का-सा है। शान्ति-मंडल के संगठन में सर्वोदय-मंडल, 'फेलोशिप ऑफ रिकन्सीलियेशन' और गांधी स्मारक निधि के कार्यकर्ताओं ने बहुत योग दिया। त्रिवेन्द्रम्, कोट्टायम्, पालघाट और कालीकट में जिला इकाइयाँ बन चुकी हैं। ये संस्थाएँ व्यक्तियों से और राज-नैतिक पार्टियों के नेताओं से मिलकर ऐसे क्षेत्रों में शान्ति-स्थापना की कोशिश करती हैं, जहाँ आपस के सम्बन्धों में बहुत तनातनी हो और हिंसा की आशंका हो। हमारा यह आग्रह नहीं रहता कि ये लोग लोक-सेवक की सभी निष्ठाओं को मान्य करें, लेकिन सत्य और अहिंसा में उनका विश्वास होना जरूरी है और सक्रिय राजनीति में वे भाग नहीं ले सकते।

शान्ति-सैनिक और सहायकों को काम करने के लिए उपद्रवों का इन्तजार नहीं करना है। उनका काम है कि वे निर्भीकता और नम्रता के साथ समाज-सेवा करें, गाँववालों को श्रमदान से मदद करें, ताकि उनकी मौजूदगी में वे अपने को सुरक्षित महसूस करें। मैं आशा करता हूँ कि शान्ति-सेना और सर्वोदय के कार्यकर्ता सावधान रहेंगे और राजनीतिक तनाव को कम करने के लिए कोई कसर बाकी नहीं रखेंगे।

विश्व के वर्तमान संदर्भ में शान्ति-सेना को एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण पार्ट अदा करना है। विशेषतः इस मौके पर, जब राजनीतिक गगन पर काले बादल छाये हुए हैं। क्रुश्चेव और आइसनहावर ने दुनिया को चौकन्ना कर दिया है कि आज के अणु शस्त्र से सारे सभ्य जगत् के अस्तित्व को खतरा है। सब लोग यह अच्छी तरह महसूस कर रहे हैं कि युद्ध और हिंसा के द्वारा सामाजिक, आर्थिक या राजनीतिक प्रश्न हल नहीं किये जा सकते हैं। लेकिन फिर भी हथियार दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ाये जा रहे हैं और हमारी सरकार भी वैसा ही कर रही है।

हथियारों की दौड़ रोकें

अब यह वक्त आ गया है कि जब हथियारों की यह दौड़ सदा के लिए समाप्त कर दी जाय और डंडे के बजाय करुणा के राज्य की स्थापना का लक्ष्य स्वीकार किया जाय। इसके लिए हमें शान्ति की शक्ति का निर्माण करना होगा। कैसे आश्चर्य की बात है कि तमाम सरकारें शान्ति को चाहती हैं, लेकिन शान्ति की शक्ति में विश्वास नहीं करती हैं। शान्ति के लिए युद्ध में विश्वास एक ऐसा अन्धेर है, जो अब भी चल रहा है। नतीजा यह है कि शान्ति और दूर हटती चली जा रही है। हमारे देश को शान्ति की शक्ति पैदा करनी चाहिए और निःशस्त्रीकरण का कदम उठाना चाहिए। दुनिया आज हमारे देश से इस नेतृत्व की आशा कर रही है। शान्ति-सैनिकों को यह सिद्ध करना है कि वे न केवल ग्राम-स्वराज्य की स्थापना के लिए काम करेंगे, बल्कि स्थायी शान्ति के लिए अपनी जान भी कुर्बान कर देंगे। इसलिए अपने देशवासियों से मेरी अपील है कि शान्ति-सेना के महान् महत्त्व को समझें और बड़ी-से-बड़ी तादाद में उसमें शामिल हों, ताकि वे आजाद और बराबर के लोगों का ऐसा समाज कायम कर सकें, जिसमें शोषण और दमन का नाम तक न हो।

सर्वोदय-पात्र का दोहरा काम

सर्वोदय-पात्र के बारे में नेताओं तक में कुछ गलतफहमी है। सर्वोदय-पात्र का आशय चरखा या ग्रामदान की जगह लेने का नहीं है। अहिंसा के प्रतीक के रूप में या ग्राम-स्वावलम्बन की योजना में चरखे को अपना अद्वितीय स्थान है। यह सूर्य है, जिसके चारों ओर दूसरे ग्रामोद्योग घूमते हैं। अगर इसे समाप्त कर दिया, तो सारे उद्योग आप से आप गिर जायेंगे। सर्वोदय-पात्र का तो दोहरा काम है। एक तो सर्वोदय-आदर्श की ओर प्रगति का यह पात्र है। दूसरे, सर्वोदय काम के लिए आर्थिक साधन जुटाने के लिए भी इससे बड़ी मदद मिलती है। अगर हम चाहते हैं कि सर्वोदय एक क्रान्तिकारी आन्दोलन रहे और एक सुधारक संघ न बन जाय, तो अनुभवी और दीक्षित कार्यकर्ताओं की एक सेना चाहिए। सर्वोदय-आदर्श से सर्वसाधारण को प्रेरणा मिलती है और वही आन्दोलन की ढाल बनेंगे। जिनके आर्थिक स्वार्थ हैं या जो सरकार में हैं, उनसे इसमें मदद की

आशा नहीं की जा सकती। मदद तो जनता जनार्दन से मिलनी चाहिए। अगर सर्वोदय-आन्दोलन के रास्ते में कोई रुकावटें आती हैं, तो उन्हें दूर करने के लिए सर्वोदय, सत्याग्रह या सिविल नाफर्मानी करने से पीछे नहीं हटेंगे और सर्वोदय और शान्ति-सेना के कार्यकर्ता आन्दोलन की क्रान्तिकारी ज्योति को जाग्रत रखने के लिए किसी भी प्रकार का बलिदान करने को तत्पर रहेंगे।

जनता से समरस बनें

अन्त में एक शब्द और। अगर सर्वोदय को व्यापक क्रान्तिकारी आन्दोलन का रूप लेना है, तो कुछ लोगों की धारणा है कि उसमें नेतृत्व समाज के निचले वर्गों से आना चाहिए। यह सही है कि नेताओं और कार्यकर्ताओं को जनता से समरस होना चाहिए। अगर हम ऐसा नहीं करते हैं और अपना अलग वर्ग बना लेते हैं, तो हम जनता का विश्वास या प्रेम नहीं पा सकेंगे। महत्त्व की बात यह नहीं है कि नेतृत्व किस वर्ग की तरफ से होता है, बल्कि यह है कि वे जनता में कितना घुल-मिल पाते हैं।

हमारे साथियों को एक बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए। हमें एक परिवार की तरह अपना जीवन बिताना चाहिए, अवसर मिलना चाहिए, अपने अनुभव एक-दूसरे को बताने चाहिए और दैनिक काम का ठीक ढंग से आयोजन करना चाहिए। हमें अपने साधनों का ठीक से संग्रह और संयोजन करना चाहिए और इस तरह अपने सामूहिक जीवन से ग्रामदानी गाँवों के लिए एक नमूना पेश करना चाहिए।

जय जगत्

(अंग्रेजी से)

श्री केलप्पनजी के भाषण के बाद श्री कृष्णराज मेहता ने सम्मेलन का कार्यक्रम बताया और सम्मेलन में उपस्थित विभिन्न प्रदेशों के कार्यकर्ताओं से श्री विनोबा किस-किस समय मिलेंगे, इसका ब्योरा बताया। इसके बाद सर्वोदय-सम्मेलन के प्रथम दिन का अन्तिम भाषण श्री विनोबाजी का हुआ, जिसके अनन्तर पाँच मिनट की मौन-प्रार्थना होकर सम्मेलन के प्रथम दिवस की कार्रवाई समाप्त हुई।

विनोबा :

मेरे अत्यन्त प्रिय मित्रो,

सम्मेलन मेरे लिए दर्शन का आनंद प्राप्त करने का मौका होता है। मैं यहाँ दर्शन के लिए आता हूँ। विचार-प्रचार, चर्चा वगैरह रोजमर्रा चलती ही है। रोज बोलता ही रहता हूँ। चार-चार घंटा पदयात्रा चलती है, उसमें अनगिनत चर्चाएँ चला करती हैं। फिर भी सालभर में एक ही दफा कई मित्रों से मिलने का यह प्रसंग आता है। इसमें आगे क्या काम करना है, इसकी चर्चा होती है और मिलना भी होता है। इसी सौभाग्य के लिए मैं यहाँ आता हूँ।

सम्मिलन का मुख्य कार्य

हमारे साथी एक के बाद एक परमेश्वर के पास पहुँच रहे हैं, जिनके साथ हमने काम किया है। किशोरलाल भाई, जाजूजी, बाबा राघवदास, गोपबाबू, लक्ष्मीबाबू, भारतन, देवदास सारे चले गये। इसलिए सालभर में जहाँ दर्शन का आनंद मिलता है, वहीं यह भी पता चलता है कि हममें से कौन जीवित हैं। कोंकण में रिवाज है, बारिश के बाद मित्र एक-दूसरे से मिलने आते हैं। इसलिए कि बारिश के बाद पता चले, कौन जीवित है और कौन नहीं है, यह देखने को मिलता है। यों तो संसार की अखंड यात्रा चल ही रही है। लोग इस लोक से परलोक जा रहे हैं और नये-नये आ रहे हैं। इस बीच हमारी भी छोटी-सी यात्रा चल रही है। इस साल दो दफा मैं बीमार पड़ा, इसका मुझे दुःख है। आज अजमेर शहर में लोगों का मुझ पर प्रेम का बहुत बड़ा आक्रमण हुआ, तो बचपन का स्मरण हो आया और एक-डेढ़ मील दौड़ना भी हुआ। इस तरह चलता ही रहता है। मालूम नहीं, कब तक चलेगा ? इतना अवश्य मालूम है, जैसा कि गुरु नानक ने कहा है, **हुक्म रजाई चल्लणा, नानक लिखिया नाल**। उसके हुक्म से ही यह सारा चल रहा है। यही एक विश्वास, यही आशा और यही भरोसा लेकर हम काम कर रहे हैं। आप लोगों से मिलता हूँ, तो बड़ा आनंद होता है।

यह काम करनेवालों की एक जमात है; ऐसे लोगों की, जो ज्यादा सभ्यता भी नहीं जानते और उन सभ्यता न जाननेवालों में शिरोमणि शायद मैं ही

हूँ। सारे-के-सारे विभाग से मैं अपरिचित हूँ, उसके विषय में नहीं जानता। जब मैं बापू के पास पहुँचा था, तो एक जंगली जानवर ही था। उनकी संगति में जानवरपन तो शायद मिट गया, लेकिन जंगलीपन कायम है। उसे वे नहीं मिटा सके। इसलिए जानता नहीं, मैत्री कैसी रखी जाती है। फिर भी असंख्य मित्र अकारण प्यार करते हैं और पचीस-पचीस, तीस-तीस, चालीस-चालीस वर्षों से साथ हैं। इस तरह यह अकारण प्रेम करनेवालों की जमात है। इसके अन्दर एक तड़पन है, स्नेह है। ऐसे ही हम एक-दूसरे से मिलने आते हैं। यही हमारे सम्मेलन का मुख्य कार्य है।

केलप्पनजी का व्यक्तित्व

आज के आपके अध्यक्ष श्री केलप्पनजी हैं। हम बड़े भाग्यशाली हैं कि ऐसों का साथ हमें मिलता है। उनका आधार नहीं होता, तो केरल में वह काम नहीं होता, जो हम कर सके। शांति-सेना की नयी कल्पना हमें केरल में ही सूझी। अगर वे हमारे साथ न होते, तो वहाँ जो शांति-सेना बनी, वह नहीं बन सकती थी। उम्र में हमसे वे चार-पाँच साल बड़े हैं, लेकिन शांति-सेना का विचार, ग्रामदान-ग्राम-स्वराज्य का विचार उन्हें इतना आकर्षक मालूम हुआ कि सब छोड़कर वे इस काम में कूद पड़े। जब मैं केरल में था, तो ढाई सौ ग्रामदान हुए; वे उन्हींके बदौलत हुए। मेरे केरल छोड़ने के बाद ग्रामदान की संख्या दुगुनी हुई। केलप्पनजी ने बहुत जोर लगाया। एक जमाने में उन्होंने रचनात्मक काम भी बहुत किया है। बहुत सालों से वे वह काम करते आये हैं। १९२५ में उनसे मेरा थोड़ा परिचय हुआ। 'वायकम्' के सत्याग्रह के समय बापू की आज्ञा से मैं वहाँ गया, तो उनसे सम्बन्ध आया था। वे सामाजिक और राजनैतिक कार्य भी करते आये थे। वहाँ के सभी कार्यों में उन्होंने बहुत बड़ा हिस्सा लिया था, किंतु राजनैतिक क्षेत्र को छोड़ना इन दिनों सबसे कठिन त्याग होता है। उन्होंने जिंदगी में बहुत त्याग किया है। आखिर यह भी त्याग किया और मोह से मुक्ति पाकर वे इस आन्दोलन में कूद पड़े। मैं मानता हूँ कि वे ही आज उस प्रान्त के शांति के आधार हैं। उनके पीछे कुछ लोगों की छोटी-सी जमात है, किंतु वह ऐसी है कि उसके शांति के लिए मर-मिटने में कोई शक नहीं। अभी

केरल में अशांति हुई थी, तो वहाँ शान्ति की स्थापना में परमेश्वर ने उन्हें सफलता भी दे दी। ऐसे महान् साथी हमें मिले हैं, उनसे हमें मार्गदर्शन मिल सकता है। यह हमारा बहुत बड़ा सौभाग्य है।

जहाँ हम रोज कुछ-न-कुछ बोलते ही हैं, वहाँ नयी बात क्या रखें, सिवा इसके कि मौन की महिमा प्रकट करें? शब्द से भी हम वह महिमा प्रकट कर सकते हैं।

आत्म-परीक्षण और निरीक्षण का वर्ष

हम समझते हैं कि यह साल हमारे लिए आत्म-परीक्षण और निरीक्षण का साल था। १९५७ तक हमने जाहिर किया था कि जो दिशा हमें सूझेगी, उस ओर हम आगे बढ़ते जायँगे। हमें कुछ नयी बातें सूझी हैं, उन्हें हमने आपके सामने रखा। जो असफलता मिली है, उसकी पूर्ति के लिए आप काम में लगे ही हैं। जहाँ काम का सम्बन्ध आता है, वहाँ हमें कुछ-न-कुछ सूझता ही है। एक अवधि तक काम का अनुभव लोगों को आया। अब थोड़ा चिंतन और ध्यान करना बहुत जरूरी है। इसलिए एक साल से यह हमारे लिए ध्यान-काल चल रहा है। हम निरीक्षण करते हैं। हमने तो यही कहा था कि यह आरोहण है, आन्दोलन नहीं। हम एक-एक शिखर चढ़ने की कोशिश कर रहे हैं। एक-एक शिखर चढ़ते हैं, बीच-बीच में ठहरते हैं और देखते जाते हैं, तो स्पष्ट दर्शन होता है। ऋग्वेद में कहा है :

> यत् सानोः सानुं आरुहत् । भूरि अस्पष्ट कर्त्वम् ।
> तद् इन्द्रोः अर्थं चेतति ।

अर्थात् एक शिखर से दूसरे शिखर पर चढ़ते हैं, तो फिर-फिर से दर्शन होता है। चढ़ने के बाद जरा रुककर देखते हैं, तो पता चलता है कि हमने कौन-सी गलतियाँ की हैं, कहाँ तक आगे बढ़ना है। इन दिनों आलोचकों ने भी हमें बहुत मदद पहुँचायी है। इस आन्दोलन पर काफी आलोचना हुई, जिससे हमें बहुत लाभ हुआ। हम उन सभी आलोचकों का उपकार मानते हैं और चाहते हैं कि इसी तरह आन्दोलन पर आलोचना एवं चर्चा चले। कुछ दोष-दर्शन भी

हम चाहते ही हैं। वह सारा हमारे काम में मदद देगा। उस अनुभव से हमें कुछ सूझा भी, जिसे आपके सामने रखता हूँ।

विचार की आधारशिला विश्व की एकात्मता

समझने की जरूरत है कि अभी दुनिया का कुछ विचार-प्रचार बदल रहा है। कुल दुनिया में, जिसमें हम भी हैं, वे विचार-प्रवाह जोरों से बह रहे हैं और हमें प्रेरित भी कर रहे हैं। अभी एक भाई इंग्लण्ड से आये थे। उन्होंने हमसे कहा कि "हम भूदान-आन्दोलन को देखना और उससे कुछ लेना भी चाहते हैं। हम आशा रखते हैं कि हिन्दुस्तान दुनिया को शांति की राह दिखायेगा।" मैंने कहा: "हिन्दुस्तान तो दिखायेगा ही, लेकिन इंग्लैण्ड भी दिखा सकता है।" उन्होंने पूछा: "इस आशा के लिए आपको क्या आधार है?" हमने कहा: "इंग्लैण्ड हिन्दुस्तान पर अपनी मालकियत मानता था, पर अब उसने वह उसे छोड़ दिया। इससे इंग्लैण्ड की नैतिक शक्ति बढ़ी है, ऐसा हम मानते हैं। मालकियत छोड़ने के इसी विचार के आधार पर ग्रामदान का आन्दोलन चल रहा है। इसलिए उसका आरम्भ इंग्लैण्ड ने ही किया है। बहुत से लोग समझते हैं कि मालकियत-विसर्जन के इस आन्दोलन का आरंभ १८ अप्रैल १९५१ में हैदराबाद राज्य में हुआ। किंतु हम तो मानते हैं कि इसका आरम्भ इंग्लैण्ड ने १५ अगस्त १९४७ के दिन किया और उससे हमें स्फूर्ति मिली।" यह सुनकर उस भाई को बहुत आनंद हुआ और कुछ आश्चर्य भी! हमने उससे यह भी कहा कि "हम बहुत आशा रखते हैं कि इंग्लैण्ड जैसा बलवान् देश इतने बड़े साम्राज्य की सत्ता छोड़ने की हिम्मत कर सकता है, तो वह यह हिम्मत भी कर सकता है कि हिंसा-शक्ति से संन्यास ले ले और अहिंसा का प्रयोग करे। सेना से मुक्ति पाने का विचार भी ऐसा बलवान् राष्ट्र ग्रहण कर सकता है।" हमने उससे यह भी कहा कि "लंदन-जैसा स्फूर्तिदायी शहर दूसरा कौन सा हो सकता है, जहाँ दुनियाभर के स्वातंत्र्यप्रेमी लोगों को आश्रय मिला है। मेजिनी को वहाँ आश्रय मिला है। डॉ० सन् यात सेन वहीं रहे थे। कार्ल-मार्क्स भी लंदन में रहे हैं। गांधीजी भी वहीं से प्रेरणा पाकर आये। इस तरह लन्दन को दुनिया के स्वातंत्र्यप्रेमी लोगों का स्फूर्ति-स्थान मानना पड़ता है। इसीलिए मैं इंग्लैण्ड से यह आशा

करता हूँ कि वह सामने आये और शांति का काम उठाये।" यह सुनकर उस भाई को वहुत ही आनंद हुआ।

मैंने आपको यह कहानी इसलिए सुनायी कि मेरे दिल में क्या चल रहा है, यह आप जानें। मैं अपने इस काम को राष्ट्रीय नहीं, जागतिक आन्दोलन मानता हूँ। जागतिक पृष्ठभूमि पर मैं विचार करता हूँ कि इसमें कौन-से कदम उठाये जायँ? इसके लिए हमें सही तरीके ढूँढ़ने होंगे और वह हम तभी कर सकते हैं, जब कि खुद को जागतिक परिस्थिति में रख सकें। इसीलिए हम 'जय जगत्' का उद्घोष करते हैं। राजस्थान में हम आये, तो गाँव-गाँव के लोग हमें अभिवादन करने के लिए 'जय जगत्, जय जगत्' बोलते हैं। यह कोई छोटी बात नहीं कि दस-ग्यारह साल में हम 'जय हिन्द' से 'जय जगत्' तक पहुँच गये हैं। यह इसलिए कोई छोटी बात नहीं कि यह एक संकल्प दुनिया में काम कर रहा है, जो कुल दुनिया को एक करके ही रहेगा।

आज विज्ञान की अभूतपूर्व सहायता

तब राष्ट्र-राष्ट्र के भेद टूट जायँगे। इसके लिए विज्ञान भी उत्सुक है और उसका बल हमारे पीछे है। इन दिनों मैं अपने पीछे विज्ञान का जितना बल महसूस करता हूँ, उतना इससे पहले कभी नहीं किया था। ग्रामदान और भूदान-विचार के पीछे आत्मज्ञान या वेदान्त का जितना बल है, उतना ही विज्ञान का भी बल है। विज्ञान हमें संकुचित मनोवृत्ति नहीं रखने देगा। वह इसके खिलाफ ही है। वह आवाहन कर रहा है कि "मानव, या तो मिट जा या एक बन जा, व्यापक बन जा। इसके सिवा तीसरी बात नहीं। अगर तू मिटना चाहता है, तो मैं तुम्हें मिटा सकता हूँ। और अगर व्यापक बनना चाहता है, तो उसमें भी मदद दे सकता हूँ। उसके लिए वातावरण तैयार है।" जब हम इस पर पर सोचेंगे, तो ध्यान में आयेगा कि हमें अपने को एक और व्यापक बनना चाहिए। यह कैसे किया जाय, यह भी आज हमें विज्ञान के कारण सूझ रहा है। यह विचार हमें ऐसी कल्पना में ला रहा है, जिससे हमें ध्यान में आयेगा कि हम समन्वय की भूमिका में काम कर रहे हैं।

भूदान का विश्व-मानवता का सन्देश

आस्ट्रेलिया से एक भाई हमसे मिलने आये थे। उन्होंने पूछा कि "आस्ट्रे-

लिया के लिए भूदान का क्या संदेश है ?" मैंने कहा : "चीन और जापान के लोगों को यह आवाहन करो कि भाइयो ! आप लोग हमारे देश में आइये, हम आपका स्वागत करते हैं। यह भूमि आपका स्वागत करती है। यहाँ आकर आप प्रेम से रह सकते हैं। यहाँ ज्यादा भूमि पड़ी है। इसलिए आप यहाँ खुशी से आइये।" यही भूदान का विश्व-मानवता का संदेश है। भूदान, विश्वमानव बनाना चाहता है। अब वे दिन लद गये, जब हम अपने-अपने देश का अभिमान रखते और उसीमें मस्त रहते थे। किसी जमाने में अपने देश का गौरव दूसरे देशों की कुछ न्यूनताओं के साथ करने में लज्जत और शायद इज्जत भी मालूम होती थी। लेकिन आज तो न उसमें लज्जत है और न इज्जत ही। इस तरह स्पष्ट है कि यह हमारा एक सार्वराष्ट्रीय आन्दोलन है और इसी पृष्ठभूमि में हमें काम करना है।

विज्ञान-युग में सत्याग्रह का स्वरूप क्या हो ?

हमें बहुत से लोग पूछते हैं कि "कई छोटे-छोटे सवाल भी हैं—दुःख हैं, अन्याय हैं, भूमि के क्षेत्र में भी बहुत से अन्याय होते हैं। फिर छोटे-छोटे सत्याग्रह भी क्यों न चलाये जायँ ?" हम उनसे कहते हैं : "बापू के जमाने में जो सत्याग्रह हो गये, अगर इस जमाने में उन्हींका अनुवर्तन, बाह्य अनुकरण करें, तो वह ऐसा ही होगा, जैसे राणा प्रताप और शिवाजी का अनुकरण कर किले बनाना। उन दिनों किले देश की रक्षा कर सकते थे, पर आज किले बनायें, तो वे बमबाजों को मदद ही देंगे। उन्हें बम गिराना बहुत नजदीक हो जायगा, अनुकूल हो जायगा। इसलिए हम बापू के सत्याग्रह का स्थूल अनुकरण, स्थूल अनुवर्तन कैसे कर सकते हैं ?" इस पर लोग यह कहते हैं कि "गांधीजी तो बहुत पुराने जमाने में नहीं हुए, उनका जमाना अभी पुराना नहीं हुआ है। क्या इतने में बहुत फर्क पड़ गया ?" मैं कहता हूँ : "भाई ! हाँ, इतने में बहुत-बहुत फर्क पड़ गया। एक फर्क तो यह कि वे विदेशी राज्य में काम करते थे और हम स्वराज्य में काम कर रहे हैं। दूसरा फर्क यह कि वे अनियंत्रित सत्ता में काम करते थे, जब कि हम लोकशाही में काम कर रहे हैं। तीसरा फर्क, जो मेरी दृष्टि से सबसे महत्त्व का फर्क है, यह है कि आज अणु-युग का अवतार हुआ है। ये बातें

हम भूल नहीं सकते। गांधीजी के जमाने में अणु शुरू हुआ था, पर आज उसका नया दर्शन हो रहा है। विज्ञान रुद्रावतार हो सकता है और वह विष्णु का अवतार भी। इसलिए यह सबसे महत्त्व का विचार है कि लोकशाही, स्वराज्य और विज्ञान के जमाने में सत्याग्रह का रूप क्या हो? इस पर हम सबको गंभीरता से सोचना होगा। अगर हम सत्याग्रही नहीं, तो कुछ भी नहीं हैं। अगर हम कोई हैं, तो सत्याग्रही ही हैं। याने हमारा और कोई दावा हो ही नहीं सकता। हमारे मार्गदर्शक इसी बात के तो गुरु थे। उनके पीछे उनके विचार के प्रचार की जिम्मेवारी आप और हम पर आयी है और वह और भी बढ़ गयी है। इसका चिन्तन हम सबको करना ही होगा। आज मानव के हाथ में ऐसी शक्ति आ गयी है कि हिंसा करनेवाले एक जगह बैठकर अस्त्र फेंक कुल दुनिया का संहार कर सकते हैं। तब सवाल खड़ा होता है कि ऐसी स्थिति में सत्याग्रह का स्वरूप क्या हो? स्पष्ट है कि कोई ऐसी शक्ति सत्याग्रही के हाथ में चाहिए कि जैसे वे घर बैठे संहार कर सकते हैं, वैसे ही वह भी घर बैठे सारी दुनिया का बचाव कर सकें। यह खोज का विषय है। हममें उन हिंसकों के हृदय में इस तरह प्रवेश करने की शक्ति होनी चाहिए कि जिन हाथों बम बनें, उन्हीं हाथों को उन्हें समुद्र में डुबो देने, नष्ट कर देने की प्रेरणा मिले और वे उन्हें नष्ट कर दें।"

अमेरिका को सन्देश

एक अमेरिकन भाई मुझसे अमेरिका के लिए संदेश माँगने आये थे। मैं तो इस तरह कभी संदेश नहीं देता। मैंने कहा : "अमेरिका को संदेश देने की धृष्टता मैं नहीं करूँगा।" तो भी वे भाई कहने लगे कि "आप कुछ बताइये।" इस पर मैंने कहा : "आप लोग ये जो तरह-तरह के शस्त्रास्त्र बनाते हैं, उन्हें खूब बनायें। उसमें कोई कमी न रखें, क्योंकि उससे काम दिलाने का सवाल थोड़ा हल होगा। किंतु आगे जब क्रिसमस का दिन आये, तो उस दिन हिम्मत के साथ भगवान् ईसामसीह का नाम लेकर वे सारे शस्त्रास्त्र समुद्र में डुबो दें। आज तो आपके शस्त्रास्त्र रूस खतम करता है और रूस के शस्त्रास्त्र आप खतम करते हैं—आपके जलपोत वे डुबोते हैं और उनके हवाई जहाज आप। किन्तु इस तरह परस्परावलम्बन का काम क्यों किया जाय? इसलिए आप स्वावलम्बी बनें। अमेरिका के हवाई जहाज अमेरिका ही डुबो दे और रूस के हवाई

जहाज रूस ही खतम करे। इसकी क्या जरूरत है कि मेरे हवाई जहाज वे तोड़ें और उनके मैं तोड़ूँ ?" मैंने उस अमेरिकन भाई से कहा कि "इस तरह अपने हाथों से अस्त्र बनाना और उसे डुबो देना एक खेल हो जायगा। हम दूसरे के शस्त्रों का खंडन करें और वे हमारे शस्त्रों का खंडन करें। इसके बजाय हम ही अपने शस्त्रों का विसर्जन कर दें।"

हमें गणपति की कहानी याद है। बचपन में हमारे दादा गणपति-उत्सव करते थे। हम चंदन घिस-घिसकर अपने हाथों गणपति की मूर्ति बनाते और उसकी पूजा करते थे। हमें उसमें बड़ा संतोष मालूम होता था। १३-१४ दिन उसकी पूजा और आरती वगैरह होती थी। आखिर जब उस गणपति का तालाब या कुएँ में विसर्जन करना पड़ता था, तो हमें उस समय बड़ा दुःख होता था। खैर, इसमें क्या खूबी होगी, इसका हमारे चित्त पर बहुत असर होता था। 'आवाहन के बाद विसर्जन भी अपने ही हाथों से करना पड़ता था' इसका अर्थ यही है कि आपने ही उसे भगवान् के तौर पर बनाया। इस तरह हमारा शास्त्र सुझाता है कि भगवान् को बनानेवाले तुम हो। इसलिए सबसे श्रेष्ठ देवता मानव है। गणेश-पूजा की इस प्रक्रिया द्वारा हमारे पूर्वज हमें बताते हैं कि तुम पूजा तो करो, पर यह पहचान लो कि तुमने ही इसे बनाया है, इसकी प्राण-प्रतिष्ठा करनेवाले तुम ही हो। तुम्हारी ताकत से ही भगवान् बना है। ऋग्वेद में एक मन्त्र आता है: **अयं मे हस्तो भगवान्, अयं मे भगवत्तरः** याने मैं भगवान हूँ और भगवान् से भी श्रेष्ठ हूँ। इससे बेहतर मन्त्र और कौन-सा हो सकता है ? जहाँ पहले वाक्य में ऋषि कहता है कि मैं भगवान् हूँ, वहीं दूसरे वाक्य में कहता है: **भगवत्तरः** याने भगवान् से श्रेष्ठ हूँ। क्योंकि आखिर भगवान् अव्यक्त है और हम व्यक्त हैं। हमारे हाथों जो सेवा होगी, वह व्यक्त होगी और उसी सेवा के कारण उसका गौरव होगा। उस पूजा से भगवान् का वैभव बढ़ गया है। यही समझाने के लिए हमारे पूर्वजों ने गणपति-विसर्जन की प्रक्रिया हमें सिखायी है। उसका राज पीछे खुल गया। वह प्रक्रिया आवाहन की प्रक्रिया है। उसमें आवाहन के बाद विसर्जन किया जाता है। इसीलिए हमने उस अमेरिकन भाई को समझाया कि क्रिसमस के दिन अपने-अपने सभी शस्त्रास्त्र डुबो दीजिये। यही हमारा संदेश है।

होली में ये कागजात जला दें

भाइयो, होली का त्योहार किसलिए आता है ? हमारी सब आसक्तियों की चीजें जलाने के लिए। जरा देखो और सोचो कि सालभर में हमारे मन में क्या-क्या आसक्तियाँ होती हैं। हमारे मन में जो आसक्ति है, उसे हम दूसरे को नहीं दे सकते, क्योंकि वह दूसरे को भी बिगाड़ेगा, दान लेनेवाला भी स्वार्थी बनेगा। इसलिए उसे जलाना ही चाहिए। कानून के हक की बात करते हो, मालकियत के कागजों की बात करते हो, तो वे कुल-के-कुल कागज जला दो। उससे बहुत अच्छा होगा, अपने देश में बहुत बड़ी ताकत पैदा होगी। होली का त्योहार इसीलिए है।

एक सरकारी मंत्री आये थे। कुछ बात चल रही थी। कहते थे कि "हमें चिन्तन-मनन के लिए समय नहीं मिलता।" मैंने कहा कि "मनन के लिए समय नहीं मिलता, तो वह मंत्री कहाँ रहा ? वह तो तंत्री हो गया।" उन्होंने कहा कि "क्या करें, बहुत फाइलें होती हैं, बहुत रेकार्ड होता है, इसलिए समय नहीं मिलता।" मैंने कहा : "रोज रेकार्ड रहता है, तो ठीक; लेकिन होली का भी दिन होता है या नहीं ? बहुत ही अच्छा प्रयोग होगा, अगर होली के दिन कुछ फाइलें उसमें डाल दी जायँ। दुनिया में कुछ त्योहार ऐसे होते हैं, जिस दिन हम अपनी आसक्ति जलाते हैं, तो सच्चे अर्थ में त्योहार हो जाता है।" (शायद हम कोई विषयांतर कर रहे हैं।)

हम कहना चाहते थे कि इस आन्दोलन को केवल एक राष्ट्रीय भूमिका पर मत मानो। जागतिक भूमिका इसके पीछे है, ऐसा मानो, तभी उत्साह आयेगा। समझ में नहीं आता है कि कौन-सी ताकत मुझमें है। लोग मुझे कहते हैं कि "आप तो बहुत कम खाते हैं", तो मैं उनसे कहता हूँ : "मैं आकाश खाता हूँ। आठ साल से मेरी यात्रा चल रही है। मेरा आकाश-सेवन चल रहा है। उससे मुझे ताकत मिलती है। इसलिए मरने के समय के पहले मैं कभी नहीं मरूँगा।" मुझे तो भास ही नहीं होता कि मैं कुछ काम कर रहा हूँ। एक बहुत बड़ी ताकत, एक बहुत बड़ा विचार मुझे घुमा रहा है, मैं नहीं घूम रहा हूँ। आखिर हम और आप हैं कौन ? बिलकुल नाचीज ! हमारी कोई हस्ती ही नहीं है। तमिलनाड में मैं घूम रहा था। माणिक्य वाचकर के भजन गाता था। कम-से-कम

तमिल भजन गाने का नाटक तो मैं करता ही था। माणिक्य वाचकर के भजन का एक वचन मुझे याद है।

नान यारु ? यार आखिर ऐ न्नै

तमिलनाड़ का सर्वश्रेष्ठ महाकवि माणिक्य वाचकर कह रहा है : "मैं कौन हूँ, मुझे कौन जानता है ? मुझे कोई नहीं जानता।" यह भजन मैंने पढ़ा, तो मुझे लगा कि वह मुझे लागू हो सकता है। मुझे इस दुनिया में कौन जानता है ? मैं कौन हूँ ? मैं बिलकुल नाचीज हूँ और आप भी कौन हैं, जिन्होंने इतना काम किया है ? अत्यन्त उपेक्षित लोग अगर कोई हों, तो वह आप लोग हैं।

नवबाबू की ही बात देखिये। दो साल लगातार झगड़ा कर उन्होंने सभा से मुक्ति पायी और इस आन्दोलन में वे कूद पड़े। मैं उनकी तारीफ तो क्या करूँ ? इसके पहले भी कई बार मुझे मिलने का मौका आता था, लेकिन एक शब्द में भी मैंने उन्हें यह कभी नहीं सुझाया कि आप यह काम कीजिये। व्यक्तिगत कर्तव्य के बारे में सुझाने का मेरा स्वभाव ही नहीं है। लेकिन उनके दिल में आग थी, इसलिए उन्होंने वह पद छोड़ा। अब उनकी तारीफ मैं करूँ, तो उसमें शोभा नहीं, इसलिए मैं चुप रहा। किंतु उनके त्याग की इतनी उपेक्षा हुई कि इतनी गनीमत समझिये कि 'उन्होंने मूर्खता की', ऐसा किसीने नहीं कहा। उन्होंने बहुत बड़ा त्याग किया था, पर उसे कोई त्याग समझकर नहीं किया। उसमें उन्हें आनंद महसूस हुआ और आनंद का काम समझकर ही उन्होंने यह निर्णय लिया। आखिर मुझसे रहा नहीं गया और उनके गाँव की एक सभा में मैंने उसका जिक्र कर ही दिया। मैंने कहा : "माणिक्य वाचकर भी एक राज्य के मुख्य मंत्री थे और उन्होंने वह त्याग दिया था। ऐसा ही भगवान् बुद्ध ने किया। और ऐसा ही काम नवबाबू ने भी किया।"

हमारी एक लड़की अच्छी पढ़ी-लिखी है। पहले प्रोफेसर थी। वह काम छोड़कर मेरे पास आयी है। सात-आठ साल से मेरे साथ घूम रही है और काम कर रही है। कुछ ग्रन्थ भी उसने लिखे हैं। एक रचनात्मक कार्यकर्ता, गांधीवादी, बुजुर्ग उसे सलाह दे रहे हैं कि "अरी लड़की, यह क्या कर रही है ? तू तो अभी जवान है। विनोबा बूढ़ा हो गया। अभी तो तेरी जवानी का काल चल

रहा है। जरा सोच। आगे चलकर कमजोर हो जायगी। इसलिए जरा स्थिर जीवन कर ले।" इतनी उपेक्षा हद दर्जे की!! ऐसी हालत में भी आप लोगों ने काम किया है। मैं जानता हूँ कि भगवान् काम चला रहा है। भगवान् की ही कृपा है और इसीलिए यश-अपयश की तुलना आप मत कीजिये और काम करते जाइये।

क्या हमारी असफलता आपके लिए शोभास्पद है?

कुछ लोग कहते थे कि "आपने इतना काम किया है, इतने ग्रामदान प्राप्त किये हैं। लेकिन इसके आगे का काम करने के लिए आप फेल हो गये।" मैंने कहा: "मेरे फेल होने से आप पास होते हों, तो मैं पचास दफा फेल होने के लिए तैयार हूँ। मुझे बड़ी खुशी होगी। मेरे फेल होने से आप पास होते हैं, यह बोलने में क्या आपको इज्जत मालूम होती है? क्या यह आपको शोभा देता है? क्या मेरे घर की लड़की की शादी थी? इस तरह जब मैं सिंह-गर्जना करता हूँ, तो मेरे सामने कोई नहीं टिकता। मेरा दर्शन होते ही, मेरी गर्जना सुनते ही लोग चुप हो जाते हैं।"

यह कंजूसी क्यों?

भूदान में चालीस लाख एकड़ जमीन मिली है और आठ लाख से ज्यादा बँटी है। उसमें अच्छी फसल पैदा होती है। बाकी जमीन बाँटना बाकी है। उसमें मदद की जरूरत है, बहुत मेहनत का काम है, जो लोग कर रहे हैं। उसमें कुछ ऐसी भी जमीन है, जिस पर 'रिक्लेम' करना पड़ेगा। कल ही जयप्रकाशजी कह रहे थे कि "बिहार में इस जमीन के लिए सरकार ने बड़ी कंजूसी से तीस लाख रुपया मंजूर किया।" वहाँ के मंत्री कह रहे थे कि "यहाँ कितने कम खर्च में अच्छी-से-अच्छी फसल होती है, जब कि इस जमीन के लिए इतना अधिक खर्च करना पड़ रहा है।" सोचने की बात है, सरकार सिर्फ दूसरे राष्ट्रों के भय से सेना पर करोड़ों खर्च करती है। उसका 'बेसिक एज्युकेशन' (बुनियादी शिक्षा) कितना महँगा है। इन खर्चों में कमी क्यों नहीं की जाती? ध्यान रहे कि मैं किसी पर निर्भर नहीं हूँ, लेकिन कम-से-कम इस काम के लिए करोड़ रुपये तो मिलने ही चाहिए थे। आप लोगों ने ही गलती की कि कई लाख एकड़ पड़ी

जमीन के लिए कुछ ही लाख माँगे और सरकार ने भी उसमें से कुछ ही लाख दिये। यह तो ऐसा ही किस्सा हुआ कि किसी भिखारी को कुबेर का दर्शन हुआ, तो उसने उससे शाक के लिए चार पैसे माँगे और कुबेर ने दो पैसे दिये। अगर आप करोड़ माँगते, तो क्या बिगड़ता? एक शून्य और चढ़ा देते। इन दिनों शून्य का कुछ मूल्य ही नहीं रहा। आज हजारों की स्कीम स्कीम ही नहीं मानी जाती। जितने ज्यादे शून्य चढ़ायें, वह उतनी ही बड़ी स्कीम होती है। इसलिए आप लोगों ने दस करोड़ की माँग क्यों नहीं की?

सत्याग्रह का रणांगण विपक्षी का अन्तर बने

मैं कहना यह चाहता हूँ कि इस आन्दोलन को तराजू में डालकर नापना नहीं है। हमें यह नहीं देखना है कि हमने कितने ग्रामदान प्राप्त किये हैं, कितनी जमीन प्राप्त की है। हाँ, जागतिक दृष्टि से सोचना है। तब आप इस तरह सत्याग्रह की बात नहीं करेंगे। विज्ञान-युग में छोटे सत्याग्रह नहीं होते। सत्य तो बड़ा ही होता है, जो सबका ध्यान खींच सकता है। हमें सबका ध्यान खींचने का अभ्यास करना चाहिए। विज्ञान-युग ने हम-आप पर सत्याग्रह का शास्त्र विकसित करने की जिम्मेवारी डाली है। इसलिए हमें सोच-समझकर ऐसी युक्ति खोजनी चाहिए, जिससे सामनेवाला अन्दर देखे और उसके हृदय में धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र शुरू हो। क्रिकेट का खेल खेलनेवाले कहते हैं कि अगर ग्राउंड परिचित हो, तो खेलने में अनुकूलता होती है और अगर वह अपरिचित हो, तो अच्छे खिलाड़ी होने पर भी तकलीफ होती है। इसलिए किस ग्राउंड पर खेलें, इसीका महत्त्व है। इसी तरह हम किस ग्राउंड पर लड़ें, यही सोचने की बात है। इन दिनों यही माना जाता है कि लड़ाई शत्रु के क्षेत्र में ही होनी चाहिए, ताकि हार होगी, तो उसका नुकसान होगा और जीत होगी, तो भी उसीका नुकसान होगा। इसी तरह मैं कहता हूँ कि हम सत्याग्रह की लड़ाई सामनेवाले के हृदय-क्षेत्र में लड़ें। उसे अन्दर से यह महसूस हो कि मैं गलती कर रहा हूँ। अगर हमें ऐसी कोई युक्ति सूझे कि अन्याय करनेवाले मनुष्य के हृदय में धर्मक्षेत्र, कुरुक्षेत्र की लड़ाई छिड़ जाय और वह यह सोचे कि मैं गलती कर रहा हूँ, तभी वह सत्याग्रह होगा।

सेंट पाल की कहानी

सेंट पाल की बड़ी मशहूर कहानी है, जिसने ईसाइयत को खूब फैलाया। वह पहले कोई महापंडित था और ईसाइयत के विरोध में था। ईसा के शिष्य तो बिल्कुल ही सीधे-सादे थे। कोई मच्छीमार था, तो कोई बुनकर। मच्छीमार को ईसा ने कहा : "Come and follow me and I will make you fishers of men." (तुम मेरे पीछे आओ, मैं तुम्हें मच्छीमार नहीं, मनुष्यमार बनाऊँगा।) वह अपना जाल छोड़कर ईसा के पीछे गया। ईसा के शिष्य एक के पीछे एक मारे जाते थे, सताये जाते थे। यह पाल ही जो पहले 'साल' था, उन्हें बहुत सताता था। एक बार ईसा के अनुयायी कहीं जा रहे थे और उनको पाल सतानेवाला था। पर उसके पहले ही रात में उसे नींद नहीं आयी और सपने में भगवान् आकर बोले : "Saul, Saul ! why do you persecute me ?" (मुझे क्यों सताते हो?) साल ने कहा : "तुझे तो मैं नहीं सता रहा हूँ। तुझे कब सताया हूँ ?" तब ईसा बोले : "तू मेरे लड़के को सताता है, तो मुझे ही सताता है।" यह वाक्य उसने सुना और दूसरे दिन उसका परिवर्तन हुआ। वह साल का पाल होकर ईसा का सबसे श्रेष्ठ ऐसा शिष्य बना, जिसके दिल में भगवान् का प्रवेश हुआ। इसी तरह सामनेवाले के हृदय में ही हमारा प्रवेश होना चाहिए। जो ऐटम बम और हाइड्रोजन बम बनाता है, उसकी योजना करता है, उसके हृदय में ही लड़ाई शुरू हो कि "अरे, मैं यह ठीक नहीं कर रहा हूँ।"

सफलता का सन्देश

मेरे प्यारे भाइयो, मनु ने कहा है कि "अपनी असफलताओं से तुम अपने को अपमानित मत करो।" मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि अगर हमें जो असफलता मिली हो, तो वह अत्यन्त उज्ज्वल है। अगर नहीं मिली हो, तो वह उज्ज्वल है ही। इसलिए हम अपने को कभी अपमानित न करें। हम यह समझें कि हमारा काम हम नहीं कर रहे हैं। हम तो नाचीज हैं। वह हमें चला रहा है, हिला रहा है, बुला रहा है, घुमा रहा है। ऐसी भावना लेकर ही हम काम करें। हम आपको यकीन दिलाना चाहते हैं कि यह जमात हम्मीर बनेगी और दुनिया के

जन-समूह को परिवर्तित करेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है। यहशक्ति हमारी नहीं, भगवान् हमसे यह काम करा रहा है। यह उसीकी लीला है, वह नाचीज और कमजोर औजारों से काम करना चाहता है। ऐसी भावना, ऐसा विश्वास लेकर आप काम कीजिये, परीक्षण कीजिये, खूब निरीक्षण कीजिये, गलतियाँ सुधारिये और यह ध्यान में रखिये कि बावजूद इन सब गलतियों के भगवान् का एक पवित्र हाथ हमारे सिर पर है। यह श्रद्धा आप रखिये।

भाइयो, इस व्याख्यान में, इस व्याख्यान के दौरान में अगर कोई वाक्यों का कुछ सन्तुलन न रह गया हो, तो क्षमा मैं किसकी माँगूं? भगवान् के पास ही मैं यह रखता हूँ। उसके लिए वही जिम्मेवार है। वह मुझसे जो बुलवायेगा, वही मैं बोलूंगा।

(शाम को ५-४५ बजे स्थगित)

दूसरा दिन : पहली बैठक

शनिवार, २८ फरवरी, १९५९ : सुबह ८-४५ बजे

(खुला अधिवेशन)

धीरेन्द्र मजूमदार (विहार) :

इस वार सम्मेलन की परिपाटी में कुछ वदल किया है। पिछले दो-तीन वर्षों से विभिन्न विषयों के अनुसार अलग-अलग गोष्ठियाँ होती थीं और उन गोष्ठियों का निचोड़ सम्मेलन के खुले अधिवेशन में रखा जाता था। उसमें कुछ लाभ जरूर था; पर जिन्हें अनेक विषयों में रस होता था, उन्हें एक ही विषय की गोष्ठी में शामिल होना पड़ता। अबकी वार सारी चर्चाओं का लाभ पूरे सम्मेलन को मिले, इसलिए सव विषयों की चर्चा इसी मंच से करने का निश्चय किया गया है।

दूसरा वदल यह है कि अभी तक सर्वोदय-समाज के सम्मेलन में सर्व-सेवा-संघ की ओर से एक निवेदन पेश किया जाता था, जिससे कार्यकर्ताओं को आगे के काम का संकेत मिल जाता था; उसके वजाय इस साल जो निवेदन होगा, वह सर्व-सेवा-संघ का नहीं, वल्कि इसी सम्मेलन का होगा।

इस निवेदन का अपना एक इतिहास है। सन् १९५२ में सेवापुरी के सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर सर्व-सेवा-संघ ने इस आन्दोलन की जिम्मेवारी अपने ऊपर ले ली। अतः आगे के काम का संकेत देनेवाला निवेदन पेश करने का दायित्व भी सर्व-सेवा-संघ पर ही आ पड़ा। धीरे-धीरे यह आन्दोलन जनता में काफी फैल गया। आज हम ऐसे स्थान पर पहुँचे हैं कि निधि-मुक्ति और तंत्र-मुक्ति को लाँघकर सर्वोदय-पात्र और शान्ति-सेना की वातें चलने लगी हैं अर्थात् सारी जनता इस आन्दोलन में शरीक हो गयी है। जिन-जिनके घरों में सर्वोदय-पात्र रहेंगे, उनकी सम्मति इस काम में है, ऐसा माना जाता है। इसी तरह सूतांजलि देनेवाले सभी व्यक्ति सर्वोदय के वोटर हैं, ऐसा समझा जायगा। इस परिस्थिति में सर्व-सेवा-संघ कुछ छोटा पड़ जाता है। इसलिए देश के नाम

अपील करने का काम सर्व-सेवा-संघ न करके सर्वोदय-समाज का यह सम्मेलन ही करे तो उचित होगा, ऐसा हमने सोचा है।

अतः यहाँ जो भी चर्चाएँ होंगी, उनके आधार पर एक निवेदन तैयार करने का काम अध्यक्ष महोदय कुछ ऐसे विचारकों को सौंपेंगे, जिन्हें आपकी अनुमति हो। वे लोग आपस में विचार-विमर्श करके निवेदन तैयार करेंगे और आपकी सम्मति के लिए यहाँ पेश करेंगे। इस तरह वह निवेदन हम सबका होगा।

अध्यक्ष :

धीरेन्द्र भाई ने आपको अभी बताया है कि पिछले वर्षों की भाँति इस साल हम लोग अलग-अलग विभाग बनाकर चर्चाएँ नहीं करेंगे, बल्कि सारी चर्चाएँ इसी मंच से होंगी। इसका उद्देश्य यह है कि हम लोग जो भी निर्णय लेंगे, वह अधिक जनतांत्रिक (Democratic) होना चाहिए। जनतंत्र का अर्थ अब बदल रहा है। पहले की तरह बहुमत से नहीं, बल्कि एकमत से निर्णय करना इस नये जनतंत्र की आत्मा है। अतः आप सबकी सम्मति से एक समिति बनायी जायगी, जो यहाँ की चर्चाओं के आधार पर एक निवेदन तैयार करेगी। यह निवेदन आपकी सम्मति के लिए यहाँ पेश किया जायगा। इस समिति के लिए हमने जो नाम सोचे हैं, वे इस प्रकार हैं : श्री जयप्रकाश नारायण, श्री शंकरराव देव, श्री भाई धोत्रे, श्री काशिनाथ त्रिवेदी और श्री नारायण देसाई। आपसे प्रार्थना है कि आप इस समिति को स्वीकार करें। (थोड़ी देर ठहरकर) मैं मानता हूँ, आपने इस समिति को स्वीकार किया है।

सिद्धराज ढड्ढा (राजस्थान) :

हमारा यह सर्वोदय-सम्मेलन सर्वोदय के प्रेमियों का मेला है। देश के कोने-कोने से हम लोग यहाँ आते हैं। विदेशों में भी हमारी तरह सोचने और काम करनेवाले कई लोग हैं। उनके बारे में भाई डोनाल्ड ग्रूम कल आपको बतायेंगे। मैं अब पंढरपुर-सम्मेलन से अब तक सर्व-सेवा-संघ ने जो कुछ काम किया, उसका विवरण संक्षेप में सुनाऊँगा।

सन् १९५१ में भू-दान-यज्ञ-आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ भूमि-

समस्या को लेकर हुआ। पर इस सारे काम का लक्ष्य तो इससे कहीं व्यापक था। लोकनीति की स्थापना, याने समाज में उत्पन्न होनेवाली समस्याओं का हल लोगों के अपने अभिक्रम और पुरुषार्थ से हो सके, यह मुख्य उद्देश्य था। जाहिर है कि इस तरह का काम विचार-परिवर्तन से ही हो सकता है। इस पद्धति से भूमि-समस्या का हल कैसे हो, इसमें से भू-दान का जन्म हुआ। भू-दान याने जिनके पास जमीन है, वे भूमिहीनों के लिए उसका एक अंश दें, इससे शुरू होकर आन्दोलन जमीन पर से मालकियत के संपूर्ण विसर्जन याने ग्राम-दान तक पहुँचा। ग्रामदान ने भूमि-समस्या के हल और उसके बाद की भूमि-व्यवस्था का एक स्पष्ट चित्र दुनिया के सामने प्रस्तुत किया और खुशी की बात है कि ग्रामदान के इस विचार को येलवाल-परिषद् में देश के विभिन्न पक्षों के मान्य नेताओं का समर्थन मिला। ग्रामदान का विचार लोकमान्य हो गया। इस प्रकार पंढरपुर-सम्मेलन के पहले तक आन्दोलन का एक अध्याय पूरा हुआ। विनोबा के शब्दों में वह ज्ञानयोग का अध्याय था।

ज्ञानयोग के बाद कर्मयोग का प्रारम्भ हुआ। याने अब विचार के अनुसार ठोस और व्यापक काम करने के युग का प्रारम्भ हुआ है। ग्रामदान का विचार लोकमान्य हुआ, पर अब उसे लोकप्रिय बनाना है, जिससे वह व्यापक हो सके। ऐसा तभी हो सकता है, जब ग्रामदान के विचार से किसीको डर या आशंका न रहे, बल्कि निर्भयता महसूस हो और उत्तरोत्तर बढ़ती हुई सेवकों की सेना इस काम में लगे।

इस प्रकार ग्राम-दान के काम को आगे बढ़ाने के लिए शांति-सेना की अनिवार्यता महसूस हुई।

शांति-सेना की शुरुआत विनोबाजी की केरल-यात्रा के दरमियान तारीख ३ अगस्त, १९५७ को हुई थी, जब सर्वप्रथम वहाँ के ९ सेवकों ने शांति-सैनिक के तौर पर अपना नाम विनोबाजी को दिया। उन ९ में केरल के वयोवृद्ध कार्यकर्ता और नेता श्री केलप्पनजी प्रमुख थे। पिछले सालभर में शांति-सेना का विचार उत्तरोत्तर स्पष्ट और व्यापक होता गया और सैनिकों की संख्या भी बढ़ती गयी। शांति-सेना के लिए जिन लोगों ने नाम दिया है, उनकी संख्या जनवरी, १९५९ के अन्त तक कुल हिन्दुस्तान में ५७४ है।

ता० १४ से २२ अक्तूबर, १९५८ के दिनों में सेवाग्राम में शांति-सैनिकों का पहला अखिल भारतीय शिविर हुआ। भिन्न-भिन्न प्रान्तों से करीब ४० ऐसे भाई-बहन इस शिविर में इकट्ठे हुए। इस शिविर के अलावा अन्य प्रांतों में उत्कल, उत्तर प्रदेश और गुजरात में शांति-सैनिकों के प्रान्तीय शिविर हो चुके हैं। इसके अलावा ठाणा, कुलावा और बंबई शहर का एक तथा दूसरा कोल्हापुर-रत्नागिरि-सातारा क्षेत्र का, इस तरह बंबई-राज्य में दो क्षेत्रीय शिविर शांति-सैनिकों के हुए और एक आंध्र-राज्य के कड़प्पा जिले में।

शांति-सेना का यह प्रारम्भ-काल है। पिछले महीनों में देश के विभिन्न क्षेत्रों में कई ऐसे प्रसंग बने, जिनमें शांति-सैनिकों की कोशिश से या तो अशांति के मौके टल गये या अशांति और झगड़े होने के बाद उनका शमन हुआ। शांति-स्थापना का सबसे महत्त्वपूर्ण काम संयोग से केरल में ही हुआ, जहाँ से शांति-सेना की शुरुआत हुई। उस प्रदेश में सरकारी बसों के किराये के प्रश्न को लेकर विद्यार्थियों में काफी असंतोष फैला। कई सप्ताह तो विद्यार्थियों का आन्दोलन चलता रहा और केरल का वातावरण उससे अशांत हुआ। अंत में श्री केलप्पनजी के बीच-बचाव से यह मामला सुलझा और वातावरण शांत हुआ। इसी तरह अगस्त, १९५८ में अहमदाबाद शहर में जो दंगा हुआ, उस मौके पर भी वहाँ के शांति-सैनिकों ने उल्लेखनीय काम किया। इस दंगे में कई शांति-सैनिकों को मार खानी पड़ी। बड़ौदा में भी शांति-सैनिकों ने दंगों के बीच में जाकर शांति-स्थापना की कोशिश की। दंगे के क्षेत्र में जाकर शांति-सैनिकों ने रामधुन शुरू की। वहाँ भी शांति-सैनिकों पर मार पड़ी। पर ऐसी परिस्थिति में भी वे शांत रहे, जिसका वातावरण पर बड़ा अच्छा असर पड़ा। इसी तरह मद्रास-राज्य के रामनाथपुरम् जिले में श्री सुब्रह्मण्यम् नाडार ने शांति-स्थापना के लिए २१ दिन के उपवास किये और उन्हें अपने काम में सफलता मिली। उड़ीसा में कटक जिले के मानपुर गाँव में, मैसूर-राज्य के बागलकोट में, आन्ध्र के गुण्टूर और हैदराबाद में, पंजाब के फिरोजपुर में और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय आदि में अशांति के अवसरों पर वहाँ के कार्यकर्ताओं ने शांति-स्थापना के कुछ प्रयत्न किये।

सर्वोदय-पात्र का विचार शांति-सेना से भी बाद का है। वह हमारे कार्यक्रम

की अद्यतन कड़ी है और साथ ही आगे के सारे कार्यक्रम की बुनियाद भी है। देश के कुछ हिस्सों में सर्वोदय-पात्र का सघन रूप से काम हुआ है, जैसे—उत्तर-प्रदेश में बनारस जिले के सैयदराजा क्षेत्र तथा अलमोड़ा, आगरा और मेरठ जिलों में, उत्कल के कटक जिले में, असम के उत्तर लखीमपुर जिले में, आन्ध्र के हैदराबाद-सिकंदराबाद क्षेत्र में, बम्बई-प्रदेश के वर्धा जिले में, मध्य-प्रदेश के जबलपुर, रायपुर और नरसिंहपुर शहरों में और सरगुजा जिले के गम्हारडीह गाँव में। अभी हाल ही में सूरत और अहमदाबाद शहरों में सर्वोदय-पात्र का व्यवस्थित प्रयोग शुरू हुआ है। केवल २७ दिनों के प्रयास से अकेले सूरत शहर में ९ हजार सर्वोदय-पात्र रखे गये। सर्वोदय-पात्र का काम लोक-सम्मति और आर्थिक आधार की दृष्टि से बुनियादी और सर्वप्रथम महत्त्व का काम है। इतना ही नहीं, उसमें हमारे सातत्य और व्यवस्था-शक्ति की भी कसौटी है। काम के लिए तन्त्र और निधि दोनों चाहिए, पर दोनों नीचे से, आम जनता के भरोसे, खड़े होने चाहिए। सर्वोदय-पात्र के कार्यक्रम में इन दोनों बातों को पूरा करने की क्षमता है। घर-घर में पात्र रखे जायँ, तो उनके अनाज के संग्रह, उसकी बिक्री और उसका उचित विनियोग—इन सब कामों के लिए व्यापक और ठोस संगठन जरूरी होगा। ये स्थानीय संगठन ही हमारी क्रान्ति की प्रारम्भिक इकाइयाँ होंगी। सर्वोदय-पात्र के संग्रह और उसके विनियोग का काम तो प्रारम्भिक काम होगा, पर इस काम के लिए खड़े किये गये संगठन का उपयोग कदम-ब-कदम क्रान्ति के काम को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सकेगा। ज्यों-ज्यों सर्वोदय-पात्र का काम व्यापक होगा, त्यों-त्यों हमारा संगठन भी व्यापक और गहरा होता जायगा।

शांति-सेना और सर्वोदय-पात्र हमारे काम की बुनियाद हैं। हमारा तात्कालिक लक्ष्य यही है कि हिन्दुस्तान के हर गाँव में ग्रामदान हो। इस तरह शांति-सेना, सर्वोदय-पात्र और ग्रामदान ये सब मिलकर एक ग्राम-स्वराज्य के कार्यक्रम के ही अंग हैं।

पंढरपुर-सम्मेलन तक ग्रामदानी गाँवों की संख्या ४००० के लगभग थी। १९५८ के अंत तक ४५०० के करीब रही।

पिछले तीन-चार वर्षों में विचार-प्रचार के फलस्वरूप ग्रामदान तो होते

गये, पर कार्यकर्ताओं की कमी के कारण ऐसे ग्रामदानी गाँवों से हमारा संपर्क बराबर नहीं रहा। इसलिए ग्रामदान के बाद इन गाँवों में ग्राम-स्वराज्य की तरफ जो कदम बढ़ना चाहिए था, वैसा अधिकांश गाँवों में नहीं हो सका।

कुछ शक्ति शांति-सेना और सर्वोदय-पात्र में लग जाने के बावजूद ग्रामदान का प्रचार और ग्रामदान-प्राप्ति का काम जारी रहा। विनोबाजी की पश्चिम खानदेश की यात्रा के समय सितम्बर १९५८ में १५३ गाँव के पूरे अक्राणी महाल का ग्रामदान हुआ। इसी क्षेत्र में अक्कलकुआँ तालुके में १५६ ग्रामदान हुए। जनवरी १९५९ में विनोबाजी की राजस्थान-यात्रा के प्रारंभिक दिनों में डूँगरपुर, बाँसवाड़ा क्षेत्र में करीब १२० ग्रामदान हुए हैं। विनोबाजी की पदयात्रा के अलावा इसी प्रदेश के जयपुर जिले की एक तहसील में करीब-करीब एक पूरे पंचायत-क्षेत्र का ग्रामदान हुआ है। हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रदेशों में नीचे लिखे अनुसार ग्रामदान के सघन क्षेत्र प्रकट हुए हैं :

आसाम	–उत्तर लखीमपुर
आन्ध्र	–कड़प्पा, महबूबनगर
उड़ीसा	–कोरापुट, बालेश्वर, मयूरगंज, गंजाम
उत्तर प्रदेश	–मिर्जापुर
केरल	–कोजीकोड़, त्रिचूर, पालघाट
तमिलनाड़	–मदुराई (तिरुमंगलम्)
बिहार	–संथाल परगना
बंबई (गुजरात)	–बड़ौदा, बनासकांठा
,, (महाराष्ट्र)	–पश्चिम खानदेश, ठाणा, कोलाबा और रत्नागिरि
बंगाल	–पुरुलिया
मध्यप्रदेश	–सरगुजा
मैसूर	–धारवाड़, कारवार
राजस्थान	–डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, जयपुर

भारत के कुल ३०० जिलों में से १३० जिले ऐसे हैं, जिनमें एक-न-एक ग्रामदान हुआ है।

ग्रामदान से ग्राम-स्वराज्य की स्थापना का रास्ता खुलता है। इस दृष्टि

से और इसलिए भी कि सर्वोदय के इस काम में लगे हुए हम कार्यकर्ताओं की संख्या सीमित है, ग्रामदान के बाद ग्राम-निर्माण का काम नमूने के तौर पर कुछ क्षेत्रों में ही हाथ में लेने की हमारी नीति रही है। शुरू में तो उत्कल के कोरापुट जिले में ही सर्व-सेवा-संघ की ओर से निर्माण का काम हाथ में लिया गया था। अब कुछ दूसरे क्षेत्रों में, जहाँ सघन ग्रामदान हुए हैं, ग्रामदानोत्तर निर्माण का काम जारी है। मद्रास जिले के तिरुमंगलम् तालुके में, जहाँ श्री एस० जगन्नाथन् बैठे हैं, सहकारी समितियों द्वारा ग्राम-निर्माण-कार्य चल रहा है। बिहार के संथाल परगने में श्री मोतीलाल केजरीवाल पूरे थाना-दान का संकल्प करके उस क्षेत्र में बैठे हैं। काफी संख्या में वहाँ ग्रामदान हो चुके हैं और निर्माण-काम भी हाथ में लिया गया है। सरगुजा (मध्य-प्रदेश) में श्री दादाभाई नाईक की देखरेख में, पश्चिम खानदेश के अक्राणी-अक्कलकुआँ क्षेत्र में श्री ठाकुरदास बंग और पूर्णियां में श्री वैद्यनाथबाबू की देखरेख में तथा केरल में श्री केलप्पनजी और वहाँ के सर्वोदय-मंडल की देखरेख में निर्माण-काम शुरू हुआ है। इसी तरह कोलाबा और रत्नागिरि जिले में जिला नव-निर्माण समितियों द्वारा, राजस्थान में राजस्थान समग्र-सेवा-संघ के तत्त्वावधान में, गुजरात के बनासकांठा और बड़ौदा जिले में वहाँ की नव-निर्माण समिति की देखरेख में तथा श्रमभारती, खादीग्राम द्वारा ललमटिया क्षेत्र (बिहार) में काम हो रहा है। इसके अलावा कई गाँवों में लोगों ने स्वयंप्रेरणा से स्थानीय कार्यकर्ताओं के बल पर निर्माण-काम उठा लिया है। इनमें प्रथम ग्रामदानी गाँव मँगरौठ, उड़ीसा में गरंडा, श्रीरामपुर आदि, मध्य-प्रदेश के सरगुजा जिले में गम्हारडीह और बिहार में बेराँई, बेलसरा, चटमाडीह आदि गाँव शामिल हैं।

ग्रामदान और ग्राम-स्वराज्य का काम आज के सारे प्रवाह से उल्टी दिशा में जानेवाला काम है। प्रचलित आर्थिक और सामाजिक रचना उसकी विरोधी है। सारा वातावरण परस्पर सहयोग और समाज के लिए समर्पण करने की भावना के प्रतिकूल है। ग्राम-स्वराज्य का काम तो ग्रामदान का क्षेत्र और वातावरण व्यापक होने पर ही असली माने में आगे बढ़ेगा। परिस्थिति की प्रतिकूलता तथा धन-जन के अल्प साधनों को देखते हुए फिर भी जो कुछ हुआ है, वह नगण्य नहीं है। उदाहरण के लिए बिहार के मुंगेर जिले में बेराँई

नाम का एक ग्राम है। ५ फरवरी १९५८ को स्वर्गीय श्री लक्ष्मीबाबू की पदयात्रा में इस ग्राम का ग्रामदान हुआ। ग्रामदान के बाद पिछले सालभर में इस गाँव में सामाजिक जीवन का अपूर्व विकास हुआ है। गाँव के लोगों ने अपना सारा श्रम ग्राम-समाज का माना है। बाहर का कोई भी व्यक्ति मजदूर लेने आता है, तो गाँव की समिति के मार्फत ही ले सकता है। गाँव में एक शादी और सात श्राद्ध हुए, जिनका खर्च सारे गाँववालों ने उठाया।

गाँव की बालवाड़ी का सारा खर्च तथा पड़ोस के गाँव की माध्यमिक शाला में जानेवाले इस गाँव के करीब बाईस-तेईस बच्चों का सारा खर्च गाँव-समाज की ओर से होता है यानी जिनके बच्चे हैं, सिर्फ उन कुटुम्बों की ओर से नहीं। हर दिन गाँव के लिए कम-से-कम दो घंटे श्रमदान होता है। पिछले एक साल में गाँव के लोगों ने ४६००) नकद ग्राम-कोष में इकट्ठा किया है। इसके अलावा सामूहिक श्रम से एक तालाब और दो फर्लांग की एक सड़क भी बनायी है। इस सारे काम की लागत करीब ४॥ हजार और होगी। इस तरह सिर्फ सालभर में कुल ९०००) की पूँजी इन मजदूरों ने अपने श्रम से इकट्ठी की। पिछले साल गाँववालों ने संकल्प किया था कि १ जनवरी, १९५९ तक सारा गाँव वस्त्र-स्वावलंबी हो जायगा और यह संकल्प उन्होंने पूरा किया। आज इस गाँव के हर शख्स के बदन पर गाँव की बनी हुई खादी है। गाँव के करीब ८०-८५ परिवारों में इस वक्त २५० चरखे चल रहे हैं। गाँववालों ने ईंटें और खपरैल बनाना सीख लिया है और तय किया है कि हर साल पाँच नये मकान अपने श्रम से बनायेंगे और इसकी शुरुआत गाँव के जिस कुटुम्ब के पास सबसे खराब घर है, उससे वे करने जा रहे हैं। गाँव में जो खादी-कार्यकर्ता काम कर रहे हैं, उन्हें खादी संघ से १००) महीना मिलता है। उसमें से ३०) महीना तो उन्हें अपने बूढ़े बाप को भेजना होता है, अपने लिए ग्राम-समाज द्वारा तय की गयी एक रुपया रोज की मजदूरी के हिसाब से ३०) वे लेते हैं, बाकी की रकम गाँव के कोष में जमा करते हैं।

ग्रामदान हुआ हो और उचित मार्गदर्शन मिलता रहे, तो कैसा अद्भुत काम हो सकता है, उसकी बेराँई एक जिन्दा मिसाल है। भारत के साढ़े पाँच लाख गाँवों में से ग्रामदान साढ़े चार हजार में ही हुआ सही और उन साढ़े चार

हजार में भी वेराँई एक ही हो, तब भी ग्राम-स्वराज्य का सपना देखनेवाले हम लोगों में भविष्य के लिए आशा और उत्साह भरने के लिए क्या यह काफी नहीं है ?

ग्रामदानोत्तर निर्माण-काम के महत्त्व को देखते हुए इस साल सर्व-सेवा-संघ ने अपनी निर्माण समिति को फिर से पुनर्गठित किया है। ग्रामदानी गाँवों में चल रहे निर्माण-काम में सलाह देना, उनको मदद पहुँचाना, सरकारी तथा गैर-सरकारी सूत्रों के साथ निर्माण-काम के लिए बनी हुई प्रान्तीय समितियों के मार्फत उनका सम्पर्क जोड़ना, यह सब इस समिति का काम है। श्री रामकृष्ण पाटील ने इस समिति के संयोजक की जिम्मेदारी उठाना स्वीकार किया है।

गत पंढरपुर-सम्मेलन के पहले सामुदायिक विकास के मंत्री व उच्च अधिकारियों के साथ सर्व-सेवा-संघ के प्रतिनिधियों की दो बैठकें दिल्ली में हो चुकी थीं। ग्रामदानी गाँवों की व्याख्या के लिए ग्रामदान ऐक्ट की आवश्यकता महसूस हुई तथा सामुदायिक विकास खण्डों में भूदान-ग्रामदान के विचार के परिचय के लिए संघ की पत्र-पत्रिकाएँ व साहित्य भेजने का तय हुआ।

पंढरपुर-सम्मेलन के बाद दिल्ली में कुछ बैठकें हुईं। इसके अलावा श्री पाटील भी समय-समय पर संघ की ओर से सामुदायिक विकास मंत्रालय के अधिकारियों से मिलते रहे। ग्रामदान ऐक्ट का मसविदा तैयार हुआ और संघ की प्रबंध समिति द्वारा संशोधन के बाद वह केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों को भेज दिया गया है। यह विषय इस समय योजना आयोग के विचाराधीन है। आयोग ने हाल में ही ग्रामदान ऐक्ट के मूलभूत सिद्धांतों को मान्यता देकर ऐक्ट का मसविदा राज्य-सरकारों को भेज देने का आदेश दे दिया है।

संघ के प्रकाशन-विभाग की ओर से साहित्य और पत्र-पत्रिकाएँ सामुदायिक विकास खंडों को भेजी जा चुकी हैं।

सामुदायिक विकास-विभाग ने अपने विभिन्न प्रशिक्षण-केन्द्रों में सर्वोदय व ग्रामदान संबंधी व्याख्यानमालाओं का आयोजन भी किया, जिनमें कहीं-कहीं सर्वोदय-कार्यकर्ताओं ने जाकर विचार समझाया।

सामुदायिक विकास और ग्रामदान-आन्दोलन के परस्पर सहयोग को कार्यान्वित करने की दृष्टि से प्रत्येक प्रदेश में संघ के प्रतिनिधियों की सूचना सरकार

को भेजी गयी, जिसके आधार पर उन्होंने उनसे संपर्क किया। कुछ प्रदेशीय सरकारों ने 'रिफ्रेशर कोर्स' का आयोजन किया है।

खादी-ग्रामोद्योग-आयोग ने एक ग्रामदान-स्वावलंबन-विभाग कायम किया है। इस विभाग की ओर से ग्रामदानी गाँवों के लिए ग्राम-कार्यकर्ता और ग्राम-सहायकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था हुई है। अभी इसके लिए श्रमभारती, खादी-ग्राम और कोरा-केन्द्र, बोरिवली (बम्बई) में दो ग्रामदानी विद्यालय स्थापित किये गये हैं। इन विद्यालयों से प्रशिक्षित कार्यकर्ता ग्रामदानी गाँवों में जाकर नव-निर्माण का काम करेंगे। सर्वोदय-मंडल या ग्राम-निर्माण-समितियों की माँग पर ग्रामदान के सघन क्षेत्रों में आयोग अपने खर्च से इनकी सेवा उपलब्ध करेगा।

कार्यकर्ताओं की सेवाओं के अतिरिक्त ग्रामदानी गाँवों में उद्योगों के लिए भी आयोग सहायता देता है। संघ ने तय किया है कि स्थानीय कार्यकर्ताओं या संस्थाओं की ओर से नव-निर्माण की योजनाएँ उनके प्रांतीय प्रतिनिधियों की मार्फत संघ की निर्माण-समिति के पास भेजी जायँ और वह उन्हें अपनी सिफारिश के साथ आयोग को भेजे।

श्री जयप्रकाशजी की यूरोप-यात्रा निःसंदेह इस वर्ष की एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

श्री जयप्रकाशजी को इंग्लैण्ड आने के लिए वहाँ की तीन संस्थाओं से निमंत्रण मिला था: 'सोशलिस्ट यूनियन', 'ब्रिटिश एशियन ओवरसीज फेलोशिप' और 'सोसायटी ऑफ फ्रेण्ड्स पीसकमेटी'। यूरोप के तथा पश्चिमी एशिया के दूसरे देशों के भ्रमण की व्यवस्था 'कांग्रेस फार कल्चरल फ्रीडम' नाम की एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था ने की थी।

श्री जयप्रकाशजी तथा प्रभावती बहन ता० २ मई, १९५८ को यूरोप के के लिए रवाना हुए और २० सितम्बर को हिन्दुस्तान लौटे। सर्व-सेवा-संघ के सहमंत्री, सिद्धराज ढड्ढा भी इस यात्रा में श्री जयप्रकाशजी के साथ थे। करीब ४॥ महीने की इस विदेश-यात्रा में यूरोप और पश्चिम एशिया के करीब २१ मुल्कों में गये। इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य विदेश में ऐसे लोगों से संपर्क स्थापित करने का था, जो समता और बन्धुता के आदर्शों की ओर समाज को अग्रसर करने के बारे में चिंतन और काम करते रहते हैं। जगह-जगह शांतिवादी

और गांधीजी के विचार से प्रभावित लोगों से संपर्क होना स्वाभाविक था। कई जगह लेखकों और विचारकों की छोटी-बड़ी गोष्ठियाँ भी हुईं, जिनमें वहुत उपयोगी विचार-विनिमय हुआ। इस प्रकार की करीव ४० गोष्ठियाँ इस यात्रा के दरमियान हुईं और इनके अलावा करीव ५० आम सभाएँ भी हुईं, जिनमें भूदान-ग्रामदान के विचार और काम की जानकारी लोगों ने वहुत दिलचस्पी के साथ सुनी। करीव-करीव सभी देशों में वहाँ के चोटी के राजनैतिक नेताओं से भी जयप्रकाशजी की भेंट हुई।

इस यात्रा के दरमियान लंदन में एक छोटी-सी सभा इस बात की चर्चा के लिए हुई कि आज उद्योग-व्यापार आदि जो व्यक्तिगत मुनाफे के लिए चलते हैं और कुछ व्यक्तियों की निजी मिल्कियत माने जाते हैं, वह किस तरह संगठित हों कि समाज-हित में उनका कारोवार चले। इस सभा में कुछ कारखानेदार और व्यापारियों के अलावा राज्य की ओर से चलनेवाले उद्योगों के तथा इंग्लैण्ड के मजदूर तथा सहकार पार्टियों के प्रतिनिधि भी थे। गांधीजी ने ट्रस्टी-शिप की जो वात उद्योगों के लिए कही थी, उसी दिशा में इनमें से वहुत से लोगों का चिंतन चला है। इस सभा में तय हुआ कि इस दिशा में विचार और चिंतन को आगे वढ़ाने के लिए दो दिन का एक सेमिनार आयोजित किया जाय। इस सेमिनार के लिए श्री जयप्रकाशजी यूगोस्लाविया से फिर दुबारा लंदन गये। इंग्लैण्ड के कुछ अच्छे विचारकों और उद्योगपतियों में इस विषय की ओर गहरी दिलचस्पी पैदा हुई है और आशा है कि यह काम वहाँ आगे बढ़ेगा।

जयप्रकाशजी की इस यात्रा से इस दिशा में होनेवाले प्रयत्नों से हिन्दुस्तान के सर्वोदय-आन्दोलन का विदेशों में उपयोगी सम्पर्क स्थापित हुआ है।

अगस्त १९५८ में चालीसगाँव (खानदेश) में सर्व-सेवा-संघ के सदस्यों व निमंत्रितों के साथ देश की प्रमुख रचनात्मक संस्थाओं के प्रतिनिधियों का जो सम्मेलन हुआ, वह सर्वोदय की दिशा में होनेवाले कामों में इस वर्ष की दूसरी महत्त्वपूर्ण घटना थी।

सर्वोदय के लक्ष्य को माननेवाली रचनात्मक संस्थाओं में परस्पर सहयोग कैसे स्थापित हो और इनके कामों में एकसूत्रता कैसे आये, इस पर विचार करने के लिए सर्व-सेवा-संघ के निमंत्रण पर ता० ८, ९, १० अगस्त १९५८ को

चालीसगाँव में श्री विनोबाजी की उपस्थिति में एक सम्मेलन हुआ। लगभग २५० व्यक्तियों ने इस सम्मेलन में भाग लिया। इनमें अधिकांश रचनात्मक संस्थाओं के प्रतिनिधि थे। खादी-ग्रामोद्योग, कृषि, गोपालन, नयी तालीम, हरिजन-सेवा, प्राकृतिक चिकित्सा आदि भिन्न-भिन्न रचनात्मक कामों को ग्राम-स्वराज्य की सिद्धि की दिशा में किस तरह मोड़ा जाय, इस पर विचार करने के लिए सम्मेलन ने अलग-अलग प्रवृत्तियों के लिए आठ गोष्ठियाँ बनायीं। इन गोष्ठियों की चर्चाओं के सार सम्मेलन में प्रस्तुत किये गये। सम्मेलन ने इन चर्चाओं के आधार पर एक खादी-ग्रामोद्योग काम के लिए तथा दूसरी अन्य रचनात्मक प्रवृत्तियों के लिए, इस प्रकार दो निवेदन स्वीकार किये।

चालीसगाँव-सम्मेलन के बाद २५, २६ सितम्बर, ५८ को साबरमती-आश्रम, अहमदाबाद में सर्व-सेवा-संघ की खादी-समिति के निमंत्रण पर खादी-कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें खादी-काम को नया मोड़ देने की दृष्टि से विभिन्न प्रश्नों पर विस्तार से चर्चा हुई और देश की प्रमुख खादी-संस्थाओं से प्रार्थना की गयी कि वे एक-एक प्रमुख कार्यकर्ता को इस काम के लिए मुक्त करें। यह भी तय हुआ कि संघ की खादी-ग्रामोद्योग-समिति को पुनर्गठित किया जाय। इसके अनुसार दिसम्बर १९५८ में संघ की प्रबंध समिति ने खादी-ग्रामोद्योग-समिति का पुनर्गठन किया। बिहार के श्री ध्वजाप्रसाद साहू इस समिति के अध्यक्ष और राजस्थान के श्री रामेश्वरजी अग्रवाल, मंत्री नियुक्त किये गये।

पुनर्गठित खादी-ग्रामोद्योग-समिति की पहली बैठक ४-५ जनवरी '५९ को सेवाग्राम में हुई, जिसमें आगे के काम की योजना व स्वरूप पर विचार हुआ। प्रत्येक प्रदेश में वहाँ की स्थानीय खादी-संस्थाएँ कुछ क्षेत्र चुनकर वहाँ स्वावलंबी खादी का प्रयोग करें, ऐसा तय किया गया। बिहार के पूसा रोड क्षेत्र में करीब २०० गाँवों में वस्त्र-स्वावलंबन का सघन प्रयोग किया जा रहा है। इन गाँवों की जन-संख्या करीब १,२१,००० है और परिवार-संख्या ३४ हजार। वैसे तो अंबर-प्रसार का काम इस क्षेत्र में दो-ढाई वर्षों से हो रहा है, किन्तु सघन कार्य एक वर्ष से किया जा रहा है। इस क्षेत्र में ४० प्रतिशत वस्त्र-स्वावलंबन तक सध गया है। एक दर्जन गाँवों में ६० प्रतिशत तक वस्त्र-स्वावलंबन

हुआ है। करीब ४५ हजार रुपये का कपड़ा हर महीने तैयार हो रहा है। वर्ग-गज में इसका परिमाण करीब ३५,६०० है। उत्तर प्रदेश में गांधी-आश्रम की ओर से दो ग्रामोदय-समितियों का संगठन शुरू हुआ है। राजस्थान में राजस्थान खादी-संघ की ओर से दोसा और राजगढ़-क्षेत्र में पूसा की तरह काम शुरू किया जा रहा है। अन्य प्रदेश भी इस दिशा में प्रयत्नशील हैं।

सघन क्षेत्रीय खादी-कार्य के अतिरिक्त खादी-काम को विकेन्द्रित करने की दृष्टि से बिहार खादी-संघ ने कुछ जिलों का काम स्थानीय संस्थाओं को सौंपा है। धीरे-धीरे वे गाँव की इकाई तक पहुँच जाना चाहते हैं।

सन् १९५६ के नवम्बर में पलनी (तमिलनाड़) में हुई संघ की बैठक में यह फैसला किया गया कि भूदान-आन्दोलन को तंत्र-मुक्त और निधि-मुक्त किया जाय। फलस्वरूप १ जनवरी १९५७ से भूदान-समितियाँ विसर्जित की गयीं और भूदान-कार्यकर्ताओं के लिए संचित निधि का आधार छोड़ दिया गया। उसी समय सर्व-सेवा-संघ ने भी तय किया कि उस समय चल रही संघ की खादी तथा शिक्षण आदि प्रवृत्तियों को छोड़कर संघ के आंदोलन संबंधी केन्द्रीय कार्यालय का खर्च वह अपनी संचित निधि से भी न करे, बल्कि सूतांजलि तथा संपत्ति-दान में से होनेवाली आय से ही चलाये।

भूदान-आन्दोलन के बढ़ने के साथ-साथ यह अपेक्षा भी निर्माण हुई कि सर्व-सेवा-संघ, जिसने इस आन्दोलन के देशव्यापी संयोजन की जिम्मेदारी स्वीकार की है, व्यापक और अधिकाधिक लोकसम्मत बने। इसके लिए यह आवश्यक था कि संघ अपनी संचित निधि या दूसरे ऐसे ही सूत्रों पर अवलम्बित न रहकर अपना काम सर्व-जन-आधारित रूप से चलाये। चालीसगाँव में संघ ने इस ओर एक और कदम आगे बढ़ाया। यह तय किया गया कि ग्राम-निर्माण-कार्य को छोड़कर आन्दोलन से सम्बद्ध संघ की प्रवृत्तियों का आवर्तक खर्च ३० जनवरी १९५९ से सूतांजलि, सर्वोदय-पात्र, सूत्रदान और श्रमदान के आधार पर ही चलाया जाय। सम्पत्तिदान भी यों तो जन-आधारित स्रोत ही है, पर वह उतना व्यापक नहीं है; विशिष्ट जनों तक ही वह सीमित रहा है। पिछली ३० जनवरी से संघ ने अपने खर्च के लिए यह विशिष्ट जन-आधार भी छोड़ा है और खर्च की कई मदें, जो पहले जन-आधार में शामिल नहीं थीं, अब हुई हैं। सर्वोदय-पात्र

के संग्रह का छठा हिस्सा केन्द्रीय खर्च के लिए सर्व-सेवा-संघ को भेजा जाय, ऐसा निर्देश श्री विनोबाजी ने किया है। चालीसगाँव के निर्णय के बाद कई प्रान्तों ने यह भी तय किया है कि इस वर्ष की सूतांजलि की सारी आय वे सर्व-सेवा-संघ को देंगे। विनोबाजी की पदयात्रा में उन्हें जो सूतगुंडियाँ भेट दी जाती हैं, वह सूत्रदान भी गुजरात, राजस्थान आदि प्रान्तों ने सर्व-सेवा-संघ को देना तय किया है। संतोष का विषय है कि निधि-मुक्ति का संघ का संकल्प अब तक पूरा हुआ है। आशा है, सर्वजन-आधार का संकल्प भी पूरा होगा। गत वर्ष करीब ७,३२,००० गुण्डियाँ सूतांजलि में अर्पित हुई थीं।

सन् १९४४ में जब गांधीजी जेल से छूटे, तो उन्होंने खादी और ग्रामोद्योग को अहिंसक समाज-रचना का प्रतीक बतलाकर तत्कालीन अखिल भारत चरखा-संघ को सात लाख देहातों की चालीस करोड़ जनता में विभक्त हो जाने का आदेश दिया। तभी से चरखा-संघ ने विकेन्द्रीकरण की नीति के अनुसार बहुत से प्रान्तों में चल रहा अपना खादी-काम स्थानीय संस्थाएँ बनाकर उनको सौंपना तय किया था। इन संस्थाओं को प्रमाणित करने का काम संघ ने अपने हाथ में रखा था। भूदान-आन्दोलन शुरू होने के बाद यह प्रक्रिया और भी तेजी से चली। इस बीच चरखा-संघ सर्व-सेवा-संघ में विलीन हुआ। प्रमाण-पत्र का काम भी नवनिर्मित खादी बोर्ड के सुपुर्द कर दिया गया। तमिलनाड़, केरल और नाग-विदर्भ का खादी-काम सर्व-सेवा-संघ के पास बाकी रहा था। यह काम भी इस वर्ष सारा स्थानीय संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दिया गया है। उत्पत्ति, बिक्री के खादी-काम से अब संघ पूर्णतया मुक्त हुआ है।

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ की ओर से पहले प्रकाशन-कार्य वर्धा में चलता था, किन्तु पुरी सर्वोदय-सम्मेलन के बाद कार्य की विशालता और व्यापकता की दृष्टि से मई, '५५ में प्रकाशन-विभाग का मुख्य दफ्तर काशी में ले आया गया। अब काशी के कार्यकाल को चार वर्ष हो रहे हैं। भाई राधाकृष्ण बजाज के संचालकत्व में वह सुचारु रूप से चल रहा है।

पिछले तीन वर्षों में अधिकतर भूदान-ग्रामदान संबंधी प्रचार-साहित्य एवं कुछ स्थायी मूल्य का साहित्य भी प्रकाशित किया गया। लेकिन ऐसे साहित्य में विनोबाजी की रचनाएँ ही मुख्य रहीं। उनके अलावा श्री कुमारप्पाजी,

धीरेन्द्रभाई, दादा धर्माधिकारी, श्रीकृष्णदासजी जाजू आदि का साहित्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

चालू वर्ष में मई, '५८ से फरवरी, '५९ तक कुल मिलाकर ७० पुस्तकें प्रकाशित की गयीं, जिनमें ३१ पुस्तकें तो नयी प्रकाशित हुई हैं और ३९ पुस्तकें पुनर्मुद्रित हैं।

इस वर्ष मई, '५८ से जनवरी, '५९ तक कुल बिक्री ३,६५,०००) की हुई है।

हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी के अतिरिक्त प्रान्तीय भाषाओं के लिए भी उस-उस प्रान्त की सर्वोदय-साहित्य-प्रकाशन-समितियाँ प्रकाशन कर रही हैं। मराठी का सारा प्रकाशन ग्राम-सेवा-मंडल, परंधाम विद्यापीठ प्रकाशन से होता है। उड़िया-साहित्य का प्रकाशन उत्कल खादी मंडल से होता है। पंजाबी का प्रकाशन पुस्तक भंडार, अंबाला से और गुजराती का 'यज्ञ प्रकाशन', बड़ौदा से हो रहा है।

विचार तो यह है कि देश और विदेश का विचार-प्रेरक और मौलिक साहित्य, जो सर्वोदय-विचार में सहायक हो, वह प्रकाशित किया जाय। कुछ अंग्रेजी ग्रंथों के हिन्दी अनुवाद करने की योजना भी बन रही है। यह जानकर खुशी होगी कि स्व० महादेवभाई की डायरी के हिन्दी प्रकाशन का विचार भी करीब-करीब तय हो गया है और प्रकाशन की स्वीकृति मिल गयी है।

सब भाषाओं और प्रान्तों के, संतों का साहित्य भी प्रकाशित करने का सोचा जा रहा है। इस विचार के पीछे दृष्टि यह है कि मानवी एकता और समन्वय-साधना के लिए विभिन्न संतों ने जो अनुभूति की, जो प्रेरणा दी, जो दर्शन दिया, उसका भान सारे देश को हो। इस दृष्टि से विनोबाजी द्वारा संपादित 'धम्मपद' ग्रन्थ प्रकाशित किया गया है। विनोबाजी की यह भी कल्पना है कि काशी जैसे विद्या-केन्द्र में सब भाषाओं के विद्वान् एक जगह रहें और सब भाषाओं का कार्य चले। महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन सब भाषाओं में एक साथ हो। इससे भाषा सम्बन्धी झगड़ों को कम करने में मदद मिलेगी, सब नजदीक आयेंगे।

हमने निरंतर यह कोशिश की है कि किताबों के दाम जनता की क्रयशक्ति को ध्यान में रखकर ही रखे जायँ। मुनाफे का तो कोई हेतु रखा ही नहीं

गया है। फिर भी कोशिश यह रही है कि प्रकाशन-कार्य में घाटा न रहे, तो अच्छा।

देशभर में भूदान-सर्वोदय-विचार के व्यापक प्रचार की दृष्टि से करीव-करीव आन्दोलन के शुरू से ही हिंदुस्तान की प्रमुख भाषाओं में साप्ताहिक या पाक्षिक आदि पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रही हैं। इस समय कुल वीस पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। इनमें सर्व-सेवा-संघ की ओर से हिन्दी साप्ताहिक 'भूदान-यज्ञ', उर्दू पाक्षिक 'भूदान तहरीक', अंग्रेजी साप्ताहिक 'भूदान' और अंग्रेज़ी मासिक 'सर्वोदय' ये चार पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं। विनोवाजी के दैनिक प्रवचन भी 'विनोवा-प्रवचन' के नाम से सप्ताह में तीन वार प्रकाशित होते हैं।

पिछले आठ वर्षों में भूदान-आन्दोलन के चलते विभिन्न कार्यक्रम और काम के तरीके हमारे सामने आये, पर पदयात्रा का जो तरीका शुरू से इस्तेमाल किया जा रहा है, उससे वढ़कर काम करने का दूसरा कारगर तरीका आज भी सुलभ नहीं है। सतत विचार-प्रचार होते रहने, दूर-दूर गाँवों में हमारी आवाज पहुँचने और देशभर में वातावरण पैदा करने के लिए पदयात्राएँ वहुत उपयोगी सावित हुईं। कई प्रान्तों में वहाँ के सेवकों द्वारा पदयात्राएँ होती रहती हैं। उत्तर प्रदेश में वावा राघवदासजी की पुण्य स्मृति में एक अखंड पदयात्रा का आयोजन किया गया। प्रान्तीय सर्वोदय-सम्मेलन देहरादून के वाद पिछले १५ अगस्त से यह पदयात्रा सतत चल रही है। जनवरी '५९ तक यह यात्रा प्रान्त के १८ जिलों में करीब एक हजार मील तक हो चुकी है। उत्कल में वहाँ के वयोवृद्ध कार्यकर्ता आचार्य हरिहरदास की पदयात्रा समय-समय पर चलती रही। इस यात्रा से कई जिलों में सर्वोदय-पात्र और शान्ति-सेना का काफी काम हुआ। असम में नौगाँव, उत्तर लखीमपुर, डिब्रूगढ़, शिवसागर आदि जिलों में प्रान्तीय पदयात्रा टोली गयी। गुजरात में पिछले तीन वर्षों की भाँति इस वर्ष भी श्री रविशंकर महाराज की पदयात्रा चलती रही। विहार में जहाँ स्व० लक्ष्मी-वावू का अपनी पदयात्रा के दौरान में देहान्त हुआ, उसी रोसड़ा ग्राम से अखंड पदयात्रा फिर से जारी की गयी। इसमें समय-समय पर प्रदेश के भिन्न-भिन्न हिस्सों के कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। इस टोली ने जनवरी '५९ तक ९००

मील की पदयात्रा की। बंगाल में श्री चारुचंद्र भंडारी की और गुजरात में श्री नारायण देसाई की पदयात्रा समय-समय पर चलती रही है। मैसूर में अखंड कर्नाटक सामूहिक पदयात्रा नवम्बर '५८ तक ९ जिलों में हो चुकी है। दिल्ली से सर्वोदय पदयात्री दल के नाम एक टोली पदयात्रा करने के लिए मार्च '५८ में निकली। इसमें उत्तर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब आदि प्रान्तों के कार्यकर्ता समय-समय पर सम्मिलित हुए। पंजाब में श्री यशपाल मित्तल ने विनोबाजी के प्रस्तावित यात्रा-मार्ग पर पदयात्रा की।

इन पदयात्राओं में विचार का काम तो मुख्य होता ही है, साथ में जमीन के बँटवारे और साहित्य-प्रचार का काम भी चलता है। वातावरण को बनाये रखने में इन पदयात्राओं का विशेष महत्त्व है।

पर इन सब पदयात्राओं का कलश और सारे आन्दोलन का हृदय और उसका प्रेरणा-स्रोत तो श्री विनोबाजी की अखंड चलनेवाली पदयात्रा ही है। पिछले आठ वर्षों से यह यात्रा जारी है और विनोबा का संकल्प है कि हिन्दुस्तान में ग्राम-स्वराज्य की स्थापना होने तक यह यात्रा अखंड जारी रहेगी। विनोबाजी तो एक प्रतीक हैं। देश में ही नहीं, दुनिया में भी आज समाज-परिवर्तन की एक भूख पैदा हुई है और जगह-जगह स्थूल रूप से न सही, पर भावना और आकांक्षा में हजारों-लाखों हृदय इस यात्रा में शरीक हैं।

आप हम सब भावनाओं से तो विनोबा की इस ग्राम-स्वराज्य-यात्रा में शरीक हैं ही, आवश्यकता इस बात की है कि हम सब सतत इस काम में लग जायँ। भारत के हर गाँव में ग्रामदान हो, हर घर में सर्वोदय-पात्र हो और हर गाँव में सेवक हों। हम सब मिलकर प्रार्थना और संकल्प करें कि ग्राम-स्वराज्य का यह सपना पूरा हो।

अध्यक्ष :

अब श्री नारायण देसाई सर्वोदय-पात्र के सम्बन्ध में बोलेंगे।

नारायण देसाई (गुजरात)

गुजरात के पंचमहल जिले में जब विनोबाजी की पदयात्रा चल रही थी, तो एक दिन वे एक ऊँचे टीले पर चढ़ गये। महाराज (रविशंकर महाराज)

और हम कुछ पीछे रह गये। महाराज बोले : "विनोबा को तो आड़े-टेढ़े रास्ते से जाने की आदत ही पड़ गयी है। हम भला उनके साथ कैसे चल सकेंगे ?" इसलिए हम नीचे ही रुक गये। लेकिन थोड़ी देर बाद हम भी ऊपर चले गये। चढ़ने समय कुछ थकान जरूर महसूस हुई, मगर ऊपर पहुँचने पर सारी थकान मिट गयी। वहाँ पर हमें एक सर्वोत्तम प्रवचन सुनने को मिला।

मैंने बाबा से कहा : "आप तो अपनी गति से सीधे ऊपर चढ़ते चले जाते हैं, मगर पीछेवाले सोचते हैं कि चढ़ाव बहुत कठिन है, इसलिए जो दूर होते हैं, वे दूर ही रहते हैं।"

इस पर बाबा ने जवाब दिया : "सर्वोदय-पात्र के सब लोगों को सीधे मैदान में चलने का मौका दे दिया है। अब सबको उस पर चलना चाहिए।"

हम लोगों को दो प्रकार के कार्यक्रम हाथ में लेने होंगे। पहला प्रकार होगा, गहराई से संशोधन यानी खोज करने का। इसमें हमें अच्छे काम के नमूने पेश करने होंगे। दूसरा प्रकार होगा, अपने काम को व्यापक बनाने का। घर-घर पहुँचकर हर हृदय में हमें पहुँच जाना चाहिए।

इनमें से दूसरे प्रकार के बारे में मैं यहाँ कुछ कहूँगा।

विनोबाजी आजकल सभी कार्यकर्ताओं से कहा करते हैं कि वे अपनी अधिकांश शक्ति सर्वोदय-पात्र के काम में लगायें, क्योंकि उससे हमारी शांति-पूर्ण क्रान्ति को घर-घर से लोक-सम्मति का आधार मिल जायगा। स्वराज्य तो आया है, पर अभी ग्राम-स्वराज्य लाना बाकी है। वास्तव में देखा जाय, तो स्वराज्य का आधार ग्राम-स्वराज्य ही है। ग्राम-स्वराज्य का आधार शांति-सैनिक हैं और शान्ति-सेना का आधार है सर्वोदय-पात्र। सर्वोदय-पात्र के सैद्धान्तिक पहलुओं पर हमें ध्यान देना चाहिए और साथ ही यह सोचना चाहिए कि उसका सातत्य कैसे बना रहे।

बापू ने जब हिन्दुस्तान में सबसे पहले राष्ट्रीय कार्यक्रम दिया था, तब वह बड़ा ही विचित्र था। वह ऐसा अजीबोगरीब कार्यक्रम था, जिसका परिचय उससे पहले कभी नहीं हुआ था। उससे पहले विरोध प्रकट करने के लिए बम फेंके जाते थे या पार्लियामेंटरी कार्यक्रम अपनाये जाते थे। पर जब रौलट कानून का विरोध करने का सवाल आया, तो बापू ने सारे देश से

कहा कि उपवास करो, हड़ताल करो। वैसे हमारे देश में उपवास तो पुराने जमाने से लोग करते आये हैं। सबके रक्त में वह चीज थी। परन्तु वह एक व्यक्तिगत वस्तु थी। गांधीजी के आदेश से जब सारा देश एक साथ मिलकर उपवास करने को तैयार हो गया, तो उसमें हजार गुनी ताकत आ गयी। एक तरह से हमारी कमजोरी ही हमारी ताकत बन गयी।

इसी तरह सर्वोदय-पात्र भी हमारे लिए बिलकुल नयी चीज हो, ऐसी बात नहीं है। उड़ीसा में जब सर्वोदय-पात्र का काम शुरू हुआ, तो लोगों ने कहा, हमारे लिए यह कोई नयी बात नहीं है। हमारे यहाँ रामकृष्ण मिशन आदि की तीन हाँडियाँ पहले से ही थीं, जिनमें हम प्रतिदिन मुट्ठीभर अनाज डालते थे। उसमें और एक हाँडी की वृद्धिभर हो गयी। यानी सर्वोदय-विचार की विशेषता यह है कि उसने पुराने संस्कारों को नये कार्यक्रम में जोड़ दिया है। बापू के उपवासवाले कार्यक्रम के साथ इसकी कड़ी ठीक बैठती है।

हमारे बचपन की बात है। हम लोग साबरमती-आश्रम में रहते थे। वहाँ सरकारी गुप्तचर (सी॰आई॰डी॰के लोग) आते और हम बच्चों को पिपरमिंट देकर गांधीजी के कामों की जानकारी हासिल करने की चेष्टा करते। हम लोग उनका दिया हुआ पिपरमिंट खा लेते और उनके प्रश्नों के सही उत्तर दे देते थे। वे लोग हमसे पूछते : "गांधीजी आजकल क्या कर रहे हैं ?" हम उनसे कहते : "गांधीजी आजकल इमली की चटनी बनाने के प्रयोग कर रहे हैं।" जब वे हमारा उत्तर सुनते, तो बड़े असमंजस में पड़ जाते। असल में वे लोग भयंकर बमों से भी ज्यादा इस इमली की चटनी से डरते थे; क्योंकि सारे राष्ट्र की सामर्थ्य उस इमली की चटनी बनानेवाले के पीछे खड़ी थी, इसी तरह राष्ट्र की सामर्थ्य हमारे सर्वोदय-पात्र के पीछे खड़ी हो जानी चाहिए। मैं मानता हूँ कि उसमें उतनी क्षमता अवश्य है।

आज गुजरात में ३० हजार सर्वोदय-पात्र हैं। अगर हम कोशिश करें, तो वे ३० लाख भी हो सकते हैं। क्योंकि राष्ट्रीय कार्यक्रम बनने की क्षमता सर्वोदय-पात्र में है। यही उसका सबसे बड़ा गुण है।

उसका दूसरा गुण है सौम्यता। अहिंसा की भी यही विशेषता होती है। सूक्ष्म और सौम्य वस्तु में अधिक शक्ति होती है। सन् '५७ में हमारा आन्दोलन

एक ऐसी अवस्था तक पहुँच गया था कि उससे भू-स्वामियों के मन में डर पैदा हो गया था। भूदान-कार्यकर्ताओं के गाँव में पहुँचने से पहले ही जमींदार गाँव छोड़कर चले जाते थे। यह आन्दोलन की शक्ति का सूचन था। परन्तु वह ठीक नहीं था। हमारा आन्दोलन सर्वोदय का आन्दोलन है, उससे किसीके भी मन में भय पैदा नहीं होना चाहिए। इसीलिए विनोबा ने कालड़ी में कहा कि "हमारे कार्यक्रम से संपूर्ण निर्भयता का वातावरण पैदा हो जाना चाहिए।" मैं मानता हूँ कि सर्वोदय-पात्र ने हमारे कार्य के प्रति लोगों में यह निर्भयता पैदा कर दी है।

इससे और भी एक लाभ होता है। इस पात्र के द्वारा हम जनता तक पहुँच जाते हैं और सर्वोदय के अन्य विचारों का भी प्रचार हो जाता है; क्योंकि लोग निर्भय होकर हमारी बातें सुनने को तैयार हो जाते हैं। सर्वोदय-पात्र विश्व-शांति के लिए लोकसम्मति प्रकट करता है।

सर्वोदय-पात्र के साथ बच्चे की मुट्ठी जोड़ दी गयी है। इसका अर्थ यह है कि बच्चों को नित्य-समर्पण के संस्कार दिलाने का वह एक साधन बन गया है। जीवन में संस्कारों का क्या महत्त्व होता है, यह बहनें अच्छी तरह जानती हैं, इसलिए सर्वोदय-पात्र रखने में उनसे आशातीत सहयोग प्राप्त हो रहा है।

हमारा यह अनुभव है कि शहरों और गाँवों की व्यवस्था अलग-अलग होनी चाहिए। उनमें कुछ बातें अलबत्ता समान हैं। मसलन लोगों को यह अच्छी तरह समझा दिया जाना चाहिए कि वे शांति के लिए अपनी सम्मति के तौर पर हर रोज अपने घर के सबसे छोटे बच्चे की एक मुट्ठीभर अनाज बच्चे के हाथ से ही सर्वोदय-पात्र में नियमित रूप से डलवा दें। अगर अनाज डालने में कठिनाई मालूम हो, तो हर रोज एक नया पैसा सर्वोदय-पात्र में डाला जाय। महीनेभर एक ही प्रकार का अनाज डाला जाय। अलग-अलग अनाजों की खिचड़ी सर्वोदय-पात्र में न बने।

हमारे यहाँ सर्वोदय-पात्रों का अनाज इकट्ठा करने के लिए सर्वोदय का कोई आदमी नहीं जाता। देनेवाला दाता स्वयं सर्वोदय के दफ्तर में जाकर अपना अनाज या पैसा दे आता है। उनके काम में मदद देने के लिए १०-१५ घरों का एक 'सर्वोदयपात्री' होता है। वह रजिस्टर रखकर लोगों को उनके दान

की रसीद दे देता है। ५०-१०० घरों को सर्वोदय-पात्र का स्मरण दिलानेवाला एक 'सर्वोदय-मित्र' होता है। सर्वोदय-पात्र से मिलनेवाले अनाज और पैसों का उपयोग शान्ति-सैनिकों की आजीविका के लिए किया जा सकता है। हम इतनी सावधानी अवश्य रखें कि सर्वोदय-पात्र रखनेवाले प्रत्येक परिवार को रसीद दी जाय और उसके दान की नोंद रखी जाय।

यह हमेशा पूछा जाता है कि एक बार शुरू किया गया सर्वोदय-पात्र कायम कैसे रखा जाय ? मेरे मत में सातत्य का जिम्मा हम सब पर है। अगर चार महीने तक लगातार हम उन लोगों से संपर्क रखकर सर्वोदय-पात्र को कायम रखें, तो वह हमेशा के लिए चलता रहता है। दिन में थोड़ा-सा समय देनेवाले काफी लोग गाँवों और शहरों में मिल जाते हैं। उनसे इस कार्य में काफी सहयोग प्राप्त किया जा सकता है। उनसे हम जरूर लाभ उठायें।

अध्यक्ष :

अब श्री शंकरराव देव ग्राम-स्वराज के बारे में अपने विचार आप लोगों के सामने रखेंगे।

शंकरराव देव (महाराष्ट्र):

आप सब जानते हैं कि यह सम्मेलन सर्वोदय-समाज का सम्मेलन है, जिसका आयोजन सर्व-सेवा-संघ करता है। गांधीजी के निर्वाण के बाद सेवाग्राम में गांधीजी के सहकारी और अनुयायी इकट्ठे हुए थे। उन्होंने गांधीजी के कार्यक्रम को आगे चलाने के लिए **'सर्वोदय-समाज'** नाम का एक ढीला-सा संगठन बनाया। कुछ लोगों ने इस संगठन में गांधीजी का नाम रखने का सुझाव रखा था; परन्तु वह स्वीकार नहीं हुआ; क्योंकि व्यक्ति चाहे जितना श्रेष्ठ हो, समाज का विचार उससे भी श्रेष्ठ होता है। फिर सर्वोदय-समाज की स्थापना ही गांधीजी का उद्देश्य था। इसलिए इस संगठन का नाम 'सर्वोदय-समाज' रखा गया। जिस शासनमुक्त, शोषण-रहित समाज की इमारत समता के आधार पर खड़ी होगी, वही सर्वोदय-समाज होगा। उसका निर्माण प्रेम और अहिंसा से ही होना चाहिए। इसलिए सर्वोदय के साथ प्रेम और शांति भी आ जाती है। इस

समाज की इकाइयों के सम्बन्ध का नियंत्रण प्रेम से होगा और उनके व्यवहार का आधार भी प्रेम ही होगा। यद्यपि प्रेम सहज एवं स्वाभाविक वस्तु है, फिर भी उसकी प्राप्ति बड़ी मुश्किल से होती है। क्योंकि अव्यक्त की उपासना कठिन होती है और व्यक्त की आसान। इसलिए सारे समाज का व्यवहार प्रेम से चलाना हो, तो उसकी व्यापकता को सीमित करना पड़ता है अर्थात् सामान्य आदमी की शक्ति-बुद्धि का खयाल रखकर ही योजना करनी पड़ती है। सामान्य व्यक्ति के लिए सगुण उपासना ही संभव होती है। इसलिए हमारे काम की इकाई सगुण होनी चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस समाज में कार्य करना हो, वह छोटा हो। यदि प्रेम को ही व्यवहार का आधार बनाना हो, तो समाज की इकाई छोटी होनी चाहिए।

हिन्दुस्तान ग्राम-प्रधान देश है। यहाँ सहज इकाई के रूप में गाँव ही सामने आता है। इसका मतलब यह नहीं कि आज ग्राम का जो स्वरूप है, वही आगे भी कायम रहे। आजकल हम लोग कहते हैं कि हमें ग्राम-स्वराज्य तक पहुँचना है। परंतु मुझे तो 'ग्रामराज' या 'ग्राम-स्वराज' की अपेक्षा 'ग्राम-समाज' शब्द अधिक पसन्द है। क्योंकि 'राज' या 'स्वराज' में सत्ता और अधिकार की बू आती है। हमें सौम्य से सौम्यतर और सौम्यतम की ओर प्रगति करनी हो, तो अपना उद्देश्य ग्राम-समाज की स्थापना ही होना चाहिए।

गांधीजी कहते थे कि हमारे गाँव 'स्वायत्त प्रजासत्ताक राज्य' बनें। यह कैसे होगा? यह अहिंसा के मार्ग से ही हो सकता है। हम सत्ता के लिए अंग्रेजों से लड़ते थे। हमने उनसे सत्ता छीन भी ली, लेकिन स्वायत्त ग्राम-प्रजासत्ताक की स्थापना अभी तक नहीं हुई है। वह तभी हो सकती है, जब सत्ता का हस्तांतरण शांति से हो और लोग अहिंसा को अपनायें। (If the transfer of power is peaceful and the masses are non-violent.)

गांधीजी कहते थे कि अहिंसात्मक समाज हिंसक साधनों से नहीं आ सकता। उनका कहना था कि साध्य और साधन समान होने चाहिए, उनमें संगति होनी चाहिए। पर जब हमारा देश आजाद हुआ, तब वह पूरी तरह शांतिमय तरीके से नहीं हुआ और न देश में अहिंसक वातावरण था। तब शांतिमय प्रक्रिया

हमारे हाथ में नहीं थी। भूदान-आन्दोलन की सबसे बड़ी देन यह है कि उसने हमें समाज-परिवर्तन की अहिंसक प्रक्रिया दे दी। जिसे हम खोजते थे, वह चीज हमें भूदान में मिल गयी। ग्राम-संकल्प के जरिये ग्रामनिर्माण और ग्राम-स्वराज का मार्ग हमें मिल गया; अहिंसात्मक प्रक्रिया मिल गयी।

प्रेरणा के लिए, उपक्रम के लिए बाह्य दबाव की आवश्यकता नहीं रहनी चाहिए। संकल्प में से ही सृष्टि का जन्म हुआ है। उसी तरह गाँव के लोग स्वेच्छा से, अपनी आन्तरिक प्रेरणा से और संकल्प से अपने नव-निर्माण का काम करें, तो वह अहिंसात्मक प्रक्रिया होगी। ग्राम-स्वराज किसी दिन सपने की दुनिया में था। वह ग्राम-संकल्प के कारण आज धरती पर उतर आया है। इसलिए मैं फिर कहता हूँ कि ग्राम-स्वराज के संकल्प की प्रक्रिया से ही हम आगे बढ़ सकेंगे।

इस ग्राम-स्वराज को व्यवहार में लाने के लिए 'स्वदेशी धर्म' की अत्यंत आवश्यकता है।' 'जो ब्रह्मांडी तो पिंडी' (जो ब्रह्मांड में होता है वही पिंड यानी शरीर में होता है।) हमारे विचार के लिए विश्व की व्यापकता हो और आचार के लिए पड़ोसी से हमारा सम्बन्ध जुड़े।

भूदान में से हमें ग्रामदान, ग्राम-संकल्प आदि चीजें मिली हैं, इसलिए ग्राम-स्वराज तो निश्चित बात है। प्रश्न केवल समय का है—'It is only the question of time.' दुनिया का तकाजा है कि इस कालावधि को हम कम करें। आज दुनिया की पहली जरूरत शांति है। ग्राम-स्वराज में समाज के सारे व्यवहार शांति एवं अहिंसा की बुनियाद पर होते हैं, इसलिए ग्राम-स्वराज की प्रस्थापना विश्व-शांति की ओर अगला कदम है। हममें जितनी ताकत होगी, उसके अनुसार जल्द या देरी से हम इस ग्राम-स्वराज की प्रस्थापना कर सकेंगे।

'ग्राम' शब्द पुराना है, इसलिए कुछ लोग घबड़ाते हैं; पर उसमें घबड़ाने ी कोई बात नहीं है। ग्राम का अर्थ केवल 'छोटा समाज' (A small ommunity) इतना ही है। गाँव का विस्तार कितना हो, इसका कोई ogmatic (दुराग्रहपूर्ण) उत्तर नहीं हो सकता। एक बात स्पष्ट है कि में परस्पर परिचय होने के कारण सामुदायिक जीवन की प्रेरणा ही

सबको साथ रखेगी। ग्रामदान और ग्राम-संकल्प ग्रामवासियों की एकत्रित प्रेरणा का ही प्रतीक है।

अध्यक्ष :

अब श्री जयप्रकाशजी शांति-सेना के बारे में बोलेंगे।

जयप्रकाश नारायण :

यह एक मिली-जुली सभा है। इसमें प्रतिनिधि भी हैं और आम लोग भी हैं। परंतु अब मैं जो निवेदन करूँगा, वह प्रतिनिधियों को ही लक्ष्य करके कहूँगा।

शांति-सेना का विषय-प्रवेश कराना मेरा काम है, न कि तात्त्विक विवेचन करना। शांति-सेना के विषय पर अब तक दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। एक सर्व-सेवा-संघ की ओर से और दूसरी हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की ओर से। आपने ये पुस्तकें न पढ़ी हों, तो कृपा करके पढ़ जायँ।

सारी दुनिया के लिए शांति का काम बड़ा प्यारा काम है, क्योंकि सबको शांति की भूख और अशान्ति का डर है। मगर शांति-स्थापना का काम कैसे किया जाय, यह लोगों को सूझ नहीं रहा है। वे शांति का काम करना तो चाहते हैं, पर साधन उनके पुराने ही हैं। अशांति और युद्ध के साधनों को बेशुमार बढ़ाकर कुछ लोग शांति लाना चाहते हैं। यह तो साफ तौर पर परस्पर-विरोधी बात है। पर वह चल रही है। हमारा देश, हमारी सरकार शांति पर विश्वास रखती है। मगर जब देश के भीतर अशान्ति फूट पड़ती है, तो उसे शांतिमय साधनों से मिटाने के बजाय अशांति के, हिंसा के साधन काम में लाते हैं। पुलिस और फौज को बुलाते हैं। बाहरी आक्रमण से रक्षा करने के लिए भी हमारी सरकार सेना पर ही निर्भर रहती है। इसमें से निकलने का मार्ग क्या है? हमारे प्रधानमंत्रीजी से लेकर एक अदने-से नागरिक तक सभीको इस विषय में सोचना चाहिए। शांति की बातें करना, उसके लिए तड़पना और फिर अशांति के काम करना—यह तो दिमागी गड़बड़ी का सबूत है।

एकपक्षीय निःशस्त्रीकरण (Unilateral disarmament) की

बात राजाजी ने, विनोबा ने और कल अध्यक्षजी ने भी की थी, पर यह हो कैसे ? जिसके हाथ में देश की रक्षा के सूत्र हों, वह यह कह सकता है कि देश की रक्षा सेना के बिना कैसे होगी—यह मैं नहीं जानता। यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे पास सेना नहीं रहेगी तो हम पर हमला नहीं होगा। संसद् में जब देश की रक्षा के बारे में चर्चा होती है, तो कृपालानी जैसे इक्के-दुक्के व्यक्ति को छोड़ बाकी सभी पक्षों के लोग कहते हैं कि फौज पर और खर्च करो, और खर्च करो, और खर्च करो। यह एक दुष्टचक्र है। गांधीजी के विचारों पर श्रद्धा रखनेवालों को इस चक्र को तोड़ डालना होगा, इस समस्या को हल करना होगा।

यूरोप में युद्ध के विरोधी लोग (Conscious objectors) हैं। वे कहते हैं कि हम युद्ध में घायलों की सेवा करेंगे, पर हथियार नहीं उठायेंगे। इससे उनकी आत्मा की रक्षा, आत्मा का समाधान अवश्य होगा, पर देश की रक्षा कैसे होगी ? इसका ठोस (Positive) उत्तर उन्हें देना होगा। इसका एक उत्तर शांति-सेना है।

कोई भी देश केवल फौज से अपनी रक्षा नहीं कर सकता। अगर जनता में आत्मविश्वास न हो, तो सेना कुछ भी नहीं कर सकती। अतः लोगों में हमें इस विश्वास का निर्माण करना होगा कि अहिंसक शांति-सेना से देश की रक्षा अवश्य हो सकती है। आज भारत में भी लोगों को ऐसा विश्वास और श्रद्धा नहीं है कि अहिंसा से हमारी रक्षा हो सकेगी। इसलिए देश की जनता में वह श्रद्धा हमें भरनी होगी; उनके आत्मबल को बढ़ाना होगा।

इस शांति-सेना की चर्चा गांधीजी के जमाने में भी चलती थी, आज भी चल रही है। परंतु अब तक उसे कोई अमली जामा नहीं पहना सका है। लोगों में यह भावना पैदा नहीं हुई है कि ये शांति-सैनिक हमारी रक्षा कर सकेंगे। आज तो वैसी सेना हमारे पास है नहीं। केवल ४००-५०० सैनिक हमारे पास हैं।

अब हमें विचार करना है कि इस काम को हम जोरों से आगे कैसे बढ़ायेंगे।

इस विषय में हम दो प्रकार से सोच सकते हैं। पहली बात यह है कि शांतिमय समाज की स्थापना कैसे हो ? यह एक बड़ा व्यापक प्रश्न है। इसके अहिंसक हल में जो भी लगे हुए हैं, वे सब शांति-सैनिक हैं। इस दृष्टि से रचनात्मक कार्य करनेवाले सभी कार्यकर्ता शांति-सैनिक हैं।

दूसरी बात यह है कि अशांतिमय समाज में शांति की स्थापना कैसे की जाय ? हमें समझ लेना चाहिए कि अशांतिमय समाज में अशांतिपूर्ण साधनों से शांति नहीं आ सकती। उसके लिए तो शांततापूर्ण साधन ही चाहिए। पत्थरबाजों पर गोलियाँ या लाठियाँ चलाने से पुलिस की विजय अवश्य होगी, उससे कानून की–Law and order की–स्थापना होगी, परंतु वह ऊपरी शांति होगी, अंदर से तो आग भड़कती ही रहेगी। अगर उसीको हम शांति समझें, तो वह आत्मवंचना होगी ।

मैंने अभी कहा कि रचनात्मक कार्यकर्ता शांतिमय समाज की स्थापना में लगे हुए शांति-सैनिक हैं, परंतु अशांत समाज में शांति-स्थापना करनेवाले सैनिक वे नहीं हैं। मौका पड़ने पर शांति की स्थापना के लिए हम अपने प्राणों को भी न्योछावर करने को तैयार रहें। इसकी तालीम सारे रचनात्मक कार्यकर्ताओं को मिलनी चाहिए। इसका मतलब यह है कि उनमें शांति-सैनिक बनने की क्षमताएँ, संभावनाएँ हैं। वे शांति-सैनिक बन सकते हैं। आज वे वैसे सैनिक नहीं हैं। संभव है, समय आने पर वे लड़खड़ा जायँ।

हिंसा की शक्तियाँ संगठित हैं। उनके विरोध में खड़ी होनेवाली अहिंसक शक्ति भी अच्छी तरह संगठित, आयोजित, व्यवस्थित होनी चाहिए। वह छिपी हुई नहीं, बल्कि प्रकट होनी चाहिए। जब लोगों में यह विश्वास पैदा होगा कि शांति-सेना से हमारी रक्षा हो जायगी, तो वे स्वयं ही कहने लगेंगे कि सेना पर होनेवाला खर्च कम करो। जब हमारे देश में शांति की रक्षा के लिए मर मिटने के लिए तैयार एक लाख लोग हो जायेंगे, तो हम सरकार से कह सकते हैं कि फौज को तोड़ दिया जाय।

अब सोचना यह है कि इस काम को आगे कैसे बढ़ाया जा सकता है ? हम देखते हैं कि बहुत कम लोगों ने शांति-सेना में अपने नाम लिखवाये हैं। ऐसा क्यों है ? कहते हैं कि खादी के काम में पचीस हजार लोग लगे हुए हैं। वे सब क्यों नहीं शान्ति-सैनिक बनते ? हिंसक क्रान्ति और हिंसक निर्माण में भेद है, इसलिए क्रान्ति के बाद भी बरसों तक निर्माण का काम चलता रहता है। पर अहिंसक क्रान्ति और अहिंसक निर्माण में कोई फर्क नहीं है। वे दोनों साथ-

साथ होते रहते हैं। इसलिए जो लोग अहिंसक निर्माण में लगे हुए हैं, उन्हें अहिंसक क्रान्ति के सिपाही भी बन जाना चाहिए।

कम-से-कम आंतरिक सुरक्षा के लिए तो सरकार को फौज का प्रयोग नहीं करना चाहिए। पर जब तक हमारे पास शान्ति-सैनिकों की एक बड़ी सेना तैयार नहीं हो जाती, तब तक विनोबाजी हिम्मत के साथ पंडितजी से कैसे कह सकेंगे कि आंतरिक शांति के लिए पुलिस या फौज का प्रयोग न किया जाय? मैं यह जानता हूँ कि शांति-सैनिक के निष्ठापत्र पर दस्तखत करना पूर्णतया निर्दोष नहीं है। पर संसार में कौन-सा काम पूर्ण रूप से निर्दोष होता है? जिन्होंने सेवा के लिए जीवन-दान दिया है, वे शांति के लिए प्राण-दान क्यों न दें? अगर यह नहीं होता, तो एकतरफा निःशस्त्रीकरण की बात करना बेकार है। मैं यह नहीं कहता कि आप बिना सोचे दस्तखत करें। पर सोच-विचारकर आपको इसमें अवश्य शामिल हो जाना चाहिए। जब शांति-सैनिकों की संख्या बढ़ जायगी, तो लोगों को विश्वास हो जायगा। आज दुनिया शांति की भूखी-प्यासी है, पर उसके लिए अपने पैरों पर खड़े होने की हिम्मत उसमें नहीं है। यह हिम्मत पैदा करने का काम हमारा है।

शांति-सैनिकों को शिक्षण देने का प्रबन्ध हो जाना चाहिए। इस काम को हमें जल्द-से-जल्द पूरा करना है।

इसके अलावा हम और भी कुछ कर सकते हैं या नहीं? हम देखते हैं कि राजनैतिक पक्षों के कारण भी अशांति फूट निकलती है। फिर कुछ लोग उससे लाभ उठाने की ताक में ही रहते हैं। इसलिए सब पक्षों के लोग मिलकर यह तय करें कि हम अशान्ति को बढ़ायेंगे नहीं, उसे Exploit नहीं करेंगे, उससे नाजायज फायदा नहीं उठायेंगे। इसकी शुरुआत तो उन्हें कर ही देनी चाहिए। कुछ पक्ष ऐसे भी होंगे, जो ऊपर से शांति की बात करें, पर भीतर से विश्वास न करें। उन्हें भी साथ लेना चाहिए। उससे कम-से-कम उनके मन की बात तो स्पष्ट हो जायगी। नारी-संस्था वगैरह दूसरी सामाजिक संस्थाओं को भी हम इसमें ले लें।

स्वराज की लड़ाई में कई सरकारी नौकर ऐसे थे, जो स्वराजवालों की मदद करते थे। आज भी उनके विषय में विचार किया जाना चाहिए। क्या वे

अब शांति-सेना में मदद कर सकते हैं ? यहाँ जो मंत्री वगैरह उपस्थित हैं, वे इसके बारे में सोचें, क्योंकि उससे हुकूमत को भी शांति बनाये रखने में मदद ही मिलेगी ।

ग्रामदानी गाँवों के क्षेत्रों में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं की यह कोशिश होनी चाहिए कि उन क्षेत्रों में पुलिस और अदालत के बिना काम चले, ऐसी शक्ति वहाँ की जनता अपने में पैदा करे । चोरी-डकैती का मुकाबला भी शांति-सैनिक और ग्राम-पंचायत वगैरह करें । इन मुद्दों के बारे में आप अपने विचार प्रकट करें ।

अध्यक्ष :

हमें खुशी है कि कांग्रेस की अध्यक्षा श्रीमती इन्दिरा गांधी यहाँ पधारी हैं । हम चाहते हैं कि वे यहाँ कुछ बोलें । अतः उनसे बोलने की मैं प्रार्थना करता हूँ ।

इन्दिरा गांधी :

मैं यहाँ कुछ कहने के लिए नहीं, बल्कि सुनने और सीखने आयी थी, क्योंकि आप सब लोग काम में और सेवा में बड़े हैं । मैं यह देखने आयी थी कि विनोबाजी किस तरह वायुमंडल पैदा कर रहे हैं ।

मेरा विचार है कि देश की विचारधारा में हम क्रान्ति नहीं ला सके, इसीलिए हमारे काम आगे नहीं बढ़ पा सके हैं ।

जयप्रकाशजी ने अभी शांति-सेना के बारे में जो कहा, उसमें से बहुत-से विचारों से मैं सहमत हूँ । पिछली लड़ाई के दिनों में मैं लन्दन में थी । वहाँ एक तरह की शांति-सेना-सी बनी थी । उसमें मैं काम करती थी । बमों से लगनेवाली आग हम बुझा सकते थे, पर बमों को गिरने से नहीं रोक सकते थे ।

देश के विभाजन के बाद दिल्ली में भी मैंने काम किया । पहले तो हमने यह सोचा था कि शहर के बुरे लोगों को पकड़ लिया जाय, तो शान्ति की स्थापना हो जायगी । मगर ऐसे लोगों को कहाँ तक पकड़ते रहते ? उसीमें हम फँस गये । क्योंकि सारा शहर ऐसे लोगों से भरा पड़ा था । इसलिए हमने सोचा

कि हर इलाके से अच्छे-अच्छे लोगों को लिया जाय और शांति की स्थापना में उनसे मदद ली जाय। अतः हमने मुसलमानों के मुहल्ले में जाकर यह पूछना शुरू किया कि यहाँ किस मुसलमान ने अपने हिन्दू भाई को बचाने की कोशिश की ? और हिन्दू मुहल्ले में जाकर पूछा कि यहाँ किस हिन्दू ने मुस्लिम भाइयों की रक्षा की थी ? इस तरह हर इलाके से अच्छे-अच्छे लोगों के नाम हमने प्राप्त किये और उनका संगठन किया। इससे काम आसान हो गया। मुझे लगता है कि शांति-सेना का काम भी इसी ढंग पर किया जाय। एक भी अच्छा आदमी मिले, तो वह अच्छाई के काम में आसपास के लोगों को घसीट सकता है। यही काम हमने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी कुछ हद तक किया है।

वैसे देखा जाय, तो आये दिन हमारे समाज में अन्याय की कितनी ही बातें होती रहती हैं। लेकिन उनके खिलाफ कोई आवाज नहीं उठाता। स्त्रियों, बच्चों और जानवरों पर अत्याचार होता देख हम चुप बैठ जाते हैं। हम लोगों में नागरिकता की भावना (Civic consciousness) नहीं है, उसे पैदा करना जरूरी है।

विनोबाजी बीज बोते जा रहे हैं। उनके वहाँ से चले जाने के बाद भी वह काम जारी रहे। वे जहाँ-जहाँ जाते हैं, वहाँ एक केन्द्रबिन्दु (Nucleus) बन जाय, तो उससे बुनियाद मजबूत बनेगी।

चीन के दार्शनिक कन्फ्यूशियस ने कहा है कि अँधेरे को गाली मत दो, उससे उजाला नहीं आयेगा। उजाला तो तब आयेगा, जब तुम दीया जलाओगे। विनोबाजी एक दीये की तरह हैं। उनसे प्रेरणा लेकर हरएक को दीया बन जाना चाहिए।

जब मैं कांग्रेस की अध्यक्षा बनी, तो सबसे पहले जो काम मैंने किया, वह यह था कि मैंने सब लोगों को न्योता दिया कि वे देश के काम में मेरा हाथ बँटायें। जितने विषय में जो सहयोग दे सकते हैं, उतने में वे दें। सब मिलकर एक छोटा-सा सर्वमान्य कार्यक्रम तय करें, तो गाड़ी जोरों से चलने लगेगी।

हम देखते हैं कि हमारे देश में सब लोग अलग-अलग ढंग से काम करते हैं, कोई मिलकर काम नहीं कर रहे हैं, इसलिए कोई पूरा नतीजा दिखाई

नहीं देता । मुझे आशा है कि ये दीप, जो अलग-अलग जल रहे हैं, वे एक जगह आकर बड़ी रोशनी करेंगे और बापू के सपने को वास्तविक रूप दे देंगे ।

अध्यक्ष :

एक भाई ने यह जानकारी माँगी है कि ग्रामदानी गाँवों में खेती का संगठन कैसे होता है, वहाँ कैसे काम चलता है वगैरह । हमारी पत्रिकाओं और प्रकाशित पुस्तकों में इस विषय में काफी जानकारी निकल चुकी है । जो भाई ज्यादा जानना चाहें, वे कृपया मंत्रीजी से मिलें ।

(११-१५ बजे स्थगित)

दूसरा दिन : दूसरी बैठक

[प्रारम्भ में श्री सुरेशराम भाई ने अध्यक्ष श्री केलप्पनजी के अंग्रेजी भाषण का हिन्दी अनुवाद संक्षेप में पढ़ सुनाया ।]

शनिवार, २८ फरवरी, १९५९ : तीसरे पहर २-४५ बजे

अध्यक्ष :

सुबह जिन विषयों में प्रवेश कराया गया था, उन पर अब चर्चा होगी । अब मास्टर तारासिंहजी बोलेंगे ।

मास्टर तारासिंह (पंजाब) :

बहनो और भाइयो, मैं इस सम्मेलन में पहली बार शामिल हुआ हूँ । हालाँकि इस काम में मुझे शुरू से ही दिलचस्पी रही है । मैं यहाँ इसलिए आया हूँ कि कुछ देखूँ, सुनूँ और सीखूँ ।

मैंने सुना था कि विनोबा गरीबी बाँट रहे हैं । मुझे उसमें कोई दोष दिखायी नहीं दिया । जब अपने पास गरीबी ही हो, तो अमीरी कहाँ से बाँटें ? फिर अमीरी बाँटना तो एक मामूली बात है । उसमें लेनेवाले का फायदा भले ही न हो, लेकिन देनेवाले का मन जरूर शुद्ध हो जाता है । गरीबी बाँटने के मानी

हैं—प्रेम बाँटना। हमारे महाराज गुरु गोविन्दसिंहजी का हुक्म है कि जो भी चीज तुम्हारे पास हो, बाँटकर खाओ। यही तो गुरुजी का लंगर है।

गुरु ग्रन्थसाहव में जो चीज सिखायी गयी है, वही यहाँ अमल में लायी जा रही है। उसे देखने और जानने के लिए ही मैं यहाँ आया हूँ।

आज दुनिया की हालत ऐसी है, मानो तूफानी समुंदर में कोई छोटी नौका चल रही हो। इस खतरे से दुनिया को बचाने की ताकत प्रेम में ही है। गुरु गोविन्दसिंह ने कहा है : **जिन प्रेम कियो, तिनही प्रभु पायो!** दुनिया में प्रेम की लहर फैले, तो ऐटम की ताकत का भी वह मुकावला कर सकेगी। उस प्रेम की कड़ी मुझे यहाँ दिखायी दे रही है। मेरी हमदर्दी इस आन्दोलन के साथ है। अगर हममें प्रेम हो, तो वह सब जगह फैल सकेगा।

जगन्नाथन् (तमिलनाड) :

आज हमारा समाज आर्थिक विषमता और शोषण पर खड़ा है। जब तक उसे हम नहीं बदलते, तब तक शांति स्थापित नहीं हो सकती। जिस समाज का निर्माण हम करना चाहते हैं, वह वर्गविहीन समाज होगा। इसलिए शांतिमय तरीके से आर्थिक विषमता को मिटाना ही शांति-सैनिकों का मुख्य काम होगा। भूदान-ग्रामदान से ही यह काम होगा। हमारा यह बड़ा सौभाग्य है कि बाबा-जैसा महापुरुष हमें मार्गदर्शन के लिए मिला है। फिर भी हम वहुत कर नहीं पा रहे हैं। शुरू में लोगों में वड़ा उत्साह था, पर हम अपनी कमजोरियों के कारण उससे लाभ नहीं उठा सके। पाँच करोड़ का संकल्प हम पूरा नहीं कर सके। इतना ही नहीं, बल्कि जितनी जमीन हासिल हुई है, उसका अच्छी तरह वितरण भी हम नहीं कर पाये हैं। इससे लोगों का उत्साह कम हो रहा है और ग्रामदान-आन्दोलन भी नहीं बढ़ रहा है। अतः मिली हुई जमीन का वितरण जल्द-से-जल्द हो जाना चाहिए। उसके बाद हम सर्वोदय-पात्र और शांति-सेना का काम हाथ में लें। अगर ऐसा हो जाय, तो पूरा ग्रामदानी गाँव शांति-सैनिक बन जायगा। हम देखते हैं कि काश्तकारों को वेदखल किया जा रहा है। उसे रोकने के लिए हमें आन्दोलन शुरू कर देना चाहिए।

डॉ० वेंपटी सूर्यनारायण (तेनाली-आन्ध्र) :

सर्वोदय-पात्र का प्रचार करनेवाले हम लोग तीन-चार बातें खास तौर पर ध्यान में रखें। पहली बात यह है कि हम सचाई का पालन करें, इतना ही नहीं; बल्कि लोगों को यह विश्वास होना चाहिए कि हम सचाई पर चल रहे हैं। दूसरी बात यह है कि मन, वाणी और शरीर से हम शुद्ध रहें। खासकर हमारा चित्त शुद्ध रहे। तीसरी बात यह है कि हम पक्षातीत रहें। उससे लोगों में निर्भयता आयेगी और वे हमारी मदद करेंगे।

तेनाली में अब तक ३५०० सर्वोदय-पात्र रखे गये हैं और पड़ोस के गांवों में २५०० रखे गये हैं। घर-घर सर्वोदय-पात्र हो जाने से बड़ी जन-शक्ति का निर्माण होगा।

रामदास मकोड़े (महाराष्ट्र) :

मैं नागपुर के पास रहनेवाला एक मामूली काश्तकार हूँ। मैं हिन्दी नहीं जानता, इसलिए मराठी में बोल रहा हूँ, जिसके लिए आप मुझे माफ करें।

हमारे यहाँ के राजनैतिक पक्षों के कारण देश में जातिभेद और विषमता बढ़ गयी है। पढ़े-लिखे और धनवान् लोगों ने भूदान-साहित्य पढ़ा है, वे लोग सिर्फ मुंह से आशीर्वाद देते हैं। कुछ करते नहीं हैं। अतः जिसे यह विचार जँच जाय, वह स्वयं ग्रामदान का काम करे। मनुष्य को चाहिए कि वह केवल अपना विचार न करके औरों के बारे में भी सोचे। हमें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि भगवान् पत्थर में नहीं, मानवता में है।

[मूल मराठी]

गोरा (आन्ध्र) :

किसी भी ढंग की सरकार क्यों न हो, वह जनता के सहयोग से ही बन सकती है। आज हम चाहते हैं कि ग्राम-स्वराज की स्थापना हो। जब तक ग्राम-स्वराज नहीं आयेगा, सच्चा जनतंत्र नहीं होगा। पर यह काम आसानी से होनेवाला नहीं है। आज की सरकारें इसके लिए तैयार नहीं होंगी। इसलिए यह जरूरी

है कि हम असहयोग, सत्याग्रह आदि का प्रयोग करें। उसके लिए यह आवश्यक है कि हम लोगों को सत्याग्रह-शास्त्र की शिक्षा दें।

[मूल अंग्रेजी]

महावीर प्रसाद (बिहार) :

आज विनोबाजी को धोखा दिया जा रहा है कि हमारा काम बहुत बढ़ रहा है। पर मैं कहता हूँ, अभी तक बहुत कम काम हुआ है। मैंने सारण जिले में दो महीने पदयात्रा की। उस समय वहाँ के लोगों ने मुझे खाने के लिए बबूल के काँटे दिये और सीसा दिया। फिर भी मैं बाबा की कृपा से बच गया।

आज हमारे देश में Leadership (नेतागिरी) की बीमारी बढ़ गयी है। कार्यकर्ताओं में गंदगी फैली है। जिस विचार से हमने आजादी प्राप्त की, उससे हम हट गये हैं। इस पर आप सब विचार करें।

उच्छंगराय ढेबर (गुजरात) :

मुझे यह स्वीकार करना चाहिए कि चार साल पहले इस आन्दोलन के साथ मेरा जितना संबंध था, उतना पिछले चार वर्षों में नहीं रहा। आपके सामने जो मोटे सवाल आते हैं, उन्हें मैं जानता हूँ; पर तफसील की बातें नहीं जानता। अहिंसा-शास्त्र में तफसील की बातें भी बड़ी अहमियत रखती हैं। मैं आशा करता हूँ कि अब मुझे कुछ समय मिलेगा और मेरी कोशिश रहेगी कि मैं आपके काम की तफसीली बातों से वाकिफ रहूँ।

आज विनोबाजी जो पुरुषार्थ कर रहे हैं, उसमें मैं दुनिया की मुक्ति देखता हूँ। जो लोग गांधीजी के साथ रहे हैं, वे हर सवाल का हर पहलू देखें। बंद दिमाग से किसी बात की जाँच नहीं हो सकती। हमें खुले दिमाग से ही काम करना चाहिए।

आज हमारे सामने दो बड़ी समस्याएँ हैं। पहली समस्या ग्राम की समस्या है, जो बहुत गहरी है। दूसरी समस्या शहरों की है, जो दिन प्रतिदिन गहरी होती जा रही है।

हमारे देश में १ लाख से ऊपर की आबादीवाले १०० से ज्यादा शहर मौजूद हैं। उनकी समस्या से हमारा सम्बन्ध होना चाहिए। वरना एक समस्या

को हल करते रहेंगे, तो दूसरी खड़ी हो जायगी। शहरों की आर्थिक समस्या जब हम हाथ में लेते हैं, तो हमारे सामने Free enterprise या 'प्राइवेट सेक्टर' की बात आती है, तो दूसरी तरफ 'पब्लिक सेक्टर' की बात खड़ी होती है। मैं किसी भी सेक्टर के खिलाफ नहीं हूँ। मैं यह मानता हूँ कि आज की हालत में जब तक गाँवों की समस्या हल नहीं हो जाती, तब तक हम अपनी शक्तियों का बँटवारा करके दूसरी समस्याएँ हाथ में न लें। मगर साथ ही शहरों का भी विचार हम करें। उनकी समस्या की तरफ भी हमारा ध्यान रहे।

क्या हमें पब्लिक सेक्टर और प्राइवेट सेक्टर में से ही एक को चुनना होगा? क्या उनके बीच का कोई तीसरा मार्ग हमारे पास नहीं है?

अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई के बाद हमने देखा कि देश के निर्माण के काम में हमारे यहाँ के राजाओं ने भी आगे बढ़कर अपना हाथ बँटाया और एक समस्या हल करने में मदद दी। उनमें से कुछ लोगों ने भले ही दबाव के कारण ऐसा किया हो, पर कई राजाओं ने स्वेच्छा से अपना ताज गांधीजी के चरणों पर रखा था। भावनगर के राजा ने गांधीजी से कहा था : "मैं आपके हाथ में हूँ।" जमींदारों ने भी आजादी को मजबूत बनाने में काफी हिस्सा लिया। क्या हम आशा नहीं कर सकते कि जिन्होंने आज तक इतना काम किया, वे आगे भी काम करेंगे? मैं उन सबको मुबारकबाद देता हूँ, जो भारत के कल्याण की दृष्टि से हमारे Industrial Aspects (औद्योगिक पहलुओं) को देखते हैं। मगर भारत के प्रश्न बड़े जटिल हैं। इसलिए विचार में एक मूलभूत क्रान्ति होनी चाहिए। हम उद्योगीकरण के सवाल को भी मूलभूत दृष्टि से देखें, तो एक नया नमूना पेश कर सकेंगे।

हम लोग गाँवों की तरह शहरों की ओर भी नजर रखें, ताकि आगे चलकर शहरों का सवाल जटिल होकर न रह जाय। विनोबाजी नया दर्शन पेश कर रहे हैं, उससे कोई भी अछूता नहीं रह सकता। फिर शहर उससे कैसे दूर रहेंगे?

आज दुनिया तेजी से आगे बढ़ रही है। विज्ञान और 'टेक्नीक' का बहुत विकास हो रहा है। ऐसी स्थिति में मानसिक क्रान्ति की बड़ी जरूरत है।

जी० रामचन्द्रन् (तमिलनाड) :

मैं यहाँ बैठकर मित्रों की बातें सुन रहा हूँ। कभी-कभी मुझे कुछ अफसोस होता है, तो कभी रंज। कई लोग कहते हैं कि हम विनोबाजी के विचारों से सहमत हैं; पर व्यक्तिगत जीवन में वे उससे उल्टी बातें करते हैं। कहावत है कि सफलता की तरह दूसरी सफलता क्या हो सकती है ? Nothing succeeds like success. इसलिए हमारे कार्यकर्ता विनोबाजी के सामने तो उनकी सब बातें मान लेते हैं, पर अपने क्षेत्र में जब काम करने लगते हैं, तो उनका ढंग पुराना ही होता है। हम लोग अभी जनता के साथ एकरूप नहीं हुए हैं। एक ओर ध्येयाकाश में हम ऊपर चढ़ते जाते हैं और दूसरी ओर व्यवहार में नीचे गिरते जाते हैं। इससे जनता और सर्वोदय के कार्यकर्ताओं के बीच एक बड़ी खाई बन गयी है।

शांति-सेना के बगैर ग्राम-स्वराज्य असंभव है। पर कुछ लोग कहते थे कि शांति और सेना में क्या मेल हो सकता है ? अब वे मान गये हैं।

असल में देखा जाय, तो यहाँ के स्त्री-पुरुषों के रक्त में ही शांति है। शताब्दियों से यह बात यहाँ रही है। कल ही हमने देखा कि इतनी अधिक भीड़ होते हुए भी लोग कितनी शांति से विनोबाजी का भाषण सुन रहे थे।

शांति-सेना के सिलसिले में मैं अपने यहाँ का, गांधी-ग्राम का अनुभव सुनाऊँ, तो ठीक होगा। हमारे यहाँ शांति-सेना की प्रथम सेविका अर्थात् सेनापति एक स्त्री होती है। उसके पीछे पुरुष चलते हैं। इस समय की हमारी प्रथम सेविका कु० श्यामला २५ बरस की एम० ए० पास युवती है, जो रामनाथपुरम् के दंगों के अवसर पर शांति-स्थापना के लिए वहाँ गयी थी।

हमारे यहाँ ऊपर से अनुशासन लादने का प्रयत्न नहीं किया जाता। हमने यह मान लिया है कि अनुशासन अन्दर से आना चाहिए। उसके लिए मौन प्रार्थना, शरीर-श्रम आदि उपायों से काम लिया जाता है।

हमें यह बात समझ लेनी चाहिए कि शांतिपूर्ण समाज के व्यक्ति ही शांति-सैनिक बन सकते हैं। अपने परिवार में झगड़े करनेवाले स्त्री-पुरुष कैसे शान्ति-सैनिक बन सकते हैं ?

हम देख रहे हैं कि हमारे कई काम अधूरे पड़े हैं। नये कामों के मोह में फँसकर पुराने कामों की ओर हम ध्यान नहीं दे रहे हैं। ग्रामोद्योग, खादी पीछे पड़ रही है। बुनियादी तालीम का नाम तो फैल रहा है, पर असल चीज खोखली बनती जा रही है। इसलिए हमें अपनी दूसरी चीजों की तरफ भी इस नये काम के साथ ही ध्यान देना चाहिए, मगर हम तो यहाँ यही आशा लेकर आते हैं कि यहाँ कोई नयी चीज सामने आयेगी।

यही बात सत्याग्रह की भी है। आज हम कहते हैं कि जनतंत्र में सत्याग्रह के लिए कोई स्थान नहीं है। लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि जब विनोबा कश्मीर में पहुँचेंगे, तब पुराना सत्याग्रह नये सिरे से उभर आयेगा। (It will be rediscovered.) उसे नया Dimension मिलेगा।

अन्त में मैं इतना ही कहूँगा कि हम अपने में, बापू में और विनोबा में विश्वास रखें।

(मूल अंग्रेजी)

सुन्दरलाल (मेरठ—उत्तर प्रदेश) :

जब आसमान से बम गिर रहे हों, तब हम अपनी रक्षा कैसे कर सकेंगे ?

मुझे लगता है कि हम अपने गाँव में अपने आचार एवं विचार से शांति का प्रचार करें, तो दुनिया में शस्त्रास्त्रों के बढ़ने से भी कोई नुकसान नहीं हो सकेगा।

विट्ठलदास बोदाणी (सौराष्ट्र) :

मेरी यह श्रद्धा है कि आदिकाल से मानव का इतिहास अहिंसा के विकास का इतिहास है। इसी दृष्टि से मैं सर्वोदय-पात्र और शांति-सेना की ओर देखता हूँ। सर्वोदय-पात्र के लिए कोई आधार हमें ढूंढ़ना चाहिए। अहिंसा की रक्षा-शक्ति में जो विश्वास रखता है, वही सच्चा सर्वोदय-नागरिक है। इस दृष्टि से सर्वोदय-नागरिक को यह निष्ठा-पत्र भर देना चाहिए कि अहिंसा की रक्षण-शक्ति में मेरी पूरी श्रद्धा है और अपनी तरफ से मैं अशान्ति को कभी मौका नहीं दूंगा। इस तरह की आबोहवा जब पैदा होगी, तभी सर्वोदय-पात्र का अच्छा प्रचार होगा।

कृष्णमूर्ति मिरमिरा (बम्बई–महाराष्ट्र) :

विनोबाजी एक स्तर पर बात करते हैं और हम दूसरे स्तर पर विचार करते हैं। इसलिए हमारे कई काम अधूरे रह जाते हैं। संपत्तिदान का काम हमने शुरू तो किया, मगर उसे आगे चलाने की व्यवस्था नहीं है। यही हालत सर्वोदय-पात्र की भी हो रही है। अतः अपने हाथ में लिया हुआ काम हम अच्छी तरह से पूरा करें।

समाज-विकास खण्डों में काम करनेवालों के सामने जब हम ग्रामदान की बात रखते हैं, तो वे लोग कोरापुट का हाल पूछ बैठते हैं। इसलिए हम ग्रामदानी गाँवों के नमूने (Model) पेश करें।

ग्राम-स्वराज्य के लिए यह जरूरी है कि पहले ग्राम-परिवार की भावना का निर्माण लोगों में हो। उसके लिए यह आवश्यक है कि हम आपस में मैत्रीभाव प्रस्थापित करें। तभी बाहर के लोग हमारे पास आयेंगे। वरना विनोबाजी को यश मिलना कठिन है। उसका प्रारंभ हम इस सम्मेलन से ही कर सकते हैं। यहाँ लोगों के बैठने का तरीका ऐसा है कि उससे भेद-भाव की बू आती है। महत्त्व के लोग आगे बैठते हैं और उनके लिए गद्दे रखे जाते हैं। यह सब नहीं होना चाहिए।

इसी तरह लोग हमें कांग्रेसवाले समझते हैं। उनकी वह धारणा बदलने के लिए हमें पक्षातीत रहना चाहिए, कांग्रेस के साथ एकरूप (Identify) न हों और लोग यह महसूस करें कि हम सचमुच पक्षातीत हैं।

सरयूताई धोत्रे (वर्धा–महाराष्ट्र) :

पिछले तीन-चार महीनों से मैं वर्धा जिले में सर्वोदय-पात्र का काम कर रही हूँ। काम करते समय कुछ समस्याएँ खड़ी हुईं, जिन्हें मैं आप लोगों के सामने रखना चाहती हूँ।

सर्वोदय-पात्र के प्रति लोगों में अच्छी भावना है। परंतु कहीं-कहीं उसके उद्देश्य को समझे बिना ही लोग केवल हमारे कहने से सर्वोदय-पात्र रखते हैं और उन्हें देवता समझकर प्रणाम करते हैं। उनमें अनाज डालते ही हों, सो बात

नहीं। वर्धा शहर में एक महीने के अन्दर १५०० पात्र रखे गये, पर उनमें से कुछ पात्रों में अनाज नहीं पड़ा, तो कुछ में बहुत कम पड़ा। लोग कहते हैं कि व्रत की भी मर्यादा होनी चाहिए। सर्वोदय-पात्र कब तक रखें ? इसके उत्तर में जब हम कहते हैं कि जब तक हम अन्न खाते हैं, तब तक सर्वोदय-पात्र में अनाज डालते रहें, तो वह लोगों को मुश्किल मालूम होता है।

लोगों को दो बातें विशेष जँचती हैं। एक तो यह कि उससे बच्चों को संस्कार और शिक्षा मिलती है और दूसरी यह कि हम समाज से लेते हैं, तो समाज को देना भी हमारा कर्तव्य है।

कभी-कभी कुछ सैद्धान्तिक बातें भी उठती हैं। मसलन् पुलगाँव के मिलिटरी डिपो के लोगों ने हमें बुलाया और हमसे पूछा कि "हमारा विश्वास शस्त्रास्त्रों पर होता है, वैसी प्रतिज्ञाएँ हमें लेनी पड़ती हैं। ऐसी हालत में हम ये पात्र कैसे रखें ? हमने अपने अधिकारियों से पूछा, तो उन्होंने पात्र रखने से मना कर दिया।" मैंने उन्हें समझाया कि हमारी हुकूमत भी शांति चाहती है। पर उन लोगों का समाधान नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि "अगर सरकार की ओर से हमें सम्मति का इशारा मिल जाय, तो हम खुशी से पात्र रखेंगे।" हमारी सरकार इस विषय में उचित कार्रवाई जरूर करे।

हममें से बहुत-से लोग सर्वोदय-पात्रों की संख्या बढ़ाने पर जोर देते हैं। यह उचित नहीं है। हमें संख्या की अपेक्षा लोगों को समझाने की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। लोग अपने-आप लाकर अनाज नहीं देते। उसके लिए एक तंत्र खड़ा करना पड़ता है। हमने एक सर्वोदय-महापात्र बनाया है, जिसे हम गाड़ी पर रखकर हर मुहल्ले में घुमाते हैं, तो लोग अपने सर्वोदय-पात्रों में जमा हुआ अनाज उसमें डालते हैं।

सरज भाई (बनारस—उत्तर प्रदेश) :

हमारे यहाँ सर्वोदय-पात्रों से जो अनाज इकट्ठा होता है, उसमें से छठा हिस्सा हम तहसील के काम के लिए देते हैं और बाकी सब सर्वोदय-मित्रों के लिए खर्च करते हैं। आज तक लोगों को लेने का ही अभ्यास था, अब सर्वोदय-पात्र से उन्हें देने का अभ्यास हो रहा है

स्वामी रामानंद तीर्थ (महाराष्ट्र) :

भूदान, ग्रामदान, सर्वोदय आदि कल्पनाओं में अधिक स्पष्टता आने की जरूरत है। लोकशाही पद्धति में मत के आधार पर परिवर्तन किया जा सकता है। ऐसी हालत में क्या उसमें असहयोग और लगानवंदी (Nc-tax-campaign) वैठ सकती है ?

विनोवाजी ने हम लोगों को मराठवाड़े में सर्वोदय-पात्र के प्रचार पर ध्यान केन्द्रित करने को कहा था। उसके अनुसार हमने वहाँ १ लाख सर्वोदय-पात्र रखने की वात सोची थी। उसमें हमें यह अनुभव हुआ कि पूरी ताकत लगाकर हम काम करें, तो भी जव तक विचार-ग्रहण नहीं होता है, तव तक वह एक वेमानी चीज रह जाती है।

दूसरी वात यह है कि सर्वोदय-पात्रों की संख्या धीरे-धीरे घटती जाती है, क्योंकि विचारों की दृढ़ता कायम रखने में हम असफल हो गये हैं। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि इसमें खुद हमारी ही कमी है। सर्वोदय-पात्र का सही आधार सर्वोदय-मित्र है। उसे प्रत्येक घर में वार-वार जाना चाहिए, तभी सातत्य रह सकेगा।

साथ ही संख्या का लक्ष्य भी ऐसा न हो, जो हमारी शक्ति से वाहर हो। जहाँ हम सर्वोदय-मित्र प्राप्त कर सकते हैं, वहीं हम गहराई से काम करें और जहाँ जितने सर्वोदय-मित्र मिलें, वहाँ उतनी ही मात्रा में काम करें, तो वह स्थायी होगा। इसी तरह सघन क्षेत्रों में सर्वोदय-पात्र रखे जाने चाहिए।

सर्वोदय-मित्र नया ही होता है। इसलिए उसके प्रशिक्षण की भी योजना होनी चाहिए। यह सही है कि उसे शिविर में प्रशिक्षण देना संभव नहीं होगा। यह प्रशिक्षण लिखित पत्र के द्वारा दिया जाना चाहिए। सर्वोदय-पात्र रखनेवाले लोगों को भी यह लिखित पत्र भेजना चाहिए। उसमें गांधीजी, विनोवा के और हमारे भी विचार लिखे हुए हों। इससे सर्वोदय-मित्रों और सर्वोदय-पात्र रखनेवालों का प्रशिक्षण होगा। वे उसे पढ़ेंगे और चिन्तन करेंगे। यह वात शिविरों से होनेवाली नहीं है।

जो लोग सर्वोदय-पात्र रखते हैं, उनके मन में दो वातें प्रधान होती हैं।

एक तो है, शांतिपरायणता और दूसरी है, समाज-निष्ठा। इन दोनों बातों पर हमें बार-बार जोर देना चाहिए।

सर्वोदय-पात्रों से होनेवाली आमदनी शांति-सैनिकों के लिए व्यय हो, ऐसा माना गया था। क्या वह दूसरे कामों में भी लगायी जा सकती है? अगर वह संभव हो, तो उससे काम काफी आगे बढ़ेगा।

सुरेशराम भाई (उत्तर प्रदेश) :

मैं आपके सामने कुछ सुझाव पेश करने आया हूँ। पहला सुझाव यह है कि हर वर्ष १८ अप्रैल को हम ग्राम-स्वराज्य-दिवस मनायें, जैसा कि पहले २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस मनाते थे। उस दिन ग्राम-स्वराज्य के विषय में पत्र पढ़ा जाय और हम उसका संदेश गाँव-गाँव पहुँचायें।

दूसरा सुझाव यह है कि इस सम्मेलन में हम संकल्प करें कि दो साल के अन्दर एक करोड़ घरों में हम सर्वोदय-पात्र पहुँचायेंगे। अहिंसा में संख्या की एक प्रतिज्ञा- वृद्धि तभी होती है, जब गुण की वृद्धि हो।

तीसरा सुझाव यह है कि बाबा सर्वोदयनगर देखने न जायें, जैसा कि पहले सोचा गया था, क्योंकि सब जगह गंदगी फैली हुई है, मक्खियाँ भी बहुत हो गयी हैं। इसका कारण हम ही हैं कि हमारे भाई पाखानों में मिट्टी नहीं डालते।

सत्यसेवक गद्रे (महाराष्ट्र) :

पिछले साढ़े तीन साल से मैं पुर्तगाली भारत की सीमा पर काम कर रहा हूँ। वहाँ का अनुभव मैं आपको बताता हूँ। सरहद की रक्षा करनेवाले लोग अशान्ति और हिंसा की शिक्षा पाये हुए होते हैं। उन्हें S. R. C. कहते हैं। उनसे शांति के बजाय अशांति फैलती है। उनके कारण दो हिस्सों में एक दीवाल-सी खड़ी हुई है, जिससे दो पड़ोसियों में दूरीभाव पैदा हुआ है। ऐसी स्थिति में हमें कोई अहिंसक तरीका अपनाना होगा। मैं मानता हूँ कि हमारी शांति-सेना को सरहद पर भी जाना चाहिए।

सन् १९५५ के १५ अगस्त को भारत के सत्याग्रही गोवा में सत्याग्रह के लिए गये थे, उनमें से २५ भाई मारे भी गये।

उसके बाद पुर्तगाली नौसेना का एक निहत्था आदमी भटककर भारत की सीमा पर आया था। उस पर भारतीय सैनिक ने बन्दूक तानी। उस पुर्तगाली सिपाही ने अपनी रक्षा के लिए उसकी बंदूक छीनने की चेष्टा की; इतने में दूसरे भारतीय सिपाही ने गोली चलाकर उस पुर्तगाली को मार डाला। ऐसी स्थिति में क्या किया जाय ?

मैं समझता हूँ कि हमारे शांति-सैनिक डामन की सरहद पर जायँ और वहाँ के कम-से-कम पाँच गाँवों में अपना काम करें। उसके लिए सरहद पर की फौज भी दो मील पीछे हटा ली जाय। दो देशों के बीच no man's land (ऐसा प्रदेश, जिस पर किसीका भी अधिकार नहीं) होता है, उसके बजाय वह all man's land यानी सबका प्रदेश बन जाना चाहिए, जहाँ सब लोग आजादी से आ-जा सकें।

बद्रीप्रसाद स्वामी (राजस्थान) :

सर्वोदय-पात्र, शांति-सेना, भूदान, ग्रामदान वगैरह काम अलग-अलग न बनकर समग्र ग्राम-स्वराज्य के अंग बन जायँ, तो अच्छा होगा।

ग्रामदान-पत्र पर गाँववालों से हम दस्तखत करवाते हैं, तो वे घबड़ा जाते हैं। इसलिए दस्तखत के बजाय सर्वसम्मति प्रकट करने की कोई व्यवस्था की जाय।

ग्रामदान के बजाय ग्राम-स्वराज्य की कल्पना लोगों को अधिक आकर्षित करेगी। शहर में भी नगर-स्वराज्य का प्रचार किया जाना चाहिए।

चन्द्रकान्त शाह (बम्बई-महाराष्ट्र) :

१५ दिन के अन्दर हमें १००० मकानों में से १८० मकानों में सर्वोदय-पात्र रखवाने में सफलता मिली। हम सर्वोदय-पात्र का प्रचार करते समय लोगों को यह समझाते थे कि उससे सबका कल्याण होगा, बालकों को संस्कार मिलेंगे और बहनों को घर बैठे एक कार्यक्रम मिल जायगा। उस पात्र की तुलना हम द्रौपदी के अक्षय-पात्र के साथ करते थे और बालक की मुट्ठी को सुदामा की मुट्ठी कहते थे। हम यह भी कहते थे कि सर्वोदय-पात्र का पवित्र अन्न वे अपने लिए काम में लायें, तो उनकी बुद्धि शुद्ध हो जायगी। उस अन्न की कीमत

अन्दाजन ले लेते थे। सर्वोदय-मित्रों को बार-बार बदलते रहते थे, जिससे अधिक लोगों को काम करने का मौका मिल जाता था।

(मूल गुजराती)

चतुर्भुज पाठक (मध्यप्रदेश) :

हमने मध्यप्रदेश के डाकुओं के इलाके में हरिजन-सेवक-संघ के मंत्रीजी के साथ अस्पृश्यता-निवारण के लिए दौरा किया था। वहाँ हमने देखा कि अलग-अलग पक्षों के लोग अपने-अपने चुनावों में इन डाकुओं से मदद लेते हैं। उन लोगों से हरिजन-सेवा के काम में भी मदद ली जा सकती है। जयप्रकाशजी ने कहा था कि हरिजन-सेवा, खादी आदि रचनात्मक काम करनेवाले लोग भी शांति-सैनिक ही हैं। यह बात बिल्कुल ठीक है। इन लोगों को शांति-सेना का काम करने देना चाहिए।

सत्यदेव तिवारी (उत्तर प्रदेश) :

हमारे यहाँ की कार्य-पद्धति के बारे में मेरी शिकायत है। जिला-निवेदकों की नियुक्ति ऊपर से होती है, यह ठीक नहीं है। उनका चुनाव होना चाहिए। नियुक्ति अगर करनी ही हो, तो उससे पहले उस जिले के कार्यकर्ताओं की सम्मति ली जाय, ताकि लोकतंत्र अच्छी तरह चले।

अध्यक्ष :

यहाँ जो प्रश्न उठाये गये हैं उनका उत्तर अब बाबा देंगे।

श्री विनोबा :

गांधीजी ने 'अनासक्तियोग' में लिखा है कि "मानव को अपने स्वभाव का ज्ञान नहीं रहता और जो ज्ञान रहता है, वह उसका स्वभाव नहीं होता। जो कहता है, 'मैं क्रोधी हूँ', वह क्रोधी स्वभाव का नहीं होता।" उनके इस वचन से मुझे दर्शन के मूल तक पहुँचने में बड़ी मदद मिली। शंकराचार्य ने ये ही विचार दूसरे ढंग से व्यक्त किये हैं। एक गरीब उन्हें अपना दुःख बतलाने

लगा। इस पर उन्होंने कहा कि "जब तुम अपना दुःख जान गये, तो तुम दुःखी नहीं हो", यह जानने की तुम्हें अक्ल होनी चाहिए। जब मैं अपने सामने दीपक देखता हूँ, तो यह स्पष्ट है कि मैं दीपक से भिन्न हूँ। एक बार गांधीजी ने कहा था कि एक-आध बार भूल हो जाय और उसे स्पष्ट स्वीकार कर लिया जाय, तो आप उससे मुक्त हो जाते हैं। किन्तु यदि आप उसे स्पष्ट स्वीकार नहीं करते, तो उससे बद्ध हो जाते हैं।

विचार की उचित पद्धति

विचार की यही समुचित पद्धति है। वह हमें अपने वास्तविक स्वरूप की पहचान करा देती है। विचार करते समय मुझे ध्यान में ही नहीं आता था कि मैं क्या कर रहा हूँ और कहाँ पहुँचूंगा। लेकिन गांधीजी कहा करते कि अपना काम करते जाओ। अगर काम हृदय से और उचित भूमिका पर हुआ, तो स्वतंत्रता तो बहुत मामूली चीज है, जागतिक प्रश्न भी उससे हल होंगे। बापू थे, तो मुझे यह कल्पना ही नहीं थी कि भारत का काम मुझे अपने हाथ में लेना होगा। कहा जाता है कि परमाणु में ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। मैं छोटा-सा भी काम करता, तो दृष्टि ब्रह्माण्ड की ओर ही रहती। यही मानता था कि मैं पृथ्वी का मध्यबिन्दु हूँ। सिर्फ दर्शक के नाते सभी चीजों को देखता हूँ। सामाजिक, नैतिक, राजनैतिक और ऐतिहासिक प्रवाहों एवं शक्तियों का चिन्तन और मनन करता रहा। साथ ही यह कसकर देखता जाता था कि अपने हाथ में रहनेवाले साधनों पर अपना कब्जा है या नहीं। उसके होने पर कहीं भी खतरे की कोई बात नहीं, यह विश्वास भी मालूम पड़ता था।

लोग मुझे 'रणछोड़' कहते हैं

यह काम अनेक शाखाओं में फैल निकला। उससे कुछ कठिनाइयाँ भी पैदा हुईं। हम कहाँ से कहाँ आ पहुँचे हैं! भूदान, फिर छठे हिस्से का दान, फिर ग्रामदान! यह सारा छोड़कर अब मुट्ठीभर अनाज—आखिर यह कैसा प्रकार है? लोग मुझे 'रणछोड़' कहते हैं। गुजरात में भगवान् को ही 'रणछोड़' कहा जाता है। मथुरा छोड़कर वह द्वारका में आ बसा। फिर उसके सामने मेरी बिसात ही क्या? लेकिन यह सब तो मैं विनोद में ही कह गया।

राष्ट्रपति का संकेत

अब हम लोगों ने नींव रखने का काम उठाया है। हम लोगों ने ऐसी चीजें हाथ में ली हैं, जिनसे हमारा सबके पास प्रवेश होगा। यह १५-२० वर्षों का कार्यक्रम नहीं। यह एक दिन में होना चाहिए। राष्ट्रपति ने अपने घर पर सर्वोदय-पात्र रखा है। क्या हम लोग उनकी अयूब खाँ से कम इज्जत करते हैं ? वह डर से लोगों को अपने वश में करता है। राष्ट्रपति ने प्रेम के चिह्न रूप में सर्वोदय-पात्र की स्थापना की है। उनके पास भी तो सत्ता है। लेकिन उन्होंने भारत के लिए यह संकेत किया है। अगर भारत में संवेदना होती, तो लोगों को इस घटना का पता चलते ही सभी (जिनका इस कल्पना से विरोध है, उन्हें छोड़कर) अपने-अपने घरों में सर्वोदय-पात्र की स्थापना कर देते। जो शान्ति चाहते हैं, वे उसके प्रतीक रूप में सर्वोदय-पात्र रखें, जिससे वे अशान्ति में मदद न देंगे। उसका स्थूल रूप यह है कि जो हाथ इस पात्र में अनाज डालेगा, वह हाथ कभी पत्थर न फेंकेगा। तभी शान्ति-स्थापना का कार्य हो सकेगा।

सैनिक भी सर्वोदय-पात्र रखें

शान्ति-सेना की कल्पना सेना जैसी कल्पना नहीं। एक जाता है, तो दूसरा आता है। लाखों नौकर काम कर रहे हैं और उनके विरुद्ध जनता की ओर से शिकायत चलती ही रहती है—इन सेवकों के बारे में ऐसी बात नहीं होगी। सिवा इसके सशस्त्र सेना की अपेक्षा यह काम कितने कम पैसे में होगा ! अगर हर घर में सर्वोदय-पात्र की स्थापना हो जाय, तो अलग से शान्ति-सेना की जरूरत ही महसूस न होगी। सेना के सिपाही भी अपने घर पर सर्वोदय-पात्र रखें। इसके लिए उन्हें अपनी नौकरी छोड़ने की कोई जरूरत नहीं। वह बड़े प्रेम से नौकरी करें। लेकिन यह कबूल करें कि हमारे घर से अशान्ति की प्रेरणा नहीं मिलेगी।

सभीका सहयोग अपेक्षित

मैं आपके सामने यह दस वर्षों का कार्यक्रम नहीं रख रहा हूँ। यह तो दूसरा ही कार्यक्रम है। (वह ग्राम-स्वराज्य का कार्यक्रम है।) सर्वोदय-पात्र

वातावरण बनाने का कार्यक्रम है। इसलिए मैं सबके सहयोग की अपेक्षा करता हूँ। कांग्रेस के अध्यक्ष ने सहयोग की माँग की है। पण्डितजी ने भी राष्ट्र-निर्माण के काम में सहयोग माँगा है। मैं सहयोग देना चाहता हूँ—सर्वोदय-पात्र के द्वारा। पंद्रह दिनों के भीतर सारे हिन्दुस्तान में सर्वोदय-पात्रों की स्थापना हो जाय। मेरे कहने का शब्दशः अर्थ न लगायें। अहिंसा में शब्द नहीं पकड़े जाते।

पात्रों की स्थिरता

पात्रों के टिक पाने की कल्पना मुझे डराती नहीं। जब एक हवा तैयार होती है, तो उसके स्थायी न होने का कोई कारण ही नहीं। क्या हम यह काम छोड़ देंगे? सर्वोदय-सेवक रहेंगे (सभी पात्र रखेंगे, तो शान्ति-सैनिकों की जरूरत ही न रहेगी, इसलिए मैं 'शान्ति-सैनिक' शब्द का प्रयोग नहीं करता) और वे ही अन्य कामों के साथ ही पात्रों को भी स्थायिता प्रदान करेंगे।

राष्ट्रीय सरकार में कौन, यह प्रश्न गौण

कृपालानीजी ने राष्ट्रीय सरकार से माँग की है। सरकार से माँग करने की कोई जरूरत नहीं, लोग ही वह काम कर डालेंगे। सर्वोदय-पात्र की स्थापना द्वारा जनता ही वैसी इच्छा प्रकट करेगी। फिर राष्ट्रीय सरकार में कौन है, यह प्रश्न गौण हो जायगा।

मैंने बहनों से कहा कि आप लोग गांधीजी का लोकसेवक-संघ बनायें। वे कहें कि हमें पक्षों से कोई वास्ता नहीं। हम गांधीजी के मनोवांछित लोक-सेवक-संघवाले हैं। स्त्री-शक्ति संरक्षक-शक्ति है। वह समाज के टुकड़े करने-वाली नहीं है।

सरकारी अधिकारी पक्ष-मुक्त हों

मैंने सरकारी अधिकारियों के समक्ष कहा कि हमें शासनमुक्त और शोषण-रहित समाज की स्थापना करनी है। दोनों में कितना बड़ा अन्तर है! मैंने उनसे कहा, ऐसा समाज बनानेवाले आप लोग हैं, क्योंकि सरकार चाहती है कि आप लोग पक्ष-मुक्त रहें। सरकार पक्षों का काम न कर जनता की सेवा करे—इसका अर्थ यही हुआ कि आप लोग वेतन सरकार से लें और काम हमारा

करें। सरकार को मिटाने का काम सरकार स्वयं करना चाहती है। अगर उसे यह विचार पसंद न होता, तो वह कभी यह न कहती कि राष्ट्रपति, स्पीकर, न्यायाधीश, मिलिटरी, पुलिस, शिक्षक, विशेषज्ञ पक्ष-मुक्त रहें। फिर बच ही क्या रहा? राष्ट्रपति भले ही कीचड़ से पैदा हो, पर उसे कमलपत्र की तरह ही रहना चाहिए—ऐसा ही चाहा जाता है।

राजनैतिक दल विद्यार्थियों का संगठन खड़ा करने का प्रयत्न किया करते हैं। शिक्षकों की तो उन्हें परवाह ही नहीं। मुझे लगता है कि यह बड़ी खतरनाक बात है। विद्यार्थी पक्ष-मुक्त ही रहें और विश्वव्यापक चिन्तन करें। वे स्वतंत्र वृत्ति रखें। विचार-स्वातंत्र्य या मुक्त विचार उनका हक ही है। इस तरह यह पक्ष-मुक्ति का विचार है।

पक्षातीत हो शान्ति-सैनिक बनें

एक राजनैतिक दल के एक भाई ने पूछा कि "पक्ष में रहकर भी पक्षातीत क्यों नहीं रहा जा सकता? उससे बहुत बड़ा काम होगा। हम लोग जो पक्ष में हैं, वह भी सेवा की भावना से ही है।" इसी तरह की विचार-सरणी के कारण विभिन्न पक्षों में गांधीजी को माननेवाले लोग दिखाई पड़ते हैं। ये सभी सेवासक्त, सेवाव्याकुल लोग हैं। अगर वे ऐसा कहें कि "हम लोग भगवान् की शपथ लेकर बता रहे हैं कि पक्ष में रहकर भी हम सत्य को न छोड़ेंगे", तो मुझे कुछ कहना नहीं है।

इसलिए मैं पक्ष में रहनेवाले ऐसे लोगों का आवाहन करता हूँ कि वे शान्ति-सैनिक बन सकते हैं। पक्षातीतता और पक्षमुक्तता का अर्थ एक ही है। 'किसी भी पक्ष में न रहना' यह पक्ष-मुक्ति का अर्थ नहीं। बाह्य रूप में पक्षों से बचने मात्र से वह हो नहीं सकती। वास्तव में पक्षातीत वृत्ति ही पक्षमुक्ति है। अगर वे अन्तरात्मा को साक्षी रखकर कहें कि "हम व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनैतिक कामों में सत्य और अहिंसा को नहीं त्यागेंगे", तो वे शान्ति-सैनिक के रूप में आगे आयें। मैंने उनके लिए दरवाजा खोल दिया है। इसलिए जो राजनीति में रहकर सर्वोदय-समाज बनाना चाहते हैं, वे वहीं रहें, भले ही बाद में वह मृग-मरीचिका सिद्ध हो।

विधायक कार्यकर्ता शांति-सैनिक ही

मैंने यह मान ही लिया है कि सभी रचनात्मक कार्यकर्ता शान्ति-सैनिक ही हैं। अगर वे वैसे न हों, तो घोषित कर दें। जो शान्ति-सैनिक नहीं, वह खादी-कार्यकर्ता भी नहीं। जिसकी देह पर खादी हो और हृदय में द्वेष, वह खादी का सिपाही ही नहीं है। गांधीजी ने जब शान्ति-सेना की माँग की थी, तो उस समय विशेष लोग आगे नहीं आये, यह मैं जानता हूँ। गांधीजी ने सेना में भर्ती होने के लिए भी कहा था और उसके लिए वे गाँव-गाँव घूमे भी थे। लेकिन विशेष लोग आगे नहीं आये। यह देख वे बड़े ही नाराज हुए। चिढ़कर कहने लगे कि क्या हमारे पूर्वजों ने लोगों को बहादुरों की अहिंसा, वीरता सिखलायी ही नहीं ?

लोगों में शान्ति की भूख

गांधीजी के जमाने में विशेष शान्ति-सैनिक नहीं मिले। आज सिर्फ पाँच सौ मिले हैं। कुछ लोग काफी विचार कर अपने नाम दे रहे हैं। तब क्या किसीने लोगों को ऐसे बहादुर बनाने की कीमिया कर दिखायी है ? यह जमाने की माँग के मुताबिक ही हो रहा है। हम लोग वैद्यनाथ धाम पहुँचे। जब भीतर घुसे, तो हम लोगों पर खूब मार पड़ी। लेकिन किसीको भी क्रोध नहीं आया। जब कि गांधीजी के सत्याग्रह के समय मार पड़ने पर हम लोगों को क्रोध आ जाता था, तो इस समय क्यों नहीं आया ? स्पष्ट है कि आज लोगों को शान्ति की भूख लगी है, इसीलिए क्रोध नहीं आया। हम लोग गये तो थे भगवान् का दर्शन करने, पर लाभ हुआ भगवान् के प्रत्यक्ष स्पर्श का !

सर्वोदय वसिष्ठाश्रम बनने जा रहा है

जमाना इतना बदल गया है कि अब हम लोग साँचेबंद विचार नहीं करते। सर्वोदय-पात्र के काम में सभी रचनात्मक कार्यकर्ता मिलकर काम करें। मास्टर तारासिंह, इंदिरा गांधी यहाँ आये हैं। कम्युनिस्ट बन्धुओं ने सन्देश भेजा है। यह वसिष्ठ का आश्रम बनना चाहता है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि वैर छोड़ दीजिये और प्रेम कीजिये। उससे आप भारत की सभी जमातों के साथ एकरूपता का अनुभव करेंगे। पक्षों से टकराइये नहीं, सब अपने ही हैं। मैं देह

की सभी शक्तियों का आवाहन कर रहा हूँ कि 'अगर है शौक मिलने का, तो हरदम लौ लगाता जा!' एक छोटी-सी चीज! लेकिन उससे प्रेम-संबंध जुड़ जाता है। इसलिए सर्वोदय-पात्र रखिये, पक्षातीत बनिये और शान्ति-सैनिक होइये।

मैं सभी भेद मिटाना चाहता हूँ

लोग पूछते हैं कि आप कार्यकर्ताओं के कितने प्रकार (ग्रेड) करेंगे? मैं कहता हूँ, मैं सभी प्रकार के भेद मिटाना चाहता हूँ। मैं किसी भी प्रकार की प्रतिज्ञा नहीं चाहता। मैं जानना चाहता हूँ कि काम करनेवाले कौन-कौन हैं? नाम देने के कारण मनुष्य अपनी वैसी वृत्ति बना पाता है। अगर हिंसा शीघ्र रक्षण देगी और अहिंसा न देगी---याने हिंसक अपना काम कर जायेंगे और अहिंसक अपनी जगह हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहें, तो काम कैसे चलेगा? इसलिए मौके पर कौन-कौन शान्तिमय बलिदान के लिए तैयार हैं, इसकी जानकारी रहना आवश्यक है।

मनुष्य तीन प्रकार से कमाता है

मैं जानता हूँ कि सर्वोदय-पात्र पर भिक्षा-पात्र होने का आक्षेप किया जाता है। अनेक जमातें और भिक्षु-संघ आये और गये। मैंने १९२७ में एक लेख लिखा था---मनुष्य तीन प्रकार से कमाता है: (१) भिक्षा, (२) व्यवसाय और (३) चोरी। कम देना और ज्यादा लेना चोरी है। जितना देना, उतना ही लेना व्यवसाय या धंधा है और कम-से-कम लेने का नाम है, भिक्षा। अब हर एक स्वयं ही सोचे कि हम इनमें से कौन हैं?

बहुत ही कम लेकर भी कदाचित् मेरी चोरों में ही गणना होगी। मेरा चौगुना खर्च होता है। बिना दूध के मेरा नहीं चलता। यह सब करते समय वेदनाएँ होती हैं। फिर भी उससे—उस चोरी से—मेरी मुक्ति तो हो नहीं सकती। रमण महर्षि की बात है। डॉक्टरों ने उन्हें बीमारी में फल खाने के लिए बताया। किन्तु उन्होंने कहा कि जो साधारण जनता को मिल नहीं पाता, वह मैं कैसे ग्रहण करूँ?

आखिर वे मर गये। मुझे उनका मत्सर होता है। किन्तु मुझे भूदान, ग्रामदान का मोह चिपका हुआ है। इसलिए आपका या मेरा नंबर भिक्षा या

धंधे में आ नहीं सकता। मैं रमण महर्षि जैसे भिक्षावालों की जमात बढ़ाना चाहता हूँ। पुराने जमाने के भिक्षुक श्रम से बचते थे। धीरे-धीरे वह आलसियों की एक जमात बन गयी। हमारी ऐसी अवस्था न हो, इसलिए हमारे कार्यकर्ता तीन घंटे शरीर-श्रम करेंगे। मैं यह भी कोई कानून बनाना नहीं चाहता। शरीर-श्रम में सेवा-शुश्रूषा, सफाई आदि भी आ जाते हैं। वास्तव में सारा जीवन ही सेवामय होना चाहिए। फिर कोई प्रश्न ही न उठेगा। कोई भले ही माने कि मेरा उनसे मतभेद है, लेकिन मैं नहीं चाहता कि किसीसे मेरा मतभेद रहे।

(यह भाषण समाप्त होने के बाद पू० विनोबाजी ने सभी को १ मार्च को भोर में ५ बजे अजमेर के प्रसिद्ध दरगाह में उनके साथ चलने का निमंत्रण दिया।)

दस वर्ष पूर्व दरगाह के रक्षण के लिए मैं वहाँ था। वहाँ मेरी प्रार्थना हुआ करती। यह मुसलमानों का प्रसिद्ध, पवित्र स्थान है, इसीलिए इस बार यहाँ सम्मेलन का आयोजन किया गया। फिलस्तीन में सम्मेलन करने का अवसर आये, तो यरूशलम में वह होगा। मैं पंथ का अभिमानी नहीं, कारण यहाँ शुद्धतापूर्वक कठिन तपश्चर्या हुई है। कल के दरगाह के कार्यक्रम में स्त्रियाँ भी अवश्य भाग लें। जैसे पंढरपुर के मन्दिर में सभी जाति और धर्म के लोग पहुँचे, वैसे ही यहाँ भी सभी आयें। नास्तिक भी आयें। इस्लाम का सन्देश बड़ा ही पवित्र है। वह गरीब और श्रीमान् का भेद नहीं मानता। सूदखोरी का उसने तीव्र निषेध किया है। वह लोकतंत्र का एक आदर्श है। मैं घोषित करना चाहता हूँ कि "मैं मुसलमान भी हूँ, सिख भी हूँ और ईसाई भी हूँ।"

(पूर्वनिश्चित कार्यक्रम के अनुसार दूसरे दिन हजारों स्त्री-पुरुष विनोबा के साथ दरगाह शरीफ में पहुँचे।)

सर्वोदयनगर, अजमेर (सायं-प्रवचन)
२८-२-'५९ (शाम को ६-३० बजे स्थगित)

तीसरा दिन : पहली बैठक

रविवार, १ मार्च, १९५९ : सुबह ८-४५ बजे

अध्यक्ष :

आज यहाँ पर ग्रामदानी प्रदेशों में निर्माण-कार्य, समाज-विकास-योजनाओं के साथ उसका क्या सम्बन्ध हो आदि विषयों पर चर्चा होगी। विदेशों में शांति-कार्य कैसे चल रहा है, इसकी जानकारी दी जायगी। ट्रस्टीशिप के प्रयोग के बारे में भी एक विदेशी मित्र बोलेंगे। अब श्री आर० के० पाटील निर्माण-कार्य के बारे में बोलेंगे।

आर० के० पाटील (महाराष्ट्र) :

आजादी के बाद हमारी सरकार की ओर से विकास का कार्यक्रम काफी तेजी से हो रहा है। विकास के नानाविध कार्य चल रहे हैं। पंडित जवाहरलाल नेहरू कहते हैं कि ये विकास-कार्य हमारे आधुनिक यात्रास्थान हैं। उनसे जो लोग मिलने जाते हैं, उनसे वे पूछते हैं कि क्या आपने भाखड़ा नांगल देखा है? क्या आपने सिन्द्री का कारखाना देखा है? मैं इस बात से इनकार नहीं करता कि आजादी के बाद हमारे देश में काफी बड़े-बड़े काम हुए हैं। लेकिन इन विकास-कामों में जनता का सहयोग बहुत कम है। इस सिलसिले में सिन्द्री की मिसाल दी जा सकती है। एक बार जवाहरलालजी सिन्द्री का खाद का कारखाना देखने गये थे। वहाँ के मजदूरों से उन्होंने पूछा, "तुम लोग जहाँ काम करते हो, उस कारखाने का क्या महत्त्व है?" मगर इसका उत्तर कोई भी न दे सका। वे तो सिर्फ मजदूरी हासिल करने के लिए काम करते थे। उन्हें इसका पता भी नहीं था कि वे जहाँ काम करते हैं, वह एशियाभर में रासायनिक खाद का सबसे बड़ा कारखाना है। इसी तरह पैसा खर्च हो रहा है, पुल और बाँध बन रहे हैं, मगर लोगों में उनके प्रति बिलकुल लापरवाही (Indifference) है। विकास के कामों में उन्हें कोई उत्साह नहीं है।

और एक बात। हर आदमी अपनी निजी आर्थिक स्थिति सुधारने की चिन्ता में है और यदि वह किसी पक्ष में हो, तो इस चिन्ता में है कि उसे सत्ता

कैसे मिले और सत्ता में उत्तरोत्तर वृद्धि कैसे हो। दो बातें सब स्वीकार करते हैं कि सरकार के लोगों को विकास-कामों से सन्तोष नहीं है और जनता को भी उससे सन्तोष नहीं है। मानो प्रवाह पतित होकर सारा काम चल रहा है। किसीमें यह उत्साह नहीं है कि हम भारत का नव-निर्माण कर रहे हैं।

ऐसी हालत में हमारे ग्रामदान और नवनिर्माण का विशेष प्रयोजन है, क्योंकि उससे लोगों में यह भावना रहती है कि हम खुद अपने गाँवों का विकास और निर्माण कर रहे हैं। हरएक यह सोचता है कि मैं व्यक्ति के लिए नहीं, वल्कि समाज के लिए हूँ। ग्रामदान की यह विशेषता है। उससे मूलभूत परिवर्तन होता है, जो आजादी के पिछले ११ सालों में नहीं हो पाया था।

इसके लिए यह आवश्यक है कि हम पक्षमुक्त हो जायँ; क्योंकि हम पक्ष में रहेंगे, तो उस पक्ष के ही हित की बात सोचेंगे। सत्ता में रहनेवालों में संपत्ति और सत्ता बढ़ाने की वृत्ति आ जाती है। असल में जिस जन-सेवा से हम लोगों का उत्साह वढ़ा सकेंगे, समाज के लिए जीने की वृत्ति जनता में पैदा कर सकेंगे, वही सच्ची जन-सेवा है। यही कारण है कि ग्रामदान, ग्राम-स्वराज्य और ग्राम-संकल्प के कार्यक्रमों की ओर लोग बहुत ज्यादा आर्कषित हो रहे हैं।

कल शंकररावजी ने बतलाया था कि ग्राम-स्वराज्य का संकुचित अर्थ न लिया जाय, क्योंकि उससे इस कल्पना में धक्का लगता है कि गाँव भी देश का ही एक हिस्सा है। यह बात बिल्कुल सही है। गाँव से मतलब छोटी इकाई से है। छोटी इकाई से यह लाभ होता है कि हम एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचान सकते हैं। वह इकाई इतनी छोटी न हो कि विकास का काम अच्छी तरह न किया जा सके और वह इतनी बड़ी भी न हो कि जिससे उसमें रहनेवाले लोग एक-दूसरे को पहचान न सकें। किसी गाँव में आबपाशी का प्रवन्ध होता है, तो वह पड़ोस के सूखे गाँवों से अधिक खुशहाल हो सकता है। ऐसी स्थिति में अगर ग्राम-स्वराज्य का संकीर्ण अर्थ लिया जाय, तो वह नुकसानदेह होगा। ऐसे गाँव को चाहिए कि वह दूसरे सूखे गाँवों के साथ बंधुभाव रखे। इसलिए मैं कहता हूँ कि कृषि-उद्योग-समाज (Agro-industrial community) के वड़े दायरे में हम सोचें और अपने विकास-काम के पीछे अनासक्ति की भावना रखें, तभी पड़ोसी के प्रति बन्धुत्व की भावना आयेगी।

यहाँ मैं चीन की एक मिसाल देता हूँ। हम लोग चीन की खेती देखने गये थे। वहाँ हमने चीन के अधिकारियों से पूछा कि "यहाँ कौन-से गांव में खेती की फसल ज्यादा होती है ?" हमने सोचा था कि जहाँ खाद का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है, वहाँ फसल अच्छी होती होगी। मगर हमें जो उत्तर मिला, वह हमारी अपेक्षा से बिलकुल भिन्न था। उन्होंने कहा कि "जहाँ ध्येयनिष्ठा की शक्ति (Ideologicals strength) अधिक होती है, वहां फसल ज्यादा आती है।" उनका यह उत्तर हमारी समझ में नहीं आया। फिर से वही सवाल पूछने पर उन्होंने एक उदाहरण देकर अपनी बात समझायी। उन्होंने कहा, "एक जगह सूअर-पालन की देखभाल का काम एक स्त्री करती थी। एक रात को बड़ी सर्दी पड़ी। संयोग से उसी रात को सूअरनी ने बहुत-से बच्चे दिये। उस स्त्री ने उन सभी बच्चों को अपने कम्बल के नीचे सुरक्षित रखा और ठंडक से बचा लिया, क्योंकि वह जानती और मानती थी कि ये बच्चे देश की सम्पत्ति हैं। इसी तरह हमारे विकास-कार्य में अनासक्ति की भावना होनी चाहिए और ग्राम की संकुचित भावनाओं में नहीं फँसना चाहिए।"

पूछा जाता है कि "विकास का काम राहत का काम है या क्रान्ति का ?" कुछ लोग सोचते हैं कि विकास का काम करनेवाले राहत का काम करते हैं। मैं कहता हूँ कि विकास-कार्य भी अनासक्ति से, लोगों का दृष्टिकोण व्यापक बनाते हुए करें, तो वह भी क्रान्तिकारी काम बन जाता है। समाज-विकास (C. D.) और राष्ट्रीय विस्तार सेवा (N. E. S.) कार्यक्रमों का यह नारा है कि प्रत्येक परिवार का जीवन-स्तर ऊँचा हो— plan for every family. उनकी बुनियाद ऐसी ही है। हमारे निर्माण-कार्य के पीछे अनासक्ति की बुनियाद रहे। लोगों में यह भावना हो कि मैं अपने गांव, अपने समाज और अपने देश के लिए काम कर रहा हूँ।

केवल ग्रामदान से विकास नहीं होगा। वह तो विकास की केवल बुनियादभर है। ग्रामदान के विकास की शक्ति का स्रोत कौन-सा हो ? वह बाहर से आनेवाले पैसे से नहीं, बल्कि मिल-जुलकर रहने, काम करने की अर्थात् ग्राम-परिवार की भावना से ही पनप सकेगा। उसीसे उत्पादन बढ़ेगा। आज हम गरीब इसलिए हैं कि हर दिन पूरे आठ घंटे का काम हमारे पास नहीं है। ग्राम-

दानी गाँवों में हम जिस मात्रा में रोजी दे पायेंगे, उसी मात्रा में उत्पादन बढ़ेगा। इसी तरह खेती का उत्पादन बढ़ाने के लिए श्रम-विभाजन की भी जरूरत होती है। जिस मात्रा में गाँवों में श्रम-विभाजन होगा, उसी मात्रा में उसका विकास होगा। इसीलिए नागपुर-कांग्रेस में सहकारी खेती पर जोर दिया गया है। सहकारी खेती में प्रलोभन (Incentive) की कभी जरूरत होती है, पर उससे होनेवाले लाभों का पलड़ा भारी होता है। जिस मात्रा में सहकारिता बढ़ती है, उसी मात्रा में फसल बढ़ती है।

और एक बात। ग्राम-विकास के लिए हम बाहर से पैसा भले ही लायें; मगर यह बाहरी पैसा तभी लायें, जब गाँव की मनुष्य-शक्ति का पूरा-पूरा उपयोग हम कर चुके हों। हमारा यह अनुभव है कि जिस गाँव के लोग शुरू में ही बाहर से पैसा लाये, उनमें आत्मशक्ति का प्रत्यय नहीं हुआ और परावलंबी वृत्ति बढ़ गयी। इससे विपरीत जिन गाँवों ने अपनी मनुष्य-शक्ति का पूरा उपयोग किया, उनमें आत्मविश्वास आ गया।

तीसरी बात यह है कि किसी गाँव में बनी-बनायी योजना काम नहीं देती। लोगों की स्थिति और वृत्ति देखकर योजनाएँ न बनायी जायँ, तो समाज-विकास-कार्यक्रम की जो हालत हुई है, वही हमारी भी होगी।

निर्माण-कार्य ग्रामवासियों का हो, न कि हमारे कार्यकर्ताओं का। कार्यकर्ता की हस्ती मिट जानी चाहिए। जिस प्रकार गोवर्धन पर्वत उठाया तो था कृष्ण ने, पर लोगों ने समझा कि हमींने वह उठाया है, इसी प्रकार कार्यकर्ता कृष्ण की तरह पीछे रहे और लोग यह समझें कि सारा काम वे ही कर रहे हैं।

हमारे यहाँ यह भावना है कि ग्राम का अर्थ पुरुष ही पुरुष है। इसलिए हमारे कामों में स्त्रियाँ नहीं आतीं, जिसका मतलब यह है कि राष्ट्र की आधी शक्ति बेकार पड़ी रहती है। स्त्री और पुरुष दोनों की शक्ति जब काम में लगायी जायगी, तभी हमारा विकास जल्दी होगा।

हमारा कार्यकर्ता ऐसा हो कि जिसकी बातचीत और बर्ताव से लोगों में यह खयाल पैदा न हो कि वह कोई वेतनभोगी अफसर है। वह गाँववालों के साथ मिलकर काम करता रहे, तभी काम अच्छा होगा। इस सिलसिले में बिहार के मुंगेर जिले के बेराँई ग्राम में काम करनेवाले कार्यकर्ता की मिसाल

पेश की जा सकती है। वे अपने लिए और अपने बूढ़े पिता के लिए केवल ६० रुपया रखकर अपना बाकी सारा वेतन गाँव के कोष में जमा करते हैं। इससे गाँववालों पर अच्छा असर पड़ा है।

गांधी-निधि, खादी बोर्ड, समाज-विकास आदि जहाँ कहीं से भी पैसा या अन्य मदद मिले, तो उसे हमें ले लेना चाहिए। उससे हमारी क्रान्तिकारिता कम नहीं होगी।

अण्णासाहब सहस्रबुद्धे (महाराष्ट्र) :

निर्माण के विषय में अनेक पहलुओं से विचार किया जा सकता है। मैं उनमें से केवल एक ही पहलू पर यहाँ विचार करूँगा।

हमारे पास कार्यकर्ताओं का एक अच्छा दल होना चाहिए। इन कार्यकर्ताओं का जीवन भी ग्राम-कार्य के लिए अनुकूल हो। आज वैसी स्थिति नहीं है। हमारे यहाँ विकास-योजना, खादी कमीशन आदि की तरफ से कार्यकर्ताओं को तालीम देने के केन्द्र या विद्यालय चलाये जाते हैं। उनमें से हर साल ५-१० हजार कार्यकर्ता तयार होते जाते हैं। मगर इस काम के लिए लिखे-पढ़े समाज से ही लोग चुने जाते हैं। उनका पहले का जीवन अलग ढंग का होता है। प्रशिक्षण-काल में उन्हें सामूहिक जीवन की तालीम दी जाती है। पर जिस उम्र में और जिस परिस्थिति से वे आते हैं, उसके कारण वे अपना जीवन नहीं बदल पाते। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि इन विद्यालयों में मैट्रिक पास-वालों को बुलाने के बजाय बुनकरों या कातनेवालों को बुलाकर तालीम दी जाय, तो क्या हर्ज है? उन्हें शरीर-श्रम का अभ्यास होता है। इसलिए कारीगर-वर्ग हमारे निर्माण-कार्य की बुनियाद या कार्यकर्ता बनें, तो हमें अधिक सिद्धि मिलेगी। पढ़े-लिखे लोगों को ग्रामीण कार्यकर्ता बनाना मानो कलम करना (Grafting) करना है। जब खादी-कार्य में लिखने-पढ़ने और हिसाब रखने का काम था, तब ऐसे पढ़े-लिखे लोगों का उपयोग हो सकता था। मगर अब निर्माण के काम में उनका कोई उपयोग नहीं हो सकता। अपने जीवन को मोड़ने की न तो उनमें शक्ति होती है और न इच्छा ही।

श्रम की भाषा या उसका मूल्य जितनी आसानी से गाँवों के रहनेवालों को

समझ में आता है, उतनी आसानी से दूसरा कोई मूल्य उनकी समझ में नहीं आता। उनके साथ जब हम ३-४ घंटे परिश्रम करने का प्रयास करेंगे, तो वे भी सीखेंगे और हमें भी सीखने को मिलेगा। मगर आज के विद्यालयों के शिक्षकों में ऐसी शिक्षा देने की क्षमता नहीं है। आज तक हमने सुविधाओं का खयाल रखकर अपने विद्यालय चलाये और अध्ययन-यात्राएँ (Study-tours) कीं। अब मैं सोचता हूँ कि हमारे ग्रामदानी गाँव ही तालीम के केन्द्र क्यों न बनें ? वहाँ ग्राम का निर्माण भी चलता रहे और कार्यकर्ताओं की तालीम भी चले। छात्र और अध्यापक ४-६ घंटे काम करेंगे और पढ़ेंगे। इससे प्रयोगों के द्वारा ज्ञान मिलेगा।

मगर यह बात आपके गले नहीं उतरेगी, क्योंकि आज तक किसीने ऐसा नहीं किया है और न ही इस ढंग से सोचा भी है। इसीलिए तो निर्माण का काम आगे नहीं बढ़ रहा है। ग्रामदान में ५ लाख गाँव भी मिल सकते हैं, पर हमारे पास उतने कार्यकर्ता कहाँ हैं ? पुराने ढंग से प्रशिक्षा देने से कार्यकर्ता तैयार नहीं होंगे। उससे तो व्यवस्थापकीय वर्ग (Managerial class) ही बढ़ेगा। उन लोगों से निर्माण-कार्य नहीं हो सकेगा। फिर तो समाज-विकास के काम में और हमारे काम में कोई फर्क ही नहीं रहेगा। उनसे ज्यादा योग्यतापूर्वक अगर हम कार्य नहीं करेंगे, तो हम गाँववालों को क्या सिखायेंगे ? अतः कार्यकर्ता का जीवन श्रम आधारित होना चाहिए। हम प्रत्यक्ष कार्य करके दिखायें। खासकर आदिवासी प्रदेशों में तो उनके साथ काम करके ही उनमें प्रचार कर सकते हैं और फिर उनसे चाहे जितना काम करवा सकते हैं। इस दृष्टि से आप सोचें।

हमारे कार्यकर्ताओं की जमात देशभर में बढ़ानी हो, तो आज की तालीम का तरीका ही बदलना चाहिए। पढ़े-लिखे लोगों की तरह ही अनपढ़ लोगों का भी उपयोग करना इस नये ढंग की तालीम की विशेषता होगी।

डोनाल्ड ग्रूम (इंग्लैण्ड) :

इस सम्मेलन के प्रारम्भ में विनोबाजी ने जो भाषण किया, उसमें उन्होंने कहा था कि हमारा यह सर्वोदय-आन्दोलन सिर्फ हिन्दुस्तान के लिए नहीं, बल्कि

सारे संसार के लिए है। पहले भी मैंने उनसे यह बात सुनी थी। मैंने जब भूदान में काम करना शुरू किया, तभी मैंने यह जान लिया था कि यह आन्दोलन संसार में शान्ति-स्थापन का बहुत बड़ा आन्दोलन है। संसार के कोने-कोने में इस तरह का शान्ति फैलाने का काम चल रहा है।

एक पुस्तिका मैं पढ़ रहा था, जिसमें लिखा था कि आज का युग न्यूक्लियर का युग (Nuclear age) है, स्पेस युग (Space age) है। हम अपना झण्डा चन्द्रमा पर ले जाना चाहते हैं। पर क्या ही अच्छा हो, यदि हम इस दुनिया को मनुष्य के रहने लायक बना दें। (Instead of striving to place our flag upon the moon, we should strive to reclaim this planet for humanity.) इस भूदान-ग्रामदान-आन्दोलन में मुझे यह दिखायी देता है कि इस पृथ्वी को मनुष्य के रहने लायक बनाने के लिए अहिंसक समाज के निर्माण के द्वारा प्रयत्न किया जा रहा है।

न्यूक्लियर की शक्ति लड़ाई के काम में लगाने के बजाय शान्ति की स्थापना के लिए इस्तेमाल की जाय, तो मानव-समाज का कल्याण होगा। सर्वोदय-आन्दोलन से हमें यही सन्देश मिलता है।

इस आन्दोलन से और अहिंसक समाज के निर्माण की प्रक्रिया से कुछ खास-खास सिद्धान्त निकलते हैं। इन सिद्धान्तों को लोग दुनिया में जगह-जगह अपनाने की चेष्टा कर रहे हैं।

इनमें से पहला सिद्धान्त यह है कि समाज में मूलभूत मानवीय मूल्यों की पुन:स्थापना (Re-awakening of the basic human values in society) हमें करनी है। इसके लिए यह आवश्यक है कि हमारा समाज बहुत बड़ा न हो। आज हम देखते हैं कि शहर में कोई समाज ही नहीं है। वहाँ लोग अपने पड़ोसी को भी नहीं पहचानते। इसलिए यह काम देहातों में आसानी से हो सकेगा। हमें दुनिया में आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन लाना है और उसे अहिंसा की बुनियाद पर खड़ा करना है। अहिंसा और शांति का राज कायम करना है। मेरा यह विश्वास है कि लड़ाई का जमाना अब लद चुका है। हिंसा का युग बीत चुका है, आनेवाला युग अहिंसा का युग है और गांधी-विनोबा इस युग के दरवाजे पर खड़े हैं।

दुनिया में इस दृष्टि से बहुत कुछ हो रहा है, लेकिन उसकी खबर हमें नहीं होती। उसमें से कुछ की जानकारी मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ।

अमेरिका के न्यूयार्क जैसे आधुनिकतम शहर में एक दल कायम हुआ है। उस दल के लोगों ने फैसला किया है कि हम एक-दूसरे के लिए जीयेंगे। हर कोई अपने-अपने गुण के अनुसार काम करेगा और सबको उनकी-उनकी आवश्यकता के अनुसार पारिश्रमिक मिलेगा। इसकी बुनियाद सर्वोदय की ही बुनियाद है। पैराग्वे, इंग्लैण्ड, अमेरिका, इटली आदि देशों में Society of Brothers ('भ्रातृसंघ') नाम की एक संस्था कुछ दिनों से काम कर रही है। उसके सदस्य मालकियत नहीं रखते और स्वावलम्बी होते हैं। वेल्स में एक सर्वोदय-आश्रम कायम किया जा रहा है। बिहार में भूदान का काम किये हुए एक भाई वहाँ जाकर काम करेंगे। इटली देश में उत्तर की तरफ कई ग्रामदान हुए हैं। वहाँ स्वावलंबन और ग्राम-स्वराज चल रहा है। उन्होंने मुसोलिनी के राज का भी अनुभव लिया है और दूसरे पक्षों का भी। उस पर से वे इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि सभी पक्ष सिर्फ अपना-अपना फायदा देखते हैं, जनता के हित की कोई परवाह नहीं करता; इसलिए अपना राज स्वयं ही चलाना चाहिए। वहाँ श्री ओलिवेत्ती काम करते हैं। उन्होंने विनोवा का नाम भी नहीं सुना है, फिर भी ग्राम-परिवार की भावना बढ़ाने की चेष्टा वे करते हैं।

इंग्लैण्ड में श्री अर्नेस्ट बाडर ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के अनुसार अपना कारखाना चला रहे हैं। एक तरह से उनका वह फैक्टरी-दान ही है। उससे उद्योग-धन्धे (Industry) में सर्वोदय-दृष्टि का प्रवेश हुआ है।

फ्रांस आदि देशों में विश्व-नागरिकता का आन्दोलन चल रहा है। वहाँ कई व्यक्तियों और कस्बों ने विश्व-नागरिक बनने का फैसला कर लिया है। वे कहते हैं कि हम किसी देश-विशेष के नहीं, बल्कि सारे संसार के नागरिक हैं। यह हवा सारी दुनिया में फैल रही है। लोग अपने पासपोर्ट पर विश्व-नागरिक (World citizen) लिखवाने लगे हैं। 'संसार की सरकार' (World-government) की बातें भी दुनिया में चल रही हैं। ग्राम-पंचायत से लेकर संसार-पंचायत तक की सरकारें बन सकती हैं, ऐसा माननेवाले कई लोग इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि देशों में हैं।

शांति-मार्ग के कुछ पथिकों के नाम इस प्रकार हैं :

लाँजो देल वास्तो (Longo Del Vasto) फ्रांस में

ऐवे पियर "

विलफ्रेड वेलॉक (ये घर में सूत कातते हैं) इंग्लैण्ड में

स्टीव्हन किंग हाल (Stephen King Hall) "

श्री हॉल अवसरप्राप्त फौजी अफसर हैं । वे अहिंसक तरीके से रक्षा करने की खोज में हैं । वे कहते हैं कि अब एटम बम से कोई भी देश अपनी रक्षा हिंसा के द्वारा नहीं कर सकेगा ।

श्री डॅनिलो डोलची इटली में

श्री पेस्टर मेनचिंग (Paster Mensching) जर्मनी में

श्री पेस्टर ने जर्मनी में मित्रता-घर (Friendship house) चलाया है, जिसका उद्देश्य विश्व-शांति का प्रचार करना है ।

श्री हैलम टेनिसन इंग्लैंड में

श्री टेनिसन भूदान में प्राप्त जमीन में कुएँ बनवाने के लिए पैसा जमा करते हैं । उन्होंने अब तक १ लाख रुपये जमा करके भेज दिये हैं । इधर भारत में देहातों में बाहर से आये हुए अतिथि को मुफ्त खिलाते हैं । उधर इंग्लैंड में काम करने पर ही खाने को मिलता है । इसलिए श्री टेनिसन काम करके ही प्रचार करते रहते हैं । बच्चों ने भी उनकी मदद की है ।

रेवरंड मार्टिन लूथर किंग अमेरिका में

श्री किंग नीग्रो सत्याग्रही हैं, जिन्होंने अमेरिका में बसों में बैठने पर नीग्रो (हब्शी) लोगों पर लगायी गयी पाबन्दी के विरोध में सफलतापूर्वक सत्याग्रह किया था ।

ऐसे सज्जन कई देशों में हैं, जो युद्ध का विरोध करने के कारण जेल भी जाते हैं । उनकी एक संस्था है, जिसका नाम War Resisters' International—'जागतिक युद्ध-विरोधी दल' है । संसार के ४८ देशों में इस दल के सदस्य हैं । उन्हें अपने इस मत के कारण तकलीफें भी सहनी पड़ती हैं ।

न्यूक्लियर बम—यानी ऐसा बम, जो बैठे-बैठे ५-६ हजार मील की दूरी पर फेंका जा सकता है—बनाने के विरोध में सन् '५८ में बड़े दिन पर इंग्लैंड में

सत्याग्रह किया गया, जिसमें २४ लोगों को जेल जाना पड़ा। वे लोग उस जगह जाते थे, जहाँ बम बनाये जाते हैं और चिल्लाते थे कि बम मत बनाओ। फ्रान्स, अमेरिका और जापान में भी इस प्रकार के सत्याग्रह चलते हैं।

अंत में मैं अपनी संस्था के बारे में दो बातें कहूँगा। हमारी संस्था का नाम 'क्वेकर समाज' है। पिछले ३०० बरसों से सत्य और अहिंसा की बुनियाद पर यह समाज काम करता आया है। इस समाज की विशेषता यह है कि उसमें बहुमत से नहीं, बल्कि एकमत से सारा काम चलता है। इसलिए मतदान (Voting) की जरूरत नहीं पड़ती।

इसी तरह Fellowship of Reconciliation—'फेलोशिप ऑफ रिकंसिलियेशन' नाम की एक संस्था है, जो लड़ाई के कारणों को मिटाने के उद्देश्य को सामने रखकर काम करती है।

सारांश, दुनिया में शांति के लिए काफी कोशिशें हो रही हैं। फिर भी सारे संसार की आशाएँ भारत पर केन्द्रित हुई हैं। इसलिए हमें ग्रामदान और ग्राम-स्वराज का काम जल्द-से-जल्द पूरा करना चाहिए।

सिद्धराज ढड्ढा :

अभी श्री डोनाल्ड ग्रूम ने जिन अर्नेस्ट बाडर साहब का जिक्र किया था, वे अपनी धर्मपत्नी के साथ यहाँ पधारे हैं। उनका परिचय मैं आपको थोड़े में दूँगा। बाद में वे अपने अनुभव और विचार आपके सामने रखेंगे।

भाई बाडर इंग्लैंड के रहनेवाले ईसाई हैं। वे सच्चे मानी में ईसाई हैं। सच्चा ईसाई सच्चा हिन्दू, सच्चा मुसलमान और सच्चा धार्मिक होता है, क्योंकि वह मानवतावादी होता है। वे एक कारखानेदार हैं। उनका रासायनिक रंगों और प्लैस्टिक का कारखाना है। उन्होंने सोचा कि यह कारखाना व्यक्तिगत मिलकियत न रहे और सारे मानवों के हित में उसका उपयोग हो। इसलिए उन्होंने सन् १९५१ में अपने स्वामित्व का विसर्जन करके ९० प्रतिशत कारखाने का ट्रस्ट कर दिया। उसमें उन्होंने अपने मजदूरों को भी शामिल कर लिया। उसमें तीन बातें थीं। पहली यह कि जिम्मेवारी का बँटवारा हो (Sharing of responsibility), दूसरी यह कि मुनाफे में समाज का भी हिस्सा हो

(Sharing of profit) और तीसरी यह कि घाटे में भी सबको अपना-अपना हिस्सा ले लेना चाहिए (Sharing of losses)। आम तौर पर इनके लिए मजदूर तैयार नहीं होते। अब श्री वाडर जो कहेंगे, वह हमारे लिए भी उपयुक्त होगा।

अर्नेस्ट वाडर (इंग्लैण्ड) :

(श्री वाडर अंग्रेजी में बोले और श्री सिद्धराज ढड्ढा ने उनके भाषण का अनुवाद हिन्दी में करके सुनाया।)

मित्रो, मुझे आपके बीच आने से खुशी हुई है। मैं इंग्लैंड से मित्रता का सन्देश वापस लाया हूँ, जिसे पिछली बार आपके नेता श्री जयप्रकाश नारायण हमारे यहाँ ले गये थे। हमारी यह पहली भारत-यात्रा है। पिछले दो महीनों से मैं इधर हूँ। इस देश में हमारा जो बादशाही स्वागत हुआ और हमें जो आतिथ्य और प्रेम मिला, उसके लिए हम आपके आभारी हैं। सिवा दिल्ली के, और सभी जगह हमें सर्वोदयी मित्रों की मोटरें आदि मिलीं, जिसके लिए हम कृतज्ञ हैं।

हम पिछले ६ महीनों से सफर कर रहे हैं। हर जगह हम नये जीवन की खोज में थे। हमने इंग्लैंड में जो कुछ किया है, वह महात्मा गांधीजी के ट्रस्टीशिप-सिद्धान्त को अमली जामा पहनाने का प्रयत्न है। आपके नेता विनोबाजी के कामों और सिद्धान्तों से हम सहमत हैं।

हमने अपने कारखाने में सन् १९५१ में जब ट्रस्टीशिप का प्रयोग शुरू किया, तब उसमें १५ लाख पौंड की पूँजी लगी हुई थी। आज वह पूँजी ४५ लाख तक बढ़ गयी है। इस अर्से में मजदूरों की तरह आसपास के लोगों की भी सहानुभूति कारखाने ने प्राप्त कर ली है, क्योंकि समाज के कामों के लिए कारखाने से ८ लाख पौंड खर्च किये गये हैं। आर्थिक दृष्टि से देखा जाय, तो दूसरे किसी भी कारखाने की तरह हमारे कारखाने की स्थिति भी अच्छी मजबूत है। हमारा यह छोटा-सा प्रयोग दुनिया के प्रवाह के खिलाफ तैरने जैसा है। फिर भी मुझे विश्वास है कि हम इसमें अवश्य सफल होंगे; और संसार को इससे मार्ग दिखायी देगा। दूसरे लोग भी इसी तरह के प्रयोग वहाँ कर रहे हैं। गांधीजी का अहिंसा का सिद्धान्त ही हमारा बल है। उद्योगों में जनतंत्र लानेवाली Democratic Integration—'डेमोक्रेटिक इंटेग्रेशन' नाम की एक संस्था है, जिसका मैं

मंत्री हूँ। आपके सामने केवल अपने कारखाने के संचालक की हैसियत से नहीं, बल्कि उक्त संस्था के मंत्री की हैसियत से भी मैं बोल रहा हूँ। मुझे आशा है कि यहाँ के भी कुछ कारखानेदार हमारी संस्था में शरीक होंगे; क्योंकि वह तो अंतर्राष्ट्रीय संस्था है।

हम ऐसे लोगों की प्रशिक्षा का भी काम कर रहे हैं, जो पिछड़े हुए गरीब देशों में जाकर काम करेंगे।

अफ्रिका में भी कुछ ऐसे गाँव हैं, जहाँ यहाँ के ग्रामदानी गाँवों की तरह काम हो रहा है। मैं न्यासालैंड के एक गाँव में गया था, जो पहले बिलकुल मामूली था; पर अब उसने काफी तरक्की की है। उस देश को स्वतंत्रता मिलने पर वे लोग सर्वोदय के ढंग पर अपने गाँवों का निर्माण करेंगे, ऐसी आशा है। वहाँ का एक विद्यार्थी हमारे यहाँ आया था, जो हमारा काम देखकर वहाँ गया और उसने वहाँ काम शुरू किया। उसने इतना अच्छा काम किया है कि एक आदमी अकेला कितना काम कर सकता है, इसकी मानो वह मिसाल ही है। इसी तरह न्यूजीलैंड में एक फलों का बगीचा साझेदारी में चलाया जा रहा है, जिसमें ७० लोग काम कर रहे हैं। आस्ट्रेलिया में कपड़े का एक कारखाना है, जिसमें एक हजार मजदूर काम करते हैं। उस कारखाने में ६२ प्रतिशत हिस्सा मजदूरों का है। इस तरह हर जगह गांधीजी के सिद्धान्तों पर चलने की कोशिश की जा रही है। मेरी इच्छा है कि हमारी तरह यहाँ भी वैसे प्रयोग हों, जिनमें सब लोग सहयोग दें।

यहाँ के बड़े-बड़े मन्दिर और महल देखकर आश्चर्य होता है। पिछले जमाने में यहाँ के अमीरों ने ये बड़े-बड़े मन्दिर बनवाये। आज हम मानवता का भव्य मन्दिर बनायें।

मैं गांधीजी के शब्दों के साथ अपना भाषण समाप्त करता हूँ कि कैसे कोई व्यक्ति अहिंसा के सिद्धान्त पर चलकर संसार का और अपना कल्याण कर सकता है।

अध्यक्ष :

अब कश्मीर के श्री यदुनंदनसिंह बोलेंगे। आप कश्मीर के पब्लिक सर्विस कमीशन के अध्यक्ष और बाबा की कश्मीर-यात्रा की स्वागत-समिति के मंत्री हैं।

यदुनंदन सिंह (कश्मीर) :

आप सबको मालूम है कि विनोबाजी मई महीने में कश्मीर में आयेंगे। कश्मीर एक सरहदी इलाका है। उसका दो-तिहाई हिस्सा हमारे हाथ में है और एक-तिहाई हिस्सा पाकिस्तान के कब्जे में है, जिनके बीच में Ceasefire line (गोलाबारी बन्दी की पंक्ति) बनी है। इस लाइन के दोनों तरफ दोनों देशों की फौजें पड़ी हुई हैं। कश्मीर के तीन प्राकृतिक हिस्से हैं : जम्मू, कश्मीर और लद्दाख। इन तीन प्रदेशों में क्रमशः हिन्दू, मुस्लिम और बौद्ध धर्मों के लोग अधिक संख्या में रहते हैं।

कश्मीर में जमीन की समस्या और तरह की है। यानी वहाँ आबादी के लिहाज से जमीन बहुत कम है। वहाँ जमींदारों से बगैर मुआवजे के जमीन लेकर काश्तकारों को दे दी गयी है और अब काश्तकारों को कर्जे से भी मुक्त किया गया है। एक तरह से देखा जाय, तो वहाँ भूदान हो गया है। यानी बाबा का एक काम हमने कर दिया है। अब जरूरत इस बात की है कि लोगों में सहकारिता बढ़े। बाबा के आने से जो हवा पदा होगी, उससे यह काम हो जायगा।

बाबा की शांति-सैनिकों की माँग वहाँ अच्छी तरह पूरी हो जायगी। वहाँ सर्वोदय-पात्र भी रखे गये हैं। कश्मीर में सूत, ऊन और रेशम के ग्रामोद्योग हैं, जो संसार में मशहूर हैं। इन उद्योगों पर ही कश्मीर की अर्थ-व्यवस्था का दारोमदार है।

बाबा के स्वागत के लिए एक स्वागत-समिति बनी है, जिसके अध्यक्ष युवराज करणसिंह हैं और हमारे मुख्यमंत्री बख्शी गुलामहुम्मद उसके उपाध्यक्ष। सभी पक्षों के लोग उस समिति में हैं। सब लोग उत्सुकता से बाबा की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

आपको यह जानकर बड़ी खुशी होगी कि जम्मू के मुसलमान भाई चाहते हैं कि बाबा वहाँ की ईदगाह में ठहरें। इससे आपको पता चलेगा कि हमारे यहाँ सांप्रदायिक भेदभाव या मनमुटाव नहीं है।

यद्यपि वहाँ फौजें पड़ी हुई हैं, फिर भी कोई अशांति नहीं है, पूरी शांति

है। अब तक हमारी फौज ने कोई ऐसी बात नहीं की है, जिससे लोगों को शिकायत हो।

विनोबाजी लम्बे रास्ते से न आकर पहाड़ पार करके, बरफ पर से आयेंगे, ऐसा सोचा गया है।

हमारे राज्य का सालाना बजट १२ करोड़ का होता है, जिसमें से ३ करोड़ रुपया केन्द्र सरकार से मिलता है। केन्द्रीय सरकार का ४० करोड़ का कर्जा हम पर है, जिसे हम धीरे-धीरे चुका देना चाहते हैं। मगर हमारी इच्छा है कि केन्द्रीय सरकार हमसे उस रकम पर सूद न ले।

वल्लभस्वामी :

अब बंबई की कान्ता बहन महेता अपना अनुभव आपके सामने रखेंगी। उन्होंने गुजराती 'भूमिपुत्र' पत्रिका के ११ हजार ग्राहक बनाये हैं। एक व्यक्ति कितना अधिक काम कर सकता है, इसकी मानो मिसाल ही उन्होंने पेश कर दी है।

कान्ता बहन महेता (बंबई–महाराष्ट्र) :

जब से बाबा के गुजरात आने की खबर सुनी, तो मन में एक आनंद की लहर दौड़ गयी, पर साथ ही जिम्मेदारी का भी भान हुआ। पंढरपुर के सम्मेलन में बाबा ने कहा था कि 'भूमिपुत्र' के पचास हजार ग्राहक बनने चाहिए। मुझे यह कान जँच गया। मैंने सोचा कि बाबा की गुजरात-यात्रा के दौरान में मैं कम-से-कम दस हजार ग्राहक बनाऊँगी।

मैंने अपने काम का प्रारंभ खेड़ा जिले से किया। जब किसीसे मैं ग्राहक बनने की बात कहती, तो वह कहता, हमारे पास बजट नहीं है। उसके उत्तर में मैं कहती, "चाय-बीड़ी जैसी अनावश्यक वस्तुओं के लिए आपके पास बजट है और ऐसी अच्छी पत्रिका के लिए सिर्फ तीन रुपये नहीं दे सकते, यह कैसी विचित्र बात है।" इस तरह समझाने पर लोग मान जाते।

कुछ लोग कहते, "हम दफ्तर में, स्कूल में या वाचनालय में 'भूमिपुत्र' पढ़ते हैं। फिर ग्राहक बनने की क्या जरूरत है?" मैं उनसे कहती, "दफ्तर या

शाला में आपको जल्दी-जल्दी पढ़ना पड़ता है। अगर वह घर पर आये, तो आप आराम से पढ़ सकेंगे। इसके अलावा, घर के लोग और घर आनेवाले मित्र आदि भी उसे पढ़ सकेंगे।"

जब किसी घर में अकेली घर की स्त्री मिलती, तो वह कहती, "वे घर में नहीं हैं, उनकी इजाजत के बिना मैं कैसे ग्राहक बन सकती हूँ?" इस पर मैं उसे समझाती कि "बाजार में कोई अच्छी चीज मिल रही हो, तो क्या पतिदेव घर में नहीं हैं, इसलिए आप उसे खरीदेंगी नहीं? यह तो बड़े उपयोग की चीज है। अपनी स्वतंत्रता का उपयोग करने का यह तो बड़ा अच्छा मौका है।"

हाईस्कूल के विद्यार्थियों ने इस काम में काफी सहयोग दिया। मैं उनसे कहती, "पिछले आन्दोलनों में आपने शालाएँ तक छोड़ी थीं। इस आन्दोलन में आप शाला या पढ़ाई न छोड़ें। पर कम-से-कम इसकी जानकारी तो जरूर रखें। उसके लिए यह आवश्यक है कि आप नियमित रूप में 'भूमिपुत्र' पढ़ें।" इस तरह समझाने पर कई विद्यार्थी अपने जेबखर्च से पैसे बचाकर ग्राहक बने।

मेरा यह अनुभव है कि ग्राहक बनाने जाते समय अगर हम स्थानिक भाई-बहनों को साथ ले जायँ, तो लोग जल्दी ग्राहक बन जाते हैं। सौराष्ट्र में ऐसे कई श्रीमंत लोग मिले, जिन्होंने गरीब व्यक्तियों और स्कूलों के लिए अपने पास से चंदा दिया। स्कूल बोर्ड के अध्यक्षों से भी मैं मिलती थी। उनसे भी काफी सहयोग मिला। उन्होंने अपने-अपने स्कूल बोर्ड की शालाओं के लिए एक मुश्त चन्दा दिया।

ध्वजाप्रसाद साहू (बिहार) :

आप लोगों के सामने मैं दो चित्र रखना चाहता हूँ। उनमें से एक चित्र जीवन-परिवर्तन का है और दूसरा समाज-परिवर्तन का। इनमें से एक चित्र ग्रामदानी गाँव का है और दूसरा खादी-क्षेत्र का।

बिहार के मुंगेर जिले में बेराँई नाम का एक गाँव है। इसमें करीब ८४ परिवार और ४०० जनसंख्या है। इस गाँव के रहनेवाले अधिकांश मजदूर हैं। इनकी अपनी जमीन बहुत कम थी—सिर्फ ३० बीघा। बाकी की जो जमीन है, वह बाहर के मालिकों की है। गाँववालों ने सामूहिक खेती करने का

निश्चय किया, तो बाहरवाले जमीन-मालिकों ने अपनी जमीनें उनसे वापस ले लीं। इसमें कानून काश्तकारों के पक्ष में था, फिर भी उन्होंने जमीन-मालिकों से झगड़ा नहीं किया। मालिकों ने बाहर से मजदूर लाने की कोशिश की, मगर गाँववालों ने कहा कि हम बाहर के मजदूरों को यहाँ आने नहीं देंगे। इस तरह वह जमीन पड़ती रह जाती; पर वह गाँववालों को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा कि जमींदार मजदूरी दे या न दे, हम खेत में काम जरूर करेंगे। इसका नतीजा यह हुआ है कि जमीन-मालिकों को अब कोई खतरा महसूस नहीं होता। उन्होंने गाँववालों को सामूहिक खेती के लिए अपनी जमीन दे दी है। गाँववाले सामूहिक खेती से मिलनेवाला धान पूंजी के तौर पर रखते हैं और दूसरे लोगों से धान लाकर उसे कूटकर उसकी मजदूरी से काम चलाते हैं।

गाँववालों ने वस्त्र-स्वावलंबी बनने का निश्चय कर लिया है। घर-घर चरखा चलता है और सब लोग खादी पहनते हैं। पहले वहाँ स्कूल नहीं था, वह अब बन गया है। सर्वोदय-पात्र भी घर-घर रखा गया है। सभी लोग श्रम-निष्ठ हैं। वहाँ कई जातियों के लोग रहते हैं, हरिजन भी हैं; लेकिन सब एक साथ बैठकर खाते हैं। छुआछूत नहीं मानते। पहले वे लोग दूसरों के खेतों में अपने जानवरों को चोरी से चरवाते थे और अनाज की चोरी भी करते थे। अब वह सब बन्द हो गया है। इस तरह उन लोगों का सारा जीवन ही बदल गया है।

दूसरा दृश्य खादी-क्षेत्र का है। पूसा नाम का एक गाँव है, जो बिहार के खादी-ग्रामोद्योग-संघ का केन्द्र है। इस क्षेत्र में १ लाख ५ हजार आबादी के कुल १०५ गाँव हैं। इन गाँवों ने संकल्प किया है कि हमारे यहाँ प्रत्येक परिवार खादीधारी और वस्त्र-स्वावलंबी बनेगा। उनमें से ५५ गाँवों में पूर्ण रूप से खादी हो गयी है और ५० गाँवों में ४० प्रतिशत लोग खादी पहनने लगे हैं। अंबर चरखा घर-घर पहुँच रहा है। अब तक १० हजार अंबर चरखे लोगों तक पहुँचे हैं।

इस संकल्प के कारण समाज में एक अभूतपूर्व क्रान्ति हो रही है। पहले वहाँ पर्दा चलता था। आज हालत यह है कि सार्वजनिक सभाओं में पुरुषों से स्त्रियों की संख्या अधिक रहती है। सर्वोदय-पात्र का भी काम फैल रहा है। सर्वोदय-

पात्र से मिलनेवाली रकम का आधा हिस्सा सर्व-सेवा-संघ के द्वारा भूदान, ग्रामदान आदि कामों में खर्च होगा और आधे से बालवाड़ियाँ चलेंगी; क्योंकि बालकों के हाथों से ही सर्वोदय-पात्रों में अनाज पड़ता है। इस तरह आशाप्रद काम हो रहा है। जिनके मन में शंका हो, वे हमारे यहाँ के ये चित्र स्वयं आकर देखेंगे, तो उन्हें विश्वास हो जायगा।

(११-१५ बजे स्थगित)

तीसरा दिन : दूसरी बैठक

रविवार, १ मार्च, १९५९ : तीसरे पहर २-३० बजे

वल्लभस्वामी :

कल एक भाई ने सर्व-सेवा-संघ पर और सर्वोदय-सम्मेलन की व्यवस्था पर टीका-टिप्पणी की थी। उसका जवाब देने के लिए नहीं, बल्कि कुछ स्पष्टीकरण करने के लिए मैं यहाँ खड़ा हुआ हूँ।

उन्होंने कहा था कि सम्मेलन में भेदभाव न हो, बैठने-रहने के लिए विशिष्ट लोगों को अलग स्थान न दिया जाय। इसमें कुछ विचारदोष है। आम तौर से यही नीति रखी गयी है कि जहाँ तक हो सके, सर्व-सेवा-संघ के लोग अपने-अपने प्रान्त के लोगों के साथ ही रहें। फिर भी प्रबन्ध-समिति के सदस्यों और निमंत्रितों के लिए अलग व्यवस्था की जाती है; क्योंकि उन्हें बार-बार एकत्र आना पड़ता है।

यह बात स्पष्ट है कि भेदभाव न किया जाय। पर क्या विवेक भी न किया जाय? कोई व्यक्ति वृद्ध है, बीमार है, तो क्या उसे दूध देने में दोष है? श्री शंकररावजी देव को देखकर मुझे तो दधीचि ऋषि की याद आती है। उस ऋषि की तरह ही वे अपनी हड्डियों का उपयोग समाज-काम के लिए किये जा रहे हैं। उनके लिए अगर कोई अलग प्रबन्ध किया जाय, तो उसमें क्या दोष है? आपको शायद मालूम नहीं होगा कि श्री जयप्रकाशजी को भी आपकी तरह ही भोजन के टिकट खरीदने पड़ते हैं। हम यह देखें कि हरएक की जितनी

शक्ति हो, उसके अनुसार उसकी व्यवस्था हो। यहाँ व्यासपीठ पर बैठे हुए लोगों को इसलिए पानी पिलाया जाता है कि वे पानी पीने के लिए उठकर बीच-बीच में चले जायँ, तो गड़बड़ी होगी और वह बुरा भी लगेगा। वैसे सबको पानी पिलाने का प्रबन्ध किया जा सकता, तो अच्छा होता; मगर वह संभव न होने से नहीं किया जा सका।

अध्यक्ष :

(अध्यक्षजी ने कई नाम पुकारे, मगर उनमें से कोई बोलने के लिए आगे नहीं आया। इस स्थिति को लक्ष्य करके उन्होंने कहा :) जिन लोगों ने बोलने के लिए अपने नाम दिये थे, उन्हें क्या क़ल्पना नहीं थी कि उन्हें इस समय बोलना है ? खैर ! अब जिस किसीको बोलना हो, वह आकर थोड़े में बोल सकता है।

भोलाराय (बिहार) :

जब हम लोग सचमुच परिश्रम करेंगे, तभी हमारी उन्नति होगी। सर्वोदय के आधार पर ही नयी दुनिया बन सकती है। ग्राम-स्वराज्य उसीका ही एक रूप है। इसलिए हमें ग्राम-स्वराज्य के निर्माण में लग जाना चाहिए।

मूलचन्द अग्रवाल (राजस्थान) :

पूज्य विनोबाजी ने शांति-सेना के काम में स्त्रियों से सहयोग की माँग की है। राजस्थान और मध्यप्रदेश की बहनों की हालत कैदियों की तरह है। उनका मुँह ढँका रहता है। वे कैसे आगे बढ़ सकेंगी ? अतः बहनों से मैं जोरदार अपील करूँगा कि वे जल्द-से-जल्द पर्दे की प्रथा को मिटा दें।

बड़े-बूढ़े भाइयों से मेरा निवेदन है कि वे अपनी तरफ से अपनी बहू-बेटियों को आजादी दें। इससे उन्हें आगे बढ़ने में मदद मिलेगी। आज सुबह एक सास को मैंने समझाया, तो उन्होंने मेरा कहना मान लिया और अपनी बहू को पर्दा छोड़ने की इजाजत दे दी।

बेलसरे गुरुजी (महाराष्ट्र) :

एक ही कार्यकर्ता एक वर्ष तक एक गाँव में काम करे, तो सर्वोदय-पात्र

बढ़ेंगे और कायम रहेंगे। स्कूल के बच्चों के द्वारा भी सर्वोदय-पात्रों का प्रचार हो सकता है। परंतु उसके लिए पर्याप्त मददगार चाहिए। अध्यापक, विद्यार्थी और बहनें यदि इस काम को उठा लें, तो वह बहुत फैल सकता है।

(मूल मराठी)

माता योगिनी (पंजाब) :

मैं बाबा को आश्वासन दिलाना चाहती हूँ कि हम माताएँ आपके काम को जरूर आगे बढ़ायेंगी और शांति-सैनिक बनेंगी। दीपक को बुझने नहीं देंगी; बल्कि दीप से दीप जलाकर उसकी ज्योति को अमर रखेंगी।

बहनो, पिछले आठ साल से एक बूढ़ा, दुबला-पतला मानव सर्दी-गर्मी में, बारिश में, अस्वस्थता में घूम रहा है। किसलिए ? मानव-जाति के कल्याण के लिए। उनका यह ऋण हम पर चढ़ रहा है। इसलिए हम उनके काम में सहयोग दें और यहाँ से यह व्रत लेकर जायँ।

हम घर में शांति बनाये रखें। सफाई की आदत डालें, पुस्तकें पढ़ें और दूसरी बहनों में उन विचारों का प्रचार करें।

राम गणेश मोहिते (बम्बई-महाराष्ट्र) :

अभी श्री वल्लभस्वामी ने एक बात कही, उसका विरोध करने के लिए मैं खड़ा हुआ हूँ। उन्होंने कहा कि महाराष्ट्र, गुजरात और बम्बई के लोगों को विनोबाजी ने अलग-अलग समय दिया है, क्योंकि बम्बई के लोगों ने उनसे शिकायत की थी कि वे दोनों घर के मेहमान की तरह भूखे रह जायेंगे।

मैं यह साफ करना चाहता हूँ कि बम्बई महाराष्ट्र का ही हिस्सा है। समझ में नहीं आता कि दो घर का मेहमान कैसे भूखा रहेगा। असल में वे मेहमान हैं ही नहीं। वह ईश्वर की बनायी चीज है। उसके एक तरफ समुद्र है और तीन तरफ से ४० मील तक महाराष्ट्र है। मैंने यह बात पंढरपुर-सम्मेलन में सत्याग्रह-विभाग में बता दी थी। सर्वोदय के बड़े-बड़े नेताओं ने यह बात मान ली है। जब बम्बई के लोगों को विनोबाजी अलग समय देते हैं, तो क्या वे सरकार की इस राय को मानते हैं कि बम्बई महाराष्ट्र से अलग है ?

वल्लभस्वामी :

मैं आम तौर पर विनोद नहीं करता, पर आज बम्बई के लोगों को दोनों घर का मेहमान कहकर कुछ विनोद किया, तो वह बड़ा महँगा पड़ा। मैं यह कहना नहीं चाहता था कि बम्बई-राज्य के दो या तीन टुकड़े होने चाहिए। केवल व्यवस्था की दृष्टि से ही वह सोचा गया था। बम्बईवाले गुजरात और महाराष्ट्र दोनों प्रदेशों के कार्यकर्ताओं के साथ विनोबाजी से मिल सकते हैं। उन्होंने कहा था कि उनके सवाल कुछ अलग हैं और उन्हें अलग समय दिया जाना चाहिए, इसलिए यह व्यवस्था की गयी थी। आप जानते हैं कि दक्षिण के चार प्रदेशों के लोगों को बाबा ने एक साथ बुलाया था। उसमें अन्याय तो था ही, परंतु समय के अभाव में वैसा करना पड़ा, वरना पहले के सम्मेलनों में हरएक को अलग-अलग समय दिया ही जाता था।

सुब्रह्मण्यम् (तमिलनाड) :

आप लोगों के सामने शांति-सेना के बारे में बोलने का जो मौका मुझे दिया गया है, उसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। मैं हिन्दी में नहीं बोल सकता, इसके लिए आप मुझे क्षमा करें। वैसे मैंने हिन्दी सीखी है, पर भाषण नहीं कर सकता। तमिल में बोलना मेरे लिए आसान है।

मैं रामनाथपुरम् जिले में काम करता हूँ। पिछले साल वहाँ राजनैतिक मामलों को लेकर गड़बड़ी हुई थी; अब वहाँ पूर्ण शांति है। उस शांति का एक कारण यह हो सकता है कि वहाँ अभी फौज है। इसलिए ऊपर से शांति दिखाई देती हो, तो भी बहुतों के मन में अशांति है।

वहाँ शांति-सेना का काम शुरू हो जाने के बाद धीरे-धीरे शांति आ रही है। झगड़े से पहले वहाँ गांधी-विचार का प्रचार या अन्य प्रगतिशील विचारों का प्रचार नहीं था। अब वहाँ कई गाँवों में चरखा चलता है। 'भूदान', 'सर्वोदय' आदि पत्रिकाएँ पढ़ी जा रही हैं। सर्वोदय के विचारों से लोग प्रभावित होते जा रहे हैं। जनता को दुःख इस बात का है कि पहले इन विचारों से वे अपरिचित थे। वहाँ मरवल नाम के क्षत्रिय लोग रहते हैं, जो लड़ाके हैं। उन्होंने अंग्रेजों को

भी अपना शत्रु माना था। उसी तरह आज की सरकार के प्रति भी उनमें शत्रुत्व की ही भावना है। सर्वोदय-विचार सुनने के वाद अब वे उस विचार का स्वागत करने लगे हैं। हमारा विश्वास है कि कुछ ही दिनों में वहाँ की जनता कहेगी कि हमें फौज की या खास सशस्त्र पुलिस की जरूरत नहीं है। उस इलाके में हम लोग अब ग्रामदान की दिशा में काफी प्रगति कर रहे हैं। वे लोग बड़ी दयनीय दशा में थे। फिर भी उन्हें स्वतंत्रता वहुत प्रिय थी और वही उनका लक्ष्य आज भी है। इसलिए ग्राम-स्वराज का काम वे अच्छी तरह करेंगे, ऐसा लगता है।

गांधीजी ने हमें दो बड़ी बातें दी हैं। एक है स्वराज और दूसरी है विनोवा जैसा महर्षि। जब विनोवा आश्रम छोड़कर बाहर निकले, तब मुझे आनंद हुआ। उनके रूप में देश को एक बड़ा शान्ति-सैनिक मिल गया है।

शांति-सेना के बारे में मुझे पहले से ही कुछ दिलचस्पी थी और कुछ अनुभव भी था। हिन्दू-मुस्लिम झगड़ों के समय मैंने काम किया था और ब्राह्मण-अब्राह्मण समस्या के विषय में भी चिन्तन किया है। महात्मा गांधीजी ने एक शांति-सैनिक की हैसियत से बुराइयों का जो सामना किया, उसे हमने देखा है। उन्होंने तो अपनी जान देकर हमें बचाया है। उन्होंने जो आखिरी मंत्र हमें दिया था— 'करेंगे या मरेंगे' का—उसे अमल में लाने का समय अब आ गया है। भारत की सीमा पर सेनाएँ खड़ी हैं। आज भारत को और विश्व को बचाने के लिए शांति-सेना के अलावा हमारे पास दूसरा कोई रास्ता नहीं है।

सभी भाइयों से प्रार्थना है कि वे शांति-सेना को आशीर्वाद दें। जय जगत्।

(मूल तमिल)

अध्यक्ष :

मित्रो, आपने देखा होगा, यहाँ वर्दी पहनकर कुछ भाई आये हैं। वे यहाँ के जेल के कैदी हैं। चोरी, डकैती आदि कई गुनाहों के कारण उन्हें सजाएँ हुई हैं। आधी से अधिक सजा उन्होंने काटी है। वे अच्छे आचरण के लोग हैं, इसलिए उन्हें बाहर के काम के लिए ले जाते हैं। उन्हें देखने पर ऐसा नहीं लगता कि उन्होंने गुनाह किये होंगे। किस परिस्थिति के कारण उन्हें गुनहगार बनना

पड़ा, इसके बारे में हमें सोचना चाहिए। यह पंडाल बनाने और दूसरे काम करने में उन्होंने काफी मदद दी है। बाबा के काम में १०१ रुपया देने का उन्होंने तय किया है। वास्तव में हमारे आसपास कई गुनहगार होते हैं, जिन्हें हम गुनहगार नहीं मानते; क्योंकि वे कानून की पकड़ में नहीं आ सकते।

आपने यहाँ देखा होगा कि भोजन के बाद जब हम जूठे पत्तल फेंकते हैं, तो उन्हें छीनने के लिए भिखारी बच्चे आ जाते हैं। वे कुत्ते के नहीं, बल्कि मानव के बच्चे होते हैं। ऐसा दृश्य हमारे देश के अलावा और कहीं देखने को नहीं मिलेगा। शायद इन भाइयों में से कुछ का जीवन इसी तरह शुरू हुआ होगा। उनके गुनाहों की जिम्मेवारी उन पर नहीं, बल्कि समाज पर है। इनके उदय के लिए भी सर्वोदय-आन्दोलन है। इनकी जेल में एक पंचायत है, जिसके सरपंच श्री डूमराज यहाँ बोलेंगे।

गोकुलभाई भट्ट (राजस्थान) :

ये कैदी भाई अपनी इच्छा से काम करने आये और उन्होंने बड़ी लगन से बाबा की झोपड़ी बनायी। इनके दिलों में गांधी, विनोबा और सर्वोदय के प्रति आदरभाव है। यह शायद पहला जेलखाना है, जो मुक्ति की ओर जा रहा है। मैं इन सब भाइयों का अभिनंदन करता हूँ।

डूमराज (अजमेर-जेल) :

मैं एक आदर्श कारागृह का बंदी और वहाँ की पंचायत का सरपंच हूँ। वहाँ हमें ऐसे-ऐसे काम सिखाये जाते हैं कि जिनसे बाहर निकलने के बाद हमें रोटी कमाने में सहायता मिलेगी। हम प्रण करते हैं कि आइंदा हम कोई गुनाह नहीं करेंगे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि समाज हमें खुले दिल से अपनाये; वरना हमारा कोई ठिकाना ही नहीं रहेगा।

हमारे कारागृह के अधिकारी भी हमारे साथ अच्छा बरताव करते हैं। हमें हर रोज चार आने मजदूरी मिलती है। हम बंदियों ने अपनी एक हफ्ते की मजदूरी जमा करके १०१ रुपये इकट्ठे किये हैं, जो कल बाबा को समर्पित किये जायेंगे। इसी तरह बंदी-बहनों ने भी १०१ रुपये जमा किये हैं।

आप जैसे अच्छे लोगों के और बाबा के दर्शन हमें हुए, इसकी हमें खुशी है। हम चाहते हैं कि ऐसे मौके बार-बार आयें।

हरिवल्लभ परीख (गुजरात) :

आज के विज्ञान-युग में शहर और देहात एक-दूसरे से अलग नहीं रह सकते। हमारा यह आन्दोलन जनता का आन्दोलन बनता जा रहा है। हमारी इस क्रान्ति की झलक शहर के लोगों ने भी देख ली है।

पिछले दिनों गुजरात में कुछ झगड़े हुए। तब कुछ शहरों में शांति-सैनिकों ने अपना काम करके दिखाया। बड़ौदा शहर में हमारी नगर-यात्रा चल रही थी। हमने स्कूल, कालेज और सारी गलियाँ छान डाली थीं, इसलिए कई विद्यार्थी हमें पहचानते थे। उन दिनों एक तरफ से लाठियाँ-गोलियाँ चलीं, तो दूसरी तरफ से पत्थर फेंके गये। एक रोज हम ऐसी जगह पहुँच गये, जहाँ हमें कोई जानता नहीं था। एक बैंक को लूटने की कोशिश हो रही थी। हमने लोगों को समझाने की चेष्टा की, पर कुछ असर नहीं हुआ। तब हम बैंक के दरवाजे पर जा खड़े हुए। हम पर पत्थर फेंके गये, मगर सौभाग्य से वे हमें नहीं लगे। उस दिन हमने एक अजीब बात देखी कि पुलिस के लोग भी पत्थर फेंकते हैं। हम दोनों तरफ के पत्थरों के बीच खड़े रहे। अश्रुगैस से हममें से कुछ भाई बेहोश हो गये, तो एक पुलिस का आदमी पानी डालने लगा। यह देखकर एक बहन ने उससे कहा, "यह तुम्हारा काम नहीं, हमारा है।" और वह पानी लेकर आयी।

हमने रास्ते में देखा कि छोटे-छोटे बच्चे बड़े-बड़े पत्थरों को तोड़कर उनके टुकड़े बना रहे थे। हमने पूछा, "यह क्या करते हो?" तो बच्चे बोले, "हम जनताबम बना रहे हैं।" क्या हमारी अगली पीढ़ी ऐसी ही बनेगी? मुझे ऐसा लगता है कि अगर सर्वोदय-पात्र का काम तेजी से बढ़े, तो बच्चों में सभ्यता और शांति-प्रियता आयेगी।

ओमप्रकाश गुप्ता (उत्तर प्रदेश) :

इजराईल का सहकारी आन्दोलन जब श्री जयप्रकाशजी और सिद्धराजजी ने देखा, तो वे उससे प्रभावित हुए और उन्होंने उस आन्दोलन का अध्ययन करने के

लिए कुछ लोगों को इजराईल भेजने का प्रस्ताव रखा। उसके अनुसार भारत से हम ग्यारह लोग इजराईल की एक सहकार-गोष्ठी (Co-operative Seminar) में भाग लेने वहाँ पहुँचे। उस वक्त हमें सारे देश का दर्शन कराया गया।

इजराईल की और हमारी परिस्थिति में काफी समानता है। कुछ समस्याएँ भी समान हैं। वहाँ की जमीन बहुत ही खराब और टेकरियों से भरी थी। उसी भूमि में उन्होंने बड़े-बड़े बगीचे बनाये हैं।

उन लोगों ने अपने सामने चार बातें रखी हैं। पहली यह कि जमीन पर किसीकी भी व्यक्तिगत मालिकी नहीं होगी। दूसरी यह कि कोई भी किसान मजदूर नहीं रख सकेगा। हर कोई स्वयं काम करेगा। तीसरी बात यह कि गाँव की खरीद और बिक्री सम्मिलित होगी और चौथी यह कि परस्पर-सहयोग (Mutual aid) से सारा काम चलेगा। उनके नवनिर्माण के ये चार आधार हैं।

उनके गाँव कई प्रकार के होते हैं। उनमें से कुछ की जानकारी मैं यहाँ देता हूँ।

किबुत्स : सारे लोग एक परिवार की तरह साथ रहते हैं। कोठार सामूहिक रहता है। अनाज, कपड़ा, पैसा सभी एकत्र रहता है। खेती संमिश्र ढंग (Mixed agriculture) की होती है। उसमें खेती, मुर्गी-पालन, गो-पालन आदि बातें आती हैं। स्त्रियों को कानून से पुरुषों के समान अधिकार दिये गये हैं। वे आपस में बाँटकर काम करते हैं। किबुत्स का मंत्री काम की योजना बनाता है और काम का बँटवारा करता है। जेब-खर्च के लिए थोड़ा-सा पैसा दिया जाता है। अपने रिश्तेदारों से मिलने के लिए जब विदेशों में जाना पड़ता है, तब उस पैसे का उपयोग किया जाता है। बच्चे घर पर नहीं, बल्कि शिशु-गृहों (Childrens' Home) में रखे जाते हैं। इसलिए एक या डेढ़ कमरे का घर हो, तो भी पति-पत्नी के लिए वह पर्याप्त हो जाता है। यहाँ लड़कों को आगे चलकर खेती ही करनी होती है, इसलिए विद्यापीठ की शिक्षा देने के बजाय उन्हें यंत्र-कला और कृषि-विज्ञान की जानकारी दी जाती है। ये लोग एक रसोड़े में भोजन करते हैं। शनिवार के दिन छुट्टी रहती है।

दूसरे ढंग के गाँव को मुशाव शिकूफी कहते हैं। इसमें प्रत्येक परिवार अपना-अपना भोजन अलग पका सकता है। बाकी सब बातें किवुत्स की तरह ही रहती हैं।

तीसरे किस्म के गाँव को मुशाव कहते है। उसमें बच्चे माँ-बाप के साथ रहते हैं। परंतु दूकान एक ही होती है। सहकारी पद्धतियों का जाल इसमें भी फैला हुआ होता है। पति-पत्नी दोनों बहुत परिश्रम करते हैं।

कुछ देहात हमारे देहातों जैसे भी होते हैं। कहीं भी सरकार की ओर से दवाखाना नहीं चलता। लेकिन दुनिया में हजार व्यक्तियों के पीछे आठ डॉक्टर सिर्फ इजराईल में ही हैं।

वहाँ के प्रेसिडेंट साहब एक बैरक में रहते हैं। प्रधानमंत्री बेंगुरियन छुट्टी के दिन घर पर बर्तन भी माँजते हैं और भेड़ों को चराने का काम करते हैं। हद दर्जे की सादगी से वे रहते हैं।

सामाजिक विषमता तो वहाँ है ही नहीं। हमारा बस ड्राइवर प्रेसिडेंट की मेज पर चाय पीता था और सब लोगों के साथ नृत्य में शामिल होता था। सहकारी संस्था के प्रथम मंत्री का वेतन अध्यक्ष के वेतन से अधिक था। खानगी मोटरें बहुत कम लोगों के पास हैं। राष्ट्राध्यक्ष के पास सिर्फ दो जोड़ी जूते हैं। उन लोगों को भूदान के प्रति बड़ी दिलचस्पी है और भारत के विषय में बड़ा प्रेम है।

अध्यक्ष :

यह सम्मेलन अब समाप्त होने जा रहा है। इसके अध्यक्ष-पद के लिए मैं लायक नहीं था, परंतु यहाँ तो केवल सभा का नियंत्रण ही करना था। सम्मेलन का नेतृत्व तो बाबा को ही करना था।

हमारे देश को बड़े-बड़े प्रश्नों का सामना करना है, वह थोड़े-से लोगों से या सरकार से भी नहीं होगा। सबको मिलकर वह करना होगा।

आज जब मैंने यहाँ कैदी भाइयों को देखा, तो मेरा दिल हिल गया। जेल तो गुनहगारों को सजा देने के दंडगृह नहीं; बल्कि सुधारने के अस्पताल होने चाहिए। यहाँ हमने जूठे पत्तल बटोरनेवाले बच्चों को देखा। यह दृश्य देश में सभी जगह

देखने को मिलता है। हम कई बातों में दूसरे देशों के साथ बराबरी कर सकते हैं। वैसे ही बड़े-बड़े मकान यहाँ बन रहे हैं। मगर यहाँ पर ऐसे slums हैं, गंदी बस्तियाँ हैं, जो मनुष्यों के रहने लायक नहीं हैं। यह सारा बदलना हमारा काम है। ये सारे प्रश्न देखकर हम निराश हो जाते हैं; पर बाबा को इससे निराशा नहीं होती। वे ही हम सबको हिम्मत दिला सकते हैं।

यहाँ जितनी चर्चाएँ हुईं, उनमें ग्राम-स्वराज्य और शांति-सेना का महत्त्व विशेष था। ग्रामदान, सर्वोदय-पात्र आदि बातें इन दो मुख्य लक्ष्यों तक पहुँचने के साधन हैं।

कइयों के मन में ये शंकाएँ उठती हैं कि क्या इस देश में शांति-सेना काम कर सकेगी? क्या एक ग्रामदानी गाँव में हम ग्रामराज्य बना सकेंगे? क्या ग्रामदानी गाँवों से हम पुलिस को हटा सकते हैं? इन प्रश्नों के उत्तर देना आसान नहीं है। लेकिन उसके साथ ही ये भी प्रश्न हमारे सामने खड़े होते हैं कि क्या पुलिस कहीं भी शांति-स्थापना कर सकी है? क्या वह डाकुओं से भी जनता की रक्षा कर सकी है? शांति-स्थापना के लिए पुलिस और सेना पर कैसे भरोसा किया जा सकता है?

असल में देखा जाय, तो शांति के लिए मानसिक परिवर्तन करना होगा। वह हिंसा से नहीं होगा। शांति-सैनिक जीवन-समर्पण करने को तैयार हो जायँ, तो बहुत बड़ा काम होगा। दो दलों की तरह दो देशों के बीच की अशांति को मिटाने के लिए शांति-सैनिक तैयार हो जायँ, तो उसका असर जरूर होगा।

लड़ाई को समाप्त करने के लिए लड़ाई करना परिहास है, पागलपन है। पहला विश्व-युद्ध दुनिया से युद्ध का नामोनिशान मिटाने के लिए हुआ था। उसका क्या नतीजा हुआ? बीस साल के अन्दर दूसरा युद्ध शुरू हुआ और अब तीसरे विश्व-युद्ध की तैयारियाँ हो रही हैं।

इसलिए शांति के लिए शांतिपूर्ण तरीकों से प्रयत्न करते रहना ही शांति-स्थापना का एकमात्र मार्ग है। क्या इसके लिए अपना जीवन समर्पण करनेवाले लोग हमें मिलेंगे?

कल बाबा ने कहा था कि हमारे सारे रचनात्मक कार्यकर्ता शांति-सैनिक हैं। पर क्या वे वैसा कार्य कर सकेंगे? मुझे ऐसा लगता है कि वह सबके लिए संभव

नहीं होगा। निर्माण, विकास, शांति आदि अलग-अलग कामों के लिए अलग-अलग प्रकार के कार्यकर्ता चाहिए। ग्रामदानी गाँवों में काम करनेवाले वहाँ के लोगों से कहते हैं कि सबको मिलकर काम करना और बाँटकर खाना चाहिए। ऐसी हालत में उन्हें अपना निजी आचरण भी वैसा ही रखना चाहिए; वरना लोगों पर उनकी बातों का कुछ भी असर नहीं होगा।

महात्माजी देश के लोगों का मानस अच्छी तरह पहचानते थे। वे उनकी तरह ही कुटिया में रहते थे और उन्हींकी तरह जीवन बिताते थे। अगर हमारे कार्यकर्ता और नेता गांधीजी की इस बात को ध्यान में रखकर अपना आचरण रखेंगे, तो उन्हें अवश्य सफलता मिलेगी। इसलिए हम सभी आत्म-संशोधन करें।

सम्मेलन की कारवाई चलाने में मुझसे जो त्रुटियाँ हुई हों, उनके लिए आप मुझे क्षमा करें। ईश्वर से प्रार्थना है कि गाँवों के लोगों के बीच काम करने की शक्ति और प्रेरणा वह हम सबको दे।

गोकुलभाई भट्ट (राजस्थान) :

इस सम्मेलन को सफल बनाने में बहुत लोगों ने मदद दी, उन सबका आभार मानने के लिए मैं यहाँ खड़ा हूँ।

हमने पूरा-का-पूरा भोजन ग्रामोद्योगी ही दिया, पर वह बेस्वाद, खराब या अपौष्टिक नहीं था। गाय का घी शरीर में था, इसीलिए शायद आप लोगों को ठंडक से तकलीफ नहीं हुई। इसमें बहुत दूर-दूर के मित्रों ने मदद दी। जगह-जगह से आटा पिसवाकर मँगवाया गया और चावल तो देहरादून से आया। उन मित्रों को मैं धन्यवाद देता हूँ।

पैसे जमा करने की बात आयी, तो हमने रुपया-सवा रुपया देनेवालों से भी मदद ली। और भी पैसा जमा हो सकता था, पर हम लोगों तक पहुँच नहीं पाये। पत्रकारों ने भी हमें अच्छा सहयोग दिया। सर्व-सेवा-संघ के और अन्य कलाकारों ने प्रदर्शनी को सजाने में कितनी मेहनत की है, यह आपने देखा ही है। निवास-स्थानों की रक्षा और पहरेदारी करने में हमारे स्काउटों ने—बालवीरों ने—बड़ी ही मुस्तैदी दिखाई। हमें सरकार से, सब पक्षों से, जनसंघ-

वालों से भी मदद मिली है। बसवाले, ताँगेवाले, बिजलीवाले, म्युनिसिपैलिटी-वाले, सभीने हमारी मदद की है। उनको मैं बधाई देता हूँ।

राजस्थान आपसे क्या चाहता है? वह केवल इतना चाहता है कि आपके चरण-स्पर्श से उसकी गति तेज हो जाय। बाबा की गति तक तो हम पहुँच नहीं सकते। पर अपनी गति अवश्य बढ़ा सकते हैं।

मैं स्वयं एक पक्ष में हूँ; पर उस पक्ष से ऊपर रहने की मैंने सदा चेष्टा की है। अब बाबा ने पक्षमुक्ति का आग्रह छोड़कर पक्षातीतता को स्वीकार किया है, इसलिए मैं आज शांति-सेना में अपना नाम लिखवाता हूँ। आशा है, राजस्थान से इस शांति-सेना में कई सैनिक कूद पड़ेंगे और इस सम्मेलन से हम सबको प्रेरणा मिलेगी।

फिर एक बार 'पुनरागमनाय च!' कहकर मैं आप सबका आभार मानता हूँ।

विचित्रनारायण शर्मा (उत्तर प्रदेश) :

सम्मेलन की स्वागत-समिति का आभार आप सबकी ओर से मानने का बहुत ही प्रिय काम मुझे सौंपा गया है। पहले मुझे सर्किट हाउस में ठहराया गया था। पर यहाँ का सुप्रबन्ध देखकर यहाँ आने को मेरा जी ललचाया और बड़ी मिन्नतें करके मैं यहाँ आया। यद्यपि हम लोगों ने सफाई और अनुशासन में पूरा सहयोग नहीं दिया, फिर भी यहाँ का प्रबन्ध कुल मिलाकर बड़ा अच्छा रहा, जिसके लिए मैं स्वागत-समिति को धन्यवाद देता हूँ।

(फिर सर्व-सेवा-संघ का निम्नलिखित निवेदन श्री काशिनाथ त्रिवेदी ने पढ़कर सुनाया।)

काशिनाथ त्रिवेदी (मध्यप्रदेश) :

निवेदन

महात्मा गांधी के निर्वाण के वाद देशभर में फैले हुए उनके साथी तथा अनुयायी सेवाग्राम में मिले। वहाँ सर्वोदय-समाज नाम से एक भाईचारे की स्थापना की गयी। तब से हर साल सर्वोदय-समाज का एक सम्मेलन देश के विभिन्न स्थानों पर होता रहा है।

इन सम्मेलनों में भारत के विभिन्न प्रान्तों के सर्वोदय प्रेमी भाई-बहन इकट्ठा होते हैं और सालभर के काम का सिंहावलोकन करके भावी कार्यक्रम की चर्चा तथा कार्य एवं तत्त्व के संबंध में चिंतन-मनन करते हैं।

आरंभ के तीन वर्ष नयी परिस्थिति में सर्वोदय का मार्ग खोजने में बीते। १९५१ में भूदान-यज्ञ आरंभ हुआ और उस रूप में देश को एक अगला मार्ग मिल गया। देश में राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का एक सफल अहिंसक प्रयोग हो चुका था। इसमें भूदान-कार्यक्रम द्वारा आर्थिक और सामाजिक स्वतंत्रता प्राप्त करने का अहिंसक तरीका स्पष्ट हुआ।

विनोबाजी को भूदान-यज्ञ के क्रांति-कार्य में जैसे-जैसे सफलता मिलती गयी, वैसे-वैसे न सिर्फ देश के सारे सर्वोदय-प्रेमियों का, वल्कि देश के अन्य विचारकों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित होता गया। फलतः सन् '५२ के सेवापुरी-सम्मेलन के वाद के सभी सर्वोदय-सम्मेलन देश को अहिंसा की दिशा में ले जानेवाले मार्ग के सीमा-चिह्न-से वनते गये।

भूदान का करुणामूलक विचार क्रम-क्रम से ग्रामदान के समत्व विचार में विकसित होता गया। ग्रामदान ने एक ऐसा रास्ता खोल दिया, जिससे आर्थिक क्षेत्र में भारत के गाँवों की समत्वयुक्त प्रगति हो और साथ ही सामाजिक क्षेत्र में

जनता का नैतिक गुण-विकास भी होता जाय। इस आन्दोलन के पहले ६ वर्षों में भूमि-समस्या संबंधी सर्वोदय-दृष्टि का दर्शन हुआ। भूमि-प्राप्ति, भूमि-वितरण, ग्रामदान और उसके वाद के नव-निर्माण का चित्र भी हमारे सामने स्पष्ट होता गया।

पिछला वर्ष सर्वोदय-सेवकों के लिए एक प्रकार से आत्म-निरीक्षण और संवल-संचय का वर्ष रहा। इस आत्म-निरीक्षण के फलस्वरूप एक नयी स्फूर्ति मिली और कुछ नये प्रेरणाप्रद कार्यक्रम भी सामने आये।

ग्रामदान ने ग्राम-स्वराज्य की राह खोल दी। इसने हमें गांधीजी के स्वप्न को साकार करने का मौका दिया। स्वेच्छापूर्वक किये गये त्याग के कारण पैदा होनेवाली जन-शक्ति और स्वामित्व-विसर्जन के कारण पैदा होनेवाले समत्व की भूमिका ने ग्रामदान की नींव डाली। पिछले कुछ वर्षों में संसार की और साथ ही भारत की जो स्थिति रही, उसने यह स्पष्ट कर दिया कि अहिंसा-प्रेमियों के लिए शांति का प्रश्न एक चुनौती है। जब तक हम अपने देश में अहिंसक साधनों द्वारा शांति-स्थापना की जिम्मेदारी उठाते नहीं हैं, तब तक हम ग्राम-स्वराज्य को न तो खड़ा कर सकते हैं और न टिका सकते हैं। परिस्थिति की इस चुनौती के उत्तरस्वरूप ही शांति-सेना का कार्यक्रम निकला है। शांति-सेना और ग्राम-स्वराज्य के कार्यक्रम एक-दूसरे के पूरक हैं। यद्यपि शांति-सेना के इस कार्यक्रम का अभी आरंभ ही है, फिर भी इसे देश के प्राय: सभी प्रमुख विचारकों का समर्थन प्राप्त हुआ है। इस साल केरल, गुजरात और देश के दूसरे कुछ हिस्सों में अशांति-शमन के जो प्रत्यक्ष कार्यक्रम हुए, उनसे शांति-सैनिकों का आत्मविश्वास बढ़ा है।

हर प्रकार की सेना को लोक-सम्मति की आवश्यकता रहती है। शांति-सेना के लिए लोक-सम्मति और लोक-आधार के रूप में सर्वोदय-पात्र का कार्यक्रम

आया, जिसने इस सारे क्रांति-कार्य को व्यापक रूप से जनाधारित करने का अवसर दिया है।

इस वर्ष अन्य देशों की सर्वोदय-प्रवृत्तियों से भी हमारा अधिक संपर्क हुआ और जमीन के अलावा उद्योग-व्यापार आदि के क्षेत्रों में गांधीजी के ट्रस्टीशिप विषयक विचारों के प्रयोग के संबंध में अध्ययन-मनन भी हुआ। इस वर्ष सर्वोदय की दिशा में बढ़नेवाला एक उल्लेखनीय कदम यह भी है कि देश के सभी प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने अपने काम को ग्रामदान-ग्राम-स्वराज्य की दिशा में मोड़ने का निश्चय किया है।

आज हमारे सामने सर्वोदय-पात्र, ग्राम-स्वराज्य और शांति-सेना का त्रिविध कार्यक्रम है। सर्वोदय-पात्र द्वारा भारत के हर घर से शांति के लिए सम्मति मिलेगी और जन-मानस में सर्वोदय-विचार का प्रवेश होगा। यह आवश्यक दीखता है कि ग्राम-स्वराज्य के लिए मुख्यतः दो प्रकार से प्रयत्न हो। एक तो ग्रामदान द्वारा जमीन के विषय में व्यक्तिगत स्वामित्व का विसर्जन और उसका ग्रामीकरण, दूसरे ग्राम-संकल्प के द्वारा ग्रामों की अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति ग्रामों में ही करने का दृढ़ संकल्प। इन दो कार्यक्रमों के जरिये हम अपने सारे रचनात्मक कार्यक्रमों को ग्राम-स्वराज्य की ओर मोड़ सकेंगे।

यह भी जरूरी है कि हम अपने अब तक के काम का समुचित मूल्यांकन करें और जो भी जमीन दान में प्राप्त हुई है, उसमें से वितरण के योग्य भूमि को यथाशीघ्र बाँट दें और शेष भूमि के बारे में स्थिति स्पष्ट करें। जनता के द्वारा संकल्पपूर्वक किया गया नव-निर्माण का काम भी अहिंसात्मक क्रांति को आगे ले जाने का एक साधन है।

स्पष्ट ही इस सारे कार्यक्रम के आधार हमारे कार्यकर्ता हैं। यह जरूरी है कि हमारे कार्यकर्ता निष्ठावान् और कार्यक्षम हों तथा वे जन-साधारण से

एकरस बनें। इसके लिए कार्यकर्ताओं की तालीम की व्यवस्था होनी चाहिए। सम्मेलन अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ को इस दिशा में उचित कार्यवाही करने की विनती करता है।

शांति-रक्षा प्रत्येक नागरिक का कार्य है, किन्तु आज के संदर्भ में गांधीजी द्वारा प्रणीत रचनात्मक कार्यों में लगे हमारे सब कार्यकर्ताओं को यह एक विशेष जिम्मेवारी है। इसके अनंतर भी शांति-रक्षा का दायित्व शेष रहता ही है और इसके लिए शांति-सेना एक अनिवार्य आवश्यकता है। शांति-सैनिक अशांति के अवसरों पर शांति-स्थापना के लिए दौड़े जायँगे और वहाँ अपने प्राण न्योछावर करने को भी तैयार रहेंगे। सामान्य स्थिति में वे अपने क्षेत्र और आसपास के लोगों की नित्य सेवा करनेवाले सेवा-सैनिक होंगे। सम्मेलन भारत में अहिंसक क्रांति के प्रेमी भाई-बहनों से नम्रतापूर्वक अपील करता है कि वे शांतिमय क्रांति के इस प्रत्यक्ष कार्यक्रम में अपना पूरा योग दें और सर्वोदय-समाज की स्थापना में अपने पुरुषार्थ द्वारा सहायक हों।

विनोबा :

गंगोत्री में गंगा बहुत ही निर्मल और परिशुद्ध होती है, परन्तु उसकी धारा छोटी होती है। आगे-आगे गंगा का प्रवाह जोरदार बनता है, उसका विस्तार होता जाता है और सागर-संगम के स्थान पर तो वह बहुत ही बढ़ता जाता है। फिर भी जैसे-जैसे विस्तार बढ़ता है, वैसे-वैसे उसकी स्वच्छता और निर्मलता कम होती जाती है। दुनिया में बहुत दफा ऐसे ही अनुभव आते हैं, जहाँ संख्या-वृद्धि हुई, वहाँ गुण का कुछ ह्रास ही हुआ और जहाँ गुण पर जोर दिया गया, गुण बढ़ा, वहाँ संख्या कम हुई। मैं इस घटना पर बहुत चिंतन करता हूँ कि क्या सचमुच गुणवर्धन और संख्या-वृद्धि में विरोध है? सभी चिंतनों का मूल आधार परम आदर्श, परमेश्वर है। जब उसकी तरफ देखता हूँ, तो मुझे यही दीख पड़ता है कि वह परम शुद्ध है और परम व्यापक भी। वहाँ तो शुद्धि और व्यापकता का विरोध नहीं दीखता, दोनों एक साथ ही दीखते हैं। हम आसमान की तरफ देखते हैं, तो वहाँ भी यही दीख पड़ता है कि उसकी व्यापकता के साथ उसकी निर्मलता में कोई कमी नहीं हुई। वह परम निर्मल और परम व्यापक ही है। किन्तु गंगा की हालत कुछ दूसरी ही दीखती है। तब यही अनुभव आता है कि हमारी हालत गंगा के समान है, आसमान के समान नहीं। हम परमेश्वर की प्रतिमा नहीं बन सकते। उसके साथ हमारे जीवन और अनुभव का मेल नहीं बैठ पाता।

एकाग्रता में समग्रता साधिये

आखिर इसकी क्या वजह है, इस पर जब मैं बहुत सोचता हूँ, तो मालूम होता है कि जो एकदेशीय रहकर शुद्धि की कोशिश करते हैं, उनकी शुद्धि संकोच में टिकती है। इसीलिए व्यापकता याने संख्या और शुद्धि याने गुणों के बीच विरोध पैदा होता है। व्यापक चिंतन में यह विरोध लाजिमी नहीं है। अभी हमें सोचना पड़ेगा कि हमारा चिंतन कहाँ तक ठीक चलता है? हम एक बात निकालते हैं, तो दूसरी बात ढीली पड़ती है; दूसरी निकालते हैं, तो पहली ढीली पड़ जाती है और तीसरी निकालते हैं, तो दोनों ढीली पड़ जाती हैं।

इस तरह एकाग्रता में और समग्रता में बाधा पहुँचती है। जहाँ ऐसा होता है, कहना पड़ेगा कि वहाँ एकाग्रता में, उस कल्पना में भी कोई दोष ही है। अतः हमें ऐसी कोई युक्ति साधनी चाहिए, जिसमें एकाग्रता और समग्रता एकत्र हो सके। जब कि साधक अक्सर सब लोगों को टालकर ध्यान के लिए एकांत में जाते हैं और वहाँ परमेश्वर के साथ एकरूप होने की कोशिश करते हैं, वहीं मीरा दुनिया के सारे बन्धन तोड़ लोगों के सामने नाचती और कहती है: **"मैं तो गिरधर आगे नाचूँगी।"** अतः कहना पड़ेगा कि उसे कोई ऐसी युक्ति सध गयी है, जिससे समग्रता और उसकी एकाग्रता बाधक नहीं होती। इसका अर्थ यह हुआ कि हमें ऐसी युक्ति सधनी चाहिए कि सारी सृष्टि परमेश्वर के विविध रूप से बनी हुई है, ऐसा अनुभव हो। अतएव जब हम एक चीज पर जोर देते हैं और दूसरी चीज ढीली मड़ जाती है, तो यही समझना चाहिए कि हमारा विचार ही कुंठित है। बाबा ने सर्वोदय-पात्र की बात शुरू की, तो कुछ लोग समझने लगे कि ग्रामदान-विचार पीछे ही रह गया। यही चिंतन का दोष है। मैं सूचित करना चाहता हूँ कि हमें अपना यह चिंतन-दोष देखना और उसे संशोधित करना चाहिए।

'पक्षमुक्त' और 'पक्षातीत'

अभी देखिये, 'पक्षमुक्त' और 'पक्षातीत'—एक नयी परिभाषा है। कल मुझे उस पर प्रकाश मिला और मैं बोल गया। अभी उसका पूरा अर्थ ध्यान में नहीं आया, धीरे-धीरे आ जायगा; लेकिन उसका परिणाम क्या हुआ, यह आपने देख ही लिया। इससे गोकुल भाई के दिल को ठंडक पहुँची और उन्हें हिम्मत हुई। मैं सोचता रहा कि गोकुल भाई जैसे मनुष्य को जिस विचार में संकोच मालूम हो, निश्चय ही उसमें कुछ एकांगिता होनी चाहिए। मेरा मन तत्त्वज्ञान से बना होने के कारण कोई दरवाजा खोलने में क्या-क्या खतरे हैं, यह मैं सोच सकता हूँ। उन्हें अपनी आँखों से ओझल नहीं कर सकता। फिर भी मैंने यही सोचकर दरवाजा खोल दिया कि अगर वास्तव में हममें गुण हैं, तो संख्या-वृद्धि भी हो जायगी। व्यापक दृष्टि करने से दोनों में विरोध नहीं आयेगा। फलस्वरूप आपने देख ही लिया कि गोकुल भाई ने अत्यन्त भावनायुक्त चित्त से यहाँ

जाहिर कर दिया कि राजस्थान से शांति-सैनिकों की जो अपेक्षा की गयी है, वह पूर्ण होने की आशा की जा सकती है।

यह कोई छोटी बात नहीं है। हमने शान्ति-सैनिकों की जो माँग की है, उसमें एक ओर प्राणार्पण करने की प्रतिज्ञा है, तो दूसरी ओर नित्य सेवा की प्रतिज्ञा। रविशंकर महाराज कह रहे थे कि "आपकी पहली प्राणर्पण की प्रतिज्ञा तो बहुत आसान है, लेकिन दूसरी नित्य सेवा की प्रतिज्ञा नित्य मरण ही है। यह बड़ा कठिन काम है। इसलिए अगर आप यह दूसरी कैद न रखें, तो संभव है कि प्राणार्पण की तैयारी करनेवाले लोग मिल जायेंगे।" महाराज के कहने में वजन है, क्योंकि वे जो कुछ कहते हैं, अनुभव से कहते हैं, कोरी विद्वत्ता से नहीं। तात्पर्य यह कि यह भी कठिन है और वह भी कठिन है। ऐसी द्विविध कठिन प्रतिज्ञाएँ करनेवाले बहुत तादाद में मिलेंगे, ऐसी आशा नहीं। इस तरह जब हम व्यापक दृष्टि से सोचेंगे, तभी काम होगा।

एकांगीपन से बचें

मैं समझता हूँ कि गुण और संख्या का विरोध वहीं होता है, जहाँ-जहाँ प्रयत्न एकांगी रहता है। ईसामसीह ने यूरोप और एशिया में नव-विचार फैलाने का प्रयत्न किया। उनके शिष्य भी अच्छे थे और उनके विचार भी बहुत ही सुंदर थे। दुश्मन पर प्यार करना, अपनी सब चीजें सबके साथ बाँटकर खाना, एक ही परमेश्वर मानना—ये कोई ऐसी बातें नहीं, जिन पर आक्षेप किये जा सकें। वे ऐसी सर्वांग-सुन्दर जीवन-दृष्टि लेकर निकले। लेकिन बाद में उनके शिष्यों द्वारा उसमें एक ऐसी चीज दाखिल की गयी, जिससे वह विचार अच्छा होने पर भी एकदेशीय बन गया। इसीलिए जब उनकी संख्या बढ़ी, तो गुण घटने लगा। जहाँ संख्या बढ़ने लगी, वहाँ गुण नहीं बढ़ा और जहाँ गुण बढ़ने लगा, वहाँ संख्या घट गयी। वह एकांगी विचार यही था कि 'एकमात्र ईसामसीह यही एक परमेश्वर के पुत्र हैं और उन्हींके द्वारा हम परमेश्वर के पास पहुँच सकते हैं'। इनके बजाय अगर वे यों कहते कि 'हम सब परमेश्वर के पुत्र हैं और उनमें ईसामसीह एक उज्ज्वल पुत्र-रत्न हैं', तो कोई उज्र न होता।

मैं जरा आहिस्ता-आहिस्ता चिंतन कर रहा हूँ। पहले सर्वोदय-सम्मेलन

की बात है, जो गांधीजी के प्रयाण के बाद सेवाग्राम में हुआ था। उस समय इसके नामकरण की बात चली। कुछ लोगों ने कहा कि "इसे गांधीजी का नाम दिया जाय।" मैंने कहा : "ऐसा क्यों कहते हैं? 'सर्वोदय' यह शब्द बड़ा ही सुन्दर है और गांधीजी ने ही हमें दिया है। इससे भी अधिक प्राचीन आधार उसे प्राप्त है। इसलिए यही बेहतर होगा कि उसीको हम चलायें और गांधीजी का नाम न रखें।" खुशी की बात है कि लोगों को यह समझ में आ गया और उन्होंने मेरी बात मान ली। जिस तरह **'ला इलाही इल् इल् लाह'** (ईश्वर के सिवा कोई महान् नहीं, कोई पूजनीय नहीं) इसके साथ **'महम्मदुर्रसूल उल्लाह'** (मुहम्मद हमारा रसूल है) यह जोड़ दिया गया, उसी तरह अगर हम भी यह कहते कि 'सत्यनिष्ठा और अहिंसा हमारी उपास्य देवता हैं और गांधीजी हमारे गुरु हैं', तो निःसंदेह हम अपने सद्विचार में एकदेशीयता दाखिल करते। परिणामस्वरूप यह आपत्ति आती कि संख्या बढ़ती, पर गुण घटता जाता। लेकिन वह आपत्ति टल गयी, क्योंकि हमने उस नाम को अपने हृदय में ही रखा, वाणी में नहीं आने दिया।

तुकाराम की एक बहुत ही अद्भुत उक्ति है। सहज स्फूर्ति से उसने कहा है : **'आहे ऐसा देव। वदवावी वाणी। नाहीं ऐसा मनीं। अनुभवावा॥'**

याने परमेश्वर है, ऐसी वाणी से बोलना चाहिए और वह नहीं है, ऐसा मन में अनुभव करना चाहिए। तुकाराम भी उसी कोटि के मनुष्य थे, जिस कोटि के हमारे रविशंकर महाराज हैं। वे ज्यादा पढ़े नहीं थे, पर जो भी थोड़ा पढ़ा, उसे उन्होंने पचाया। उनकी यह युक्ति हमें बड़ी कारगर मालूम हुई। यदि आप ऐसा नहीं करते, तो आप एकदेशी और संकुचित हो जायँगे। अगर आप 'हैं', तो 'हैं' में 'नहीं' भी हैं। आपका पूर्ण क्रियापद 'नहीं' है। वह इतना व्यापक है कि वह अंतर्गत भी है। इसलिए आप 'नहीं' कहते हैं, तो आपके अन्तर में वह है नहीं। और अगर आप 'हैं' कहते हैं, तो आपके अन्तर में नहीं है, ऐसा अनुभव आपको करना होगा। परमेश्वर है, यह बोलने की बात है और नहीं है, यह अन्तर में अनुभव करने की बात है। इस तरह स्पष्ट है कि जहाँ हमारे चिन्तन में एकदेशीपन आ जाता है, वहाँ गुण और संख्या के बीच विरोध

खड़ा हो जाता है। किन्तु जहाँ एकदेशीपन नहीं है, वहाँ इस प्रकार का भय नहीं है। इन दिनों इस चीज पर मेरा चिन्तन चल रहा है।

सत्याग्रह की ही बात लीजिये। पूछा जाता है कि क्या लोकतंत्र में सत्याग्रह को स्थान है? एक कहता है: 'नहीं', तो दूसरा कहता है: 'है'। किन्तु दोनों सत्याग्रह की असत् कल्पना कर बैठे हैं। अगर हम सत्याग्रह की परिशुद्ध कल्पना करें, तो कहना पड़ेगा कि लोकतंत्र में उसे एक विशेष स्थान हो सकता है। यहाँ हमें 'सत्याग्रह' को व्यापक अर्थ में लेना होगा। अगर यह नहीं हो पाता, तो सत्याग्रह में भी वही आपत्ति आयेगी—जहाँ संख्या बढ़ाने की बात आयेगी, वहीं गुण घटेगा और जहाँ गुण बढ़ाने की कोशिश होगी, वहाँ संख्या घटेगी। संकुचित कल्पना में यह आपत्ति आती ही है।

'वेदान्त' का व्यापक अर्थ

मैंने कहा था कि वेदांत, विज्ञान और विश्वास—ये तीन शक्तियाँ इस जमाने को चाहिए। वेदान्त का अर्थ है, वेदों का अन्त याने खातमा। अर्थात् सभी कृत्रिम धर्मों का अन्त। वेद को उनका प्रतिनिधि मान लें, तो वेदान्त का अर्थ हुआ—बाइबिलान्त, पुराणान्त, कुराणान्त या जितनी पुस्तकें, उन सबका अन्त। इस तरह वेदान्त अत्यन्त व्यापक वस्तु हो जाती है। इसीलिए मैं मानता हूँ कि वेदान्त ही दुनिया को बचा सकता है। अगर मैं 'वेदान्त' का अर्थ उपनिषद् वगैरह कहूँ, तो फौरन एकदेशीपन आ जायगा। इसलिए ऐसा संकुचित विचार मैं नहीं मानता। मनुष्य को मनुष्य से अलग करनेवाली सभी कल्पनाओं का अंत ही वेदान्त है। जब हम उसका ऐसा विशाल, व्यापक अर्थ करते हैं, तो निःसन्देह वेदान्त से दुनिया का भला होगा।

धर्म को व्यक्तिविशेष से जोड़ना गलत

विवेकानंद ने अमेरिका की धर्म-परिषद् में यही गर्जना की थी। वेदान्त में हम किसी एक पुरुष के साथ बँधे नहीं हैं, जैसे कि ईसाइयत ईसा के व्यक्तित्व के साथ बँधी है या जैसे कुछ कम मात्रा में सही, मुहम्मद के साथ इसलाम की विचार-सरणी किंवा गौतम के साथ बौद्ध-धर्म की विचार-सरणी जुड़ी दीख

पड़ती है। 'दीख पड़ती है' यह मैं जान-बूझकर कह रहा हूँ। वास्तव में वह नहीं है, दीख ही पड़ती है।

बुद्ध ने यह कहीं नहीं कहा है कि आप मेरे वचनों के अनुसार ही चलें या उसी तरह विचार करें। मुहम्मद ने भी ऐसा कभी नहीं कहा। उसने तो बार-बार यही दोहराया है कि "मैं परमेश्वर नहीं हूँ, मैं परमेश्वर की जगह नहीं बैठ सकता। मैं मर्त्य हूँ, मनुष्य हूँ।" लेकिन उसके कई ऐसे साथी निकले, जिन्होंने उसे 'परमेश्वर' कहा। जहाँ गुणों का प्रकाशन ज्यादा होता है, वहाँ मनुष्य की आँखें चौंधिया जाती हैं। इसलिए उसके बार-बार परमेश्वर होने से इनकार करने के बावजूद उसे लोग परमेश्वर ही मानते थे। वे मर गये, तो वह बात फैली, लेकिन लोगों ने उसे माना नहीं। यही समझ लिया कि वे मर नहीं सकते, यह बिल्कुल अफवाह है, गलतफहमी है। आखिर अबूबकर, जो उनका शिष्य था और सर्वथा सत्यवादी के तौर पर प्रसिद्ध था, एक मसजिद पर चढ़ा और वहाँ से उसने जाहिर किया कि "मुहम्मद एक आदमी था और वह मर गया"। तब कहीं एकत्रित लोगों ने इस बात को सही माना।

हाँ, तो मुहम्मद ने यह कभी नहीं कहा कि मैं अल्लाह की जगह ले सकता हूँ और मेरे साथ परिपूर्ण सत्य जुड़ गया है। बल्कि उसने यही कहा कि "पहले के रसूलों ने जो कहा है, वही मैं आपके सामने कह रहा हूँ।" किंतु '**मुहम्मदु-र्रसूल उल्लाह**' यह लोगों ने बाद में जोड़ दिया। अल्ला का रसूल है, ऐसा अर्थ मुसलमानों ने माना। लेकिन मुहम्मद ने जो कहा है, उसका अर्थ यही है कि मुह-म्मद उसका रसूल मात्र है, सेवक मात्र है। अल्लाह नहीं है, उसका पैगाम पहुँ-चानेवाला रसूल है। लेकिन आज उसका अर्थ मुहम्मद ही रसूल है, ऐसा किया जाता है, जो गलत है। बल्कि कुरान में इससे उल्टा अर्थ लिख रखा है। अल्ला-मियाँ पैगम्बर से बोल रहे हैं कि "उसे तो मैंने पैगाम दिया है, अरबों के लिए अरबी जबान में बोलने के लिए। तू बोलेगा, यों समझकर मैंने तुझे पैगाम दिया है। मैंने हरएक कौम के लिए रसूल भेजे हैं।" उन्होंने कुछ रसूलों के नाम भी दिये हैं और कहा है कि "कुछ रसूलों के नाम तो तू जानता है और कुछ नहीं जानता।" फिर मुसलमानों के लिए इकरार करना पड़ता है। यह बोलना पड़ता है '**ला नु फ़ररिकु बैन अहदिम् भिर रुसुलिह्**' याने हम कोई रसूलों में

फर्क नहीं करते। आज ही सुबह दरगाह-शरीफ में मैं यह बोल आया हूँ। इसका अर्थ अत्यन्त व्यापक है। फिर भी मुहम्मद के साथ यह चीज जुड़ जाने से इसमें एकांगिता आ जाती है।

परिणाम क्या हुआ? परमेश्वर एक है, यह तो ठीक है। लेकिन विभिन्न रूपों में उसकी उपासना नहीं हो सकती, यह बात उसके साथ जुड़ गयी। वेद ने कहा है: **'एकं सत्'** सत्य एक है; ठीक वही बात, जो पैगम्बर ने कही है। लेकिन वह आगे कहता है: **'विप्राः बहुधा वदन्ति'** विप्र, ज्ञानी, उपासक, भिन्न-भिन्न उसकी उपासनाएँ करते हैं। मतलब यह कि उस एक उपासना में अनेकविध उपासनाएँ समायी हुई हैं। लेकिन इसलाम ने यह नहीं माना। वे यही कहेंगे **'एकं सत् मूर्खाः बहुधा वदन्ति'** सत्य एक है और मूर्ख उसे बहुविध कहते हैं। किन्तु यह एकांगी विचार हो जायगा। इसका अर्थ यही होगा कि वह एकता बहुविधता को समा नहीं सकती, सहन नहीं कर सकती। ऐसी एकता एकांगी हो जाती है। किन्तु यदि आप यह कहें कि "सत्य एक ही है, पर ज्ञानी लोग भिन्न-भिन्न रूपों में उसकी पूजा करते हैं", तो तत्काल आप व्यापक विचार करने लगते हैं। फिर गुण और संख्या का विरोध ही आयेगा।

ग्रामदान के बारे में दो भ्रान्त विचार

हमारे सामने एक समस्या है: "ग्रामदानी गाँव की संख्या बढ़ाते चले जाते हैं, तो कुछ ग्रामदानी गाँव बोगस हो जाते हैं।" मुझे किसीने पूछा था कि "क्या ऐसा नहीं होता?" मुझे जो उपमा सूझी, वह मैंने कह ही दी: "शिवाजी ने ५० किले जीते, जिनमें से बीस गँवाये और तीस हाथ में रह गये।" यह निरुत्तर उत्तर है, वह चुप भी हो जाता है। फिर भी मैं जानता हूँ कि इससे समाधान नहीं होता। अतः आवश्यक है कि हम चिन्तन करें। हमारे ग्रामदानी गाँव ढीले पड़ते हैं, इसका कारण कुछ भी हो, फिर भी आपने ही उसे बनाया है और आप ही कह रहे हैं कि वे कच्चे हैं, तो जाइये और पक्के बनाइये। खूँटा जरा ढीला हो गया, तो उसे पक्का बनाइये। परिस्थिति ने उसे ढीला बना दिया, तो क्या आप उसे उठाकर फेंक देंगे? फिर आपकी चक्की ही कैसे चलेगी? इसलिए आप ही खूँटे को पक्का बनाइये। अगर वह पक्का नहीं बनता, पक्का बनाने में ही

टूट जाता है, तो अलग बात है। फिर भी उसे पक्का बनाने की कोशिश तो करनी ही चाहिए।

इस तरह स्पष्ट है कि हम लोगों में जो यह विचार चलता है कि "हम थोड़े-थोड़े ग्रामदान हासिल करें और वहीं मजबूत काम करें", उससे परिणाम तो अच्छा होगा, पर व्यापकता नहीं आयेगी, जिसका आना बहुत जरूरी है।

दूसरा विचार यह चलता है कि "चन्द ग्रामदान हासिल करोगे, तो तुम पर जिम्मेवारी आयेगी।" मैं कहता हूँ कि जितने ज्यादा ग्रामदान हासिल होंगे, उतनी समाज पर जिम्मेदारी आयेगी, तुम्हारी जिम्मेदारी नहीं रहेगी। उस हालत में विचार व्यापक बनेगा और लोगों को विविध प्रयोग करने होंगे। यदि हम इसकी व्यक्तिगत जिम्मेदारी उठाते हैं, तो कदाचित् हम नालायक साबित हों या नाकामयाब हों, तो क्या ग्रामदान का विचार भी नालायक हो जायगा? मान लो कि विनोबा किसी एक जगह बैठा और उसने कुछ काम किया तथा वह सफल भी हुआ, तो लोग यही कहेंगे कि "विनोबा जैसा व्यक्ति बैठा, इसीलिए काम हुआ, नहीं तो न होता"। याने अगर हम सफल हुए, तो हार गये और हार गये, तो मर गये, जैसा कि आधुनिक लड़ाई में होता है। इसलिए उसमें कोई आश्चर्य नहीं माना जायगा।

एक भाई ने मुझसे कहा है कि आप काफी घूम चुके, अब एक जगह बैठ जायँ और काम करें। इस पर मैंने उसे वेद का एक मन्त्र सुनाकर समझाया कि सबकी रक्षा करनेवाला परमेश्वर बैठा ही है। वह जिम्मेदारी मेरी नहीं है। कार्ल मार्क्स को किसीने नहीं कहा कि तुम करके बताओ। इसलिए ये जो दो विचार चलते हैं, वे एक-दूसरे को काटनेवाले हैं। इनसे सारा विचार ही संकुचित, कुंठित हो जायगा। दोनों मिलकर एक ही विचार है—कुछ ग्रामदान मजबूत बनाये जायँ और नये-नये ग्रामदान हासिल किये जायँ। ग्रामदान के लिए हवा भी खूब बनायी जाय, प्रचार भी खूब किया जाय। संख्या की वृद्धि से हमें डर नहीं, पर उसके साथ ही गुण-वृद्धि होना भी लाजिमी है। जब हम ऐसी व्यापकता के साथ काम करेंगे, तभी हमारी ताकत बढ़ेगी। मैं इस विचार को बहुत महत्त्व दे रहा हूँ। हमारे कार्यकर्ताओं के मन में छिपाव नहीं, दुविधा,

त्रिविधा ही नहीं, चौविधा भी प्रकट हो सकती है—हम यह करें या वह करें, ऐसा वे सोच सकते हैं। लेकिन पहले हमें यही समझना चाहिए कि हम ही करनेवाले कौन हैं? सर्वोदय-पात्र कहेगा कि हम याने कुल हिन्दुस्तान। फिर हरएक से जितना बन सके, उतना वह करे, वह हमारा ही काम माना जायगा।

तेजस्वी के लिए नियमों का बन्धन नहीं होता

आज सुशीला बहन नायर से बातें हो रही थीं। वह गांधीजी के पास रही है, इसका हम पर बहुत असर है। वह कह रही थी कि "ग्वालियर के नजदीक डाकुओं का मुल्क है। जी चाहता है कि वहाँ शान्ति-सेना का काम करूँ। लेकिन अगर आपके शांति-सेना के नियमों में वह बैठता हो, तभी कर सकूँगी। आप आशीर्वाद दीजिये।" मैंने उससे कहा: "यह मैं जाहिर कर देना चाहता हूँ कि शान्ति-सेना का काम करने के लिए शान्ति-सेना के प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करने की बिलकुल जरूरत नहीं। फिर भी प्रतिज्ञा-पत्र हासिल करने का मेरा यह नाटक जारी ही रहेगा। शान्ति-सेना का काम जिसे सधे, वह करे। जिसके दिल में उसके लिए तीव्रता हो, वह यह काम करेगा ही। मैं जानता हूँ कि मनुष्य की कुछ मर्यादा होती है। ऐसे मनुष्य के लिए वे नियम लागू नहीं होते। हमारे शास्त्र में कहा है कि 'जो तेजस्वी हो, उसे दोष लागू नहीं होते।' तुलसीदास ने भी यही लिखा है: **'समरथ को नहिं दोस गुसाईं।'** अगर सुशीला यह दिखा दे कि वह वहाँ जाती, काम करती और कामयाब होती है, तो अच्छा ही है। वह वहाँ जायगी, तो दो चीजें होंगी: (१) उसके कार्य से उसका जीवन सफल होगा या (२) उसमें वह कतल हो जायगी। इसलिए नियमों में न बैठ सकें, तो भी लोग समय पर यह काम कर ही सकते हैं। मैं व्यापक बनना चाहता हूँ और मैं व्यापक ही हूँ।

मुझसे कुछ लोग अजीब सवाल पूछते हैं। अभी राजस्थान में ही एक भाई ने पूछा कि "क्या हम बीड़ी पीते हैं, तो शांति-सैनिक हो सकते हैं?" मैंने पूछा: "क्या प्रतिज्ञा-पत्र में ऐसा लिखा है कि बीड़ी नहीं पीनी चाहिए?" उसने कहा: "नहीं लिखा है।" इस पर मैंने कहा कि "ऐसा नहीं है, यही समझ लो।" प्रतिज्ञा में मैं ऐसी कैद नहीं रखता। अगर रखता, तो खतम ही हो जाता। उसमें न

बीड़ी पीने का निषेध किया गया है और न खादी पहनने या सूत कातने का विधान। ऐसा कुछ है ही नहीं। मैं संकुचित बनने का साहस ही नहीं कर सकता। मैं तो समझता हूँ कि वह 'सेफ्टी वल्व' है; उससे बचाव हो सकता है।

आग्रह सर्वथा त्याज्य

मैंने यह कहा है कि सत्याग्रह का अर्थ यही है कि सत्य को ही आग्रह करने दीजिये, आप सत्य का आग्रह मत कीजिये। आप तो सत्य का पालन ही कीजिये। आप अगर समझते हैं कि हमारा आग्रह ठीक है, तो सामनेवाला भी आग्रह रखेगा। इस तरह एक आग्रही मन के खिलाफ दूसरा आग्रही मन खड़ा हो जायगा और दो मनों की टक्करों को टालना होगा। सज्जनों के मनों की विरोधी टक्करें नहीं होने देनी चाहिए। अगर कोई भी सज्जन आकर मुझसे कहे कि तुम्हारा विचार संकुचित मालूम होता है, तो मैं उसे यही कहूँगा कि तुम्हारे लिए मैंने वह खोल दिया है; क्योंकि सज्जन के विरोध में मैं खड़ा नहीं हो सकता। मैं जानता हूँ कि सामनेवाला सज्जन है और वह भी जानता है कि मैं सज्जन हूँ। इस तरह जब दोनों एक-दूसरे को जानते हैं, तो संकुचितता नहीं होनी चाहिए। मेरी हमेशा यही कोशिश रहती है। इसलिए संकुचितता छोड़ परिणाम देखना चाहिए। सही विचार मालूम करना चाहिए और मन में किसी तरह का आग्रह नहीं रखना चाहिए।

इस पर कल से ही लोग मुझसे पूछने लगे कि "क्या चुनाव में खड़ा होनेवाला भी शांति-सैनिक बन सकता है?" मैंने गोकुल भाई से कहा कि "आप ही इस बारे में बताइये।" उन्होंने फैसला दिया कि "चुनाव में खड़ा होनेवाला शांति-सैनिक नहीं बन सकता।" वे अगर दूसरा ही फैसला देते, तो भी मैं सोचता। कोई अगर यह कहता कि "चुनाव में भी यदि कोई राग-द्वेष रहित, परिपूर्ण, शांत और तटस्थ मन से खड़ा होना चाहे, तो क्या हर्ज है?" तो मैं यही कहता कि "हाँ भाई! कोई हर्ज नहीं।" इसलिए मेरा भरोसा ही मत कीजिये, मैं कुछ भी कह सकता हूँ। बड़ी मजेदार बात है, गुजरात में मैंने 'शांति-सेना' और 'शांति-सहायक' के लिए कभी कुछ कहा, तो कभी कुछ। मैं एक भाई के सवाल का जवाब दे रहा था, तो नारायण ने कहा कि "परसों तो आप इससे भिन्न बात कहते थे।"

बात यह है कि मैं जो बातें रखता या कहता हूँ, वे मुझे बाद में याद भी नहीं रहतीं। आग्रह के लिए याद तो रखनी चाहिए न ? लेकिन याद नहीं रहती। इसीलिए अन्ततः मैंने नारायण के पूछने का रिवाज रखा कि "क्यों नारायण, मैंने क्या कहा था ?" तात्पर्य यह कि हम जितने व्यापक बन सकते हैं, उतने व्यापक बनें। हम यही चाहते हैं कि हम व्यापक बनें और हम सबको एक करें। हम सब सज्जनों को एक करना चाहते हैं। यही हमारी दृष्टि है।

ये नियम केवल कार्य की सफलता के लिए

किन्तु ऐसी दृष्टि रखते हुए भी हमने अंकुश तो रखा ही है। इसका कारण यही है कि हम जानते हैं कि बिना अंकुश के और काम तो हो सकते हैं, पर शांति-सेना का काम नहीं हो सकता। सिर फूटेंगे, पर सफलता नहीं मिलेगी। फिर सिर फुड़वाना ही हमारा लक्ष्य हो, तो वह अलग बात है। अतः हम सफलता का प्रबन्ध करके ही सिर फुड़वायें। अगर ऐसा नहीं करते, तो वह हमारी मूर्खता ही साबित होगी।

रविशंकर महाराज की ही बात देखिये। वे हमारे साथ चार-पाँच महीने रहे हैं। वे कहते थे कि उनके विचारों के जो दोष थे, वे दूर हो गये हैं। मैंने भी उनके साथ रहकर अपने विचारों में जो दोष थे, उन्हें दुरुस्त कर लिया है। यह बात मैंने उनके सामने तो नहीं कही, अब कह रहा हूँ। उनके अनुभव की बात है। आप जानते ही हैं कि अहमदाबाद में महागुजरात के प्रश्न पर दंगा हुआ और कुछ गोलियाँ भी चलीं। उस समय महाराज ने कहा कि "जिनके हाथ में दंडशक्ति है, उन्हें गोली चलानी पड़ी, इसमें इतना हर्ज नहीं। किंतु जब कांग्रेस ऑफिस से गोली चली, तो मेरे मन में यह विचार आया कि कांग्रेस ऑफिस गोली चलाने की जगह नहीं। वह तो मरने की जगह है, मारने की नहीं। इसलिए मेरा दिल बगावत करता है।" उनसे मिलने के लिए कांग्रेस के कुछ भाई गये थे। महाराज अहमदाबाद से चालीस-पचास मील दूर भूदान के प्रचार के काम में घूम रहे थे। उन्होंने महाराज से कहा कि "अगर आप अहमदाबाद आयें, तो शांति का प्रचार कर सकते हैं, लोग भी आपकी बात मान लेंगे।" महाराज ने कहा: "मैं आने को राजी हूँ, जरा प्रयत्न करना होगा। किन्तु वह कहाँ तक सफल होगा, कह नहीं

सकता । लेकिन मैं उसके साथ यह भी कहूँगा कि कांग्रेस ऑफिस से गोली नहीं चलनी चाहिए ।" उसके बाद उन्हें वहाँ बुलाने का आग्रह नहीं हुआ ।

यह सोचने की बात है। मैं कह यह रहा था कि हम खूब व्यापक बनना चाहते हैं और सबके साथ सम्बन्ध रखना चाहते हैं । फिर भी अगर महाराज गोली-वाली बात पर लोगों के पूछने पर खामोश रहते, तो वे बहुत महान् होने पर भी शांति-स्थापना में नाकामयाब ही रहते । सिर फुड़वाना हो, तो अलग बात है; किन्तु सत्य बोलकर ही वे शांति की स्थापना कर सकते थे । निष्पक्ष होकर ही सत्य बोला जाता है । इस पर कोई पूछे कि "पक्षके अन्दर रहकर सत्य नहीं बोला जा सकता ?" तो मैं यही कहूँगा कि बोलकर दिखाइये, मुझसे मत पूछिये । मैं तो मानने को राजी हूँ । पक्षातीत कोई नहीं हो सकता, ऐसा मैं नहीं कहता; फिर भी इन दिनों वह बड़ा मुश्किल है, क्योंकि पक्ष के साथ लड़ाई-झगड़े जुड़ ही जाते हैं । चाहे कोई पक्षमूलक झगड़े न हों, तो भी पक्ष उनके बीच आ ही जाता है और किसी-न-किसी तरह से वे मामले पक्ष के बन ही जाते हैं । उस हालत में जहाँ जो भी कुछ जिस किसी पक्ष से हुआ हो, वहाँ जाकर जो यह बोलने की हिम्मत करे कि "फलाना काम गलत हुआ है", तो वह पक्ष में रहकर भी पक्षातीत बन जाता है, यह मैं जाहिर करना चाहता हूँ । महाराज तो किसी पक्ष में नहीं हैं, इसलिए वे तो पक्षमुक्त ही हैं ।

मुझसे संकुचित बनाने की आशा ही नहीं

इस तरह स्पष्ट है कि हमने जो कुछ मर्यादाएँ रखी हैं, वे संकुचित बनने के लिए नहीं, बल्कि कारगर बनने के लिए ही हैं । हमें ऐसा लगा कि शांति-सेना के काम में सफल होने के लिए ये मर्यादाएँ आवश्यक हैं, इसीलिए हमने उन्हें रखा है । किन्तु मान लीजिये, उनसे कुछ सज्जनों को, जो इसमें आने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं, कुछ बाधा पड़ रही हो, तो हम उसे हटाने के लिए भी राजी हैं, ऐसा हमने कल ही कह दिया; यह मानकर कि यहाँ थोड़ी संकुचितता आ सकती है । जहाँ संकोच आये, वहाँ उसे छोड़ दें, तो गुण और संख्या के बीच विरोध नहीं आ सकता । यही आज के मेरे व्याख्यान का मुख्य विचार है ।

हम अपने कार्यकर्ताओं से यह निवेदन करना चाहते हैं कि जिस किसी कार्य

के जिस किसी भी अंग में वे लगे रहें, जिस अंग में उन्हें श्रद्धा और विश्वास हो, मान लीजिये, सर्वोदय-पात्र का काम किया जाय, ऐसा बाबा ने कहा, तो कोई जरूरी नहीं कि आप वही काम करें। अगर आप जमीन के बँटवारे की जिम्मेवारी महसूस करते हों, तो उसीमें लगे रहें। इस व्यासपीठ (प्लेटफार्म) से किसीको संकुचित बनानेवाला कोई भी आदेश नहीं मिलेगा। मुझसे तो और भी नहीं मिलेगा, क्योंकि मेरे विचार में तो वह चीज है ही नहीं। इसीलिए जब कोई मुझसे पूछते हैं कि "ऐसी हालत में शांति-सेना कैसे बनेगी ?" तो मैं यही कहता हूँ कि "देखिये कैसे बनेगी। यह प्रयोग करके देखने की बात है।" मैं चाहता हूँ कि किसी भी विचार को बाधा न पहुँचाते हुए काम व्यापक बने। मेरी श्रद्धा है कि इस तरह किसी भी विषय को बाधा नहीं पहुँचायेंगे, तभी काम व्यापक बनेगा। फिर गुण और व्यापकता में कोई विरोध आयेगा, ऐसा मैं नहीं मानता।

शाम को ६-२० बजे सम्मेलन का ग्यारहवाँ अधिवेशन समाप्त हुआ।

सर्वोदय परिसंवाद

[देवीप्रसाद]

सर्व-सेवा-संघ ने पिछले साल पंढरपुर-सर्वोदय-सम्मेलन के पहले लगभग पचास सर्वोदय-कार्यकर्ताओं का एक परिसंवाद आयोजित किया था। यह परिसंवाद पंढरपुर के नजदीक खरड़ी में तीन दिन तक चला। खरड़ी के परिसंवाद के अनुभव को देखकर सर्व-सेवा-संघ ने सोचा कि इस प्रकार के परिसंवाद समय-समय पर होते रहें, तो सर्वोदय-दर्शन का सम्पूर्ण स्वरूप कार्यकर्ताओं के सामने स्पष्ट होता रहेगा और इसलिए अजमेर-सम्मेलन के पहले भी एक परिसंवाद हो, ऐसा निर्णय किया गया। संघ ने परिसंवाद के आयोजन की जिम्मेवारी श्री देवीभाई को सौंपी और उनकी मदद के लिए एक समिति भी नियुक्त की, जिसमें श्री वल्लभस्वामी, श्री नारायण देसाई और श्री करणभाई थे।

परिसंवाद में भाग लेने के लिए कुल १७८ व्यक्तियों को निमंत्रित किया गया था। निमंत्रित और कुछ अन्य मित्र, कुल मिलाकर लगभग १२० व्यक्ति परिसंवाद में आये। परिसंवाद की अध्यक्षता श्री जयप्रकाशजी ने की।

सर्वोदय-आन्दोलन का सिंहावलोकन

ता० २१ फरवरी की सुबह १०-३० बजे महिला शिक्षा-सदन हटुंडी की महिलाओं के एक गीत से परिसंवाद का कार्यक्रम शुरू हुआ।

पहले दिन की चर्चा का विषय सर्वोदय-आन्दोलन का सिंहावलोकन था। इसके मुख्य दो विभाग हैं : एक तो आन्दोलन पर की गयी टीकाएँ और आलोचनाएँ, और दूसरा, आन्दोलन की अपने-आप द्वारा की गयी समीक्षा।

हमें मुख्य बात तो यह समझनी चाहिए कि आन्दोलन पीछे हट रहा है, यह टीका गलत है। आन्दोलन दरअसल बढ़ रहा है। खास बात तो यह है कि हम संख्या में इतने कम होते हुए भी हमारे द्वारा इतना बड़ा काम हो गया।

परिसंवाद के सामने विनोबाजी के साथ हुई चर्चा का सार रखा गया। उन्होंने कहा है कि येलवाल-सम्मेलन में ग्रामदान-आन्दोलन लोकमान्य बना। अब हमें उसे लोकप्रिय बनाना चाहिए। उसके लिए कार्यकर्ता चाहिए। कार्यकर्ताओं को आध्यात्मिक और भौतिक आधार सर्वोदय-पात्र द्वारा मिलेगा। हमें एक साल तक यानी अगले वर्ष अन्य कार्यों को समेटकर सर्वोदय-पात्र के काम में लगना चाहिए। कार्यकर्ताओं का निर्वाह सर्वोदय-पात्र, सूतांजलि, सम्पत्तिदान द्वारा ही हो। योगक्षेम के लिए सरकारी सहायता और संचित निधि का सहारा वर्ज्य माना जाय। निर्माण-कार्य के लिए सरकारी मदद ली जा सकती है।

हमें निर्माण-कार्य के कुछ नमूने पेश करने चाहिए, उससे देश को कुछ रास्ता दीखेगा और कार्यकर्ता भी मिलेंगे।

जनशक्ति का विकास करने के लिए कुछ लोग जो असहयोग-आन्दोलन और पुराने ढंग के सत्याग्रह की आवश्यकता महसूस करते हैं, उसके बारे में भी स्पष्टीकरण हुआ। सत्याग्रह का आज का सन्दर्भ अलग है। लोकशाही में जो अधिकार लोगों को मिले हैं, उन्हें हमें संकुचित नहीं करना है, बल्कि उनकी वृद्धि करनी चाहिए। पिछले सात वर्षों में सत्याग्रह का काफी विकास हुआ है। तात्कालिक प्रश्नों का हल पुराने सत्याग्रह द्वारा नहीं हो सकता। हमारा आन्दोलन 'शार्ट कट' का नहीं है। यह तो हृदय-परिवर्तन का है। उस परिवर्तन को करने के लिए सत्याग्रह का स्वरूप सौम्य से सौम्यतर और फिर सौम्यतम करना होगा।

सर्वोदय-आन्दोलन केवल भूमि की समस्या तक ही सीमित है, ऐसी बात नहीं। वह समाज का मूल रूप से परिवर्तन करना चाहता है। हमारे आन्दोलन को उद्योग और व्यापार में भी प्रवेश करना चाहिए। उद्योग और व्यापार का कोई मालिक नहीं, वह तो सामाजिक क्षेत्र होना चाहिए; उसके लिए कुछ सद्भावी व्यापारियों और उद्योगपतियों को तैयार करना चाहिए।

सर्वोदय-पात्र और उसकी समस्याएँ

दूसरे दिन सर्वोदय-पात्र और शान्ति-सेना का विषय था। अनुभवों के आधार पर चर्चा हुई। उसमें जो खास-खास मुद्दे निकले, उनका सार यों है :

अहिंसक समाज का प्रतीक चरखा है। क्या सर्वोदय-पात्र चरखे की जगह नये समाज का प्रतीक हो सकता है ? इस प्रश्न पर आम राय यह रही कि सर्वोदय-पात्र का उद्देश्य यह नहीं है। यह तो लोक-सम्मति का प्रतीक है और चूंकि लोक-सम्मति के लिए 'लोएस्ट कामन डिनामिनेटर' कार्यक्रम हो, जिसे हर कोई फौरन प्रारम्भ कर सके, इसलिए सर्वोदय-पात्र ही उसके लिए उपयुक्त कार्यक्रम है।

सर्वोदय-पात्र के कार्यक्रम में सातत्य का रहना अत्यन्त आवश्यक है। इस-लिए यह आवश्यक है कि पात्र की स्थापना के बारे में जनता के पास बार-बार जाना चाहिए। लोगों को हम अपनी पत्रिकाओं से परिचित करायें। जब भी उनके पास जायँ, पत्र-पत्रिकाएँ लेकर जायँ। उसके लिए गाँवों में और मुहल्लों में रात को प्रौढ़-वर्ग आदि चलाने चाहिए। शान्ति-सेना यानी सेवा-सेना का जितना काम चलेगा, उतनी ही हमारी सर्वोदय-पात्र की ध्येय-सिद्धि होगी।

पात्र की व्यवस्था की तफसील के बारे में यह जरूरी है कि हमारी दृष्टि शिक्षा की हो और हमें जनता की तथा अपनी शक्ति को समझकर ही काम हाथ में लेना चाहिए। पात्र की स्थापना के बारे में यात्राएँ करें, पर यात्राओं में पात्र की स्थापना न की जाय, क्योंकि स्थापना के बाद वहाँ बार-बार जाना पड़ता है, जिसके लिए संगठन की आवश्यकता है। महापात्र की जगह निश्चित होनी चाहिए। साथ-साथ यह भी विचार आया कि हमें सर्वोदय-पात्र के कार्यक्रम को कुछ और सहज बनाना चाहिए। कुछ लोग, जो रोज मुट्ठी डालने में कठिनाई महसूस करते हैं, उन्हें माहवारी एक साथ डालने से शुरू कराया जा सकता है। धीरे-धीरे उन्हें बाकायदा सर्वोदय-पात्र स्थापित करने में प्रवृत्त किया जाय। यह काम केवल नियमों से नहीं चलेगा। अगर हमारा 'प्रास्पे-क्टिव' समग्र होगा, तभी यह काम ठीक चलेगा, क्योंकि यह कार्यक्रम संस्कार और गुण-विकास का कार्यक्रम है। यह कार्यक्रम ऐसा नहीं है कि जिसे हम दो-चार मास या एक-आध वर्ष में पूरा कर सकते हैं। इसे करने में तो लम्बा समय लगेगा। परन्तु इसे हमें अब कुछ गति से करना पड़ेगा, जिससे कि एक अच्छा खासा ढाँचा आठ-दस महीनों में खड़ा हो जाय। उसके लिए इस कार्यक्रम पर कुछ अधिक ध्यान देना होगा और दूसरे कार्यक्रमों से इस पर अधिक जोर देने के लिए अन्य कार्यों को कुछ सीमित भी करना पड़े, तो करना चाहिए।

शान्ति-सेना सम्बन्धी चर्चा में मुख्य प्रश्न शांति-सेना और पक्ष-मुक्ति ये थे।

शान्ति-सेना में प्रवेश के लिए पक्षमुक्त होने का सवाल महत्त्वपूर्ण है। व्यावहारिक दृष्टि से यह आम तौर पर सम्भव नहीं होता कि किसी पक्ष में रहते हुए शान्ति-सेना का काम निष्पक्ष वृत्ति से किया जाय। हालांकि अधिक महत्त्व-पूर्ण बात तो यह है कि व्यक्ति पक्ष में रहते हुए भी पक्षातीत हो सकता है। परन्तु आज यह आवश्यक है कि हम पक्षमुक्ति की मर्यादा कायम रखें।

'शान्ति-सेना आन्दोलन है या संगठन ?' यह प्रश्न भी परिसंवाद के सामने आया। यह साफ है कि शान्ति-सेना बुनियादी तौर पर क्रान्ति-प्रेरित विचार है। इसलिए वह आन्दोलन ही है। परन्तु उसके लिए जो थोड़ा संगठन करना आवश्यक होगा, करना पड़ेगा। खयाल यह रहे कि इस संगठन के द्वारा क्रान्ति की प्रक्रिया और शान्ति-सैनिक की स्वयंप्रेरणा को धक्का न लगे।

शान्ति-सेना का मुख्य उद्देश्य है—समाज के मूल्यों का आमूल परिवर्तन। यही उसके सब कार्यक्रमों की बुनियाद है। परन्तु बिना शान्ति-स्थापना के शान्ति-सेना का काम कोई अर्थ नहीं रखता। इसलिए तात्कालिक सामाजिक खिचाव और तनाव को मिटाने के लिए शान्ति-स्थापना का जो काम करना है, वह शान्ति-सेना का ही कार्यक्रम है।

शान्ति-सेना का सबसे बड़ा प्रश्न शान्ति-सैनिक की तालीम का है। हमें उसके लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए। शिविरों तथा केन्द्रों की स्थापना करनी चाहिए, जिनमें शान्ति-सैनिक की ठोस तालीम हो सके। तालीम के लिए पाठ्यक्रम, शिक्षाक्रम आदि मुख्य नहीं है। मुख्य तो यह है कि शिविरार्थी ऐसे व्यक्तियों के संपर्क में आयें, जो सच्चे और अनुभवी शान्ति-सैनिक हों।

सर्व-सेवा-संघ का स्वरूप

तीसरे दिन दो विषयों की चर्चा हुई : सर्वोदय-आन्दोलन और सर्व-सेवा-संघ तथा आन्दोलन के विकास के लिए सर्वोदय-इकाइयों का निर्माण। सर्व-सेवा-संघ की स्थापना दस साल पहले हुई थी। भूदान-यज्ञ जब प्रारम्भ हुआ, तो संघ ने उसे अपना मुख्य काम मानकर अपना लिया। तब से संघ की वृत्ति रही है कि वह और व्यापक बने। आज समय आया है कि संघ एक ऐसा स्वरूप ले, जिसके

द्वारा लोगों को एक जन-आधारित अहिंसक आन्दोलन का स्वरूप सामने दीख सके। संघ के तन्त्रमुक्ति के निर्णय के संदर्भ में संगठन आवश्यक है या नहीं? अगर संगठन हो, तो कैसा हो? वह ऊपर से न बनकर नीचे से बढ़े। उसकी इकाई क्या हो? ग्राम इकाई, नगर या मुहल्ला इकाई और प्रान्तीय इकाइयों का निर्माण। केन्द्रीय संगठन सर्व-सेवा-संघ हो, जो विचार-प्रचार और मार्ग-दर्शन का काम करे। परन्तु नीचे की इकाइयाँ योजनाएँ बनाने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र हों। अहिंसा के संगठन में चुनाव का कोई स्थान नहीं है। हमारा सारा काम सर्वानुमति से होना चाहिए।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए सर्व-सेवा-संघ के मौजूदा स्वरूप को किस प्रकार बदला जाय? संघ का संसार की इस दिशा में काम करनेवाली अन्य संस्थाओं और व्यक्तियों के साथ किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित किया जाय? शान्ति और अहिंसा के क्षेत्र में शोध के काम किस तरह किये जायँ? इन प्रश्नों पर गहरा चिन्तन हुआ।

सर्वोदय-आन्दोलन की बुनियाद तभी पक्की होगी, जब कि हम गाँवों में, मुहल्लों में और शहरों में ऐसी मण्डलियों का निर्माण करें, जो अपना जीवन अहिंसक सहजीवन के आधार पर बिताने के लिए तैयार हों। इस तरह की इकाइयाँ जितनी होंगी, उतनी ही काम की गहराई बढ़ेगी। इसलिए हमें सर्वोदय-इकाइयों का निर्माण करने के काम में लगना चाहिए। इस सिलसिले में क्वेकर मित्र-मण्डल की बात आयी और इस परिसंवाद की यह राय रही कि उस परम्परा का गहरा अध्ययन करना चाहिए और उससे प्रेरणा लेनी चाहिए। इन सब बातों की पृष्ठभूमि में एक मोटा ढाँचा सर्वोदय-संगठन का और सर्वोदय-इकाइयों का तैयार किया गया, जिस पर सर्व-सेवा-संघ में और गहरा चिन्तन किया जायगा।

सर्वोदय-आन्दोलन और युवक

चौथे दिन का विषय था: सर्वोदय-आन्दोलन और युवक। आज सामाजिक कार्यों में युवक कम आते हैं और जो आते भी हैं, उन्हें किसी भी कार्यक्रम में तृप्ति नहीं मिलती। हमारे पास युवकों को इस ओर काम देने, उनका विकास करने

और उनकी शक्ति मानवीय कार्य के लिए संगठित करने का रास्ता है। इस सिलसिले में ये मुद्दे सामने आये।

विद्यार्थी और युवकों का आज का सांस्कृतिक और सामाजिक सन्दर्भ अलग है। हमें उनकी आवश्यकताओं को समझना चाहिए। उनकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना चाहिए। इसलिए जरूरी है कि हम उनके सामने सर्वोदय-समाज का भावात्मक (पॉजिटिव)स्वरूप पेश करें। हमारे कार्यक्रम ऐसे हों, जिनमें युवकों की पराक्रम (एडवेंचर) की भावना की तृप्ति हो और जिनमें अगर शरीर-श्रम हो, तो वह आनन्दमय हो। उन्हें सृजनात्मक प्रवृत्तियों के लिए मौका मिले। सच्चे ज्ञान और विज्ञान को समझने के लिए स्वाध्याय-मण्डल आदि की स्थापना हो और यह अत्यन्त आवश्यक है कि युवकों को सर्वोदय-आन्दोलन के साथ सम्पर्क होने पर सच्चे Fellowship (बन्धुत्व) और Democratic way of life (लोकतंत्रात्मक जीवन-पद्धति) का अनुभव हो।

इसके लिए सबसे कारगर योजना सर्वोदय-इकाइयों का निर्माण है। वही सर्वोदय-आन्दोलन का दर्शन देनेवाला कार्यक्रम होगा।

विद्यार्थियों के प्रश्न की एक कठिनाई आज है राजनैतिक पार्टियों के विद्यार्थियों के बीच कार्य करना। आज विद्यार्थी बड़े संभ्रम में हैं। विद्यार्थी-जीवन में राजनैतिक भेदभाव के प्रवेश के कारण अनेक मुश्किलें आ गयी हैं। इसलिए ऐसा ही विचार आया कि हमारी कोशिश हो कि देश की सब राजनैतिक पार्टियों में ऐसा समझौता हो, जिसमे वे विद्यार्थियों में कोई संगठन न करें। हाँ, वे अपना प्रचार अलबत्ता करना चाहें, तो करें; पर उनमें संगठन न करें। उन्हें इससे मुक्त रखें।

समाज की तात्कालिक समस्याएँ

उस दिन का दूसरा विषय था : सर्वोदय-कार्य की दृष्टि से समाज की तात्कालिक समस्याओं की ओर हमारा क्या रुख रहे। हम उनमें पड़ें या नहीं और अगर पड़ना है, तो कहाँ तक उन्हें हाथ में लें।

पहली बात मत-प्रदर्शन की है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर सबसे

अनुभवी साथी कार्यकर्ता अपना मत उचित समय पर प्रकट करें। सर्व-सेवा-संघ सर्व-सम्मति के आधार पर बड़े-बड़े प्रश्नों पर मत प्रकट करे। स्थानीय समस्याओं पर स्थानीय कार्यकर्ता मिलकर सर्वानुमति से मत प्रकट करें।

जो समस्याएँ अपनी पहुँच की हों और जिनमें हम आखिर तक जा सकें, उन्हें अगर शक्ति हो, तो ले सकते हैं। अधिक मौकों पर सलाह-मशविरा दें, जनता के साथ रहें, पर जिम्मेवारी जनता की हो।

इस तरह की समस्याओं का सामना करते समय यह ध्यान रखें कि जनता पर ऐसा असर न पड़े कि हम पक्षपात कर रहे हैं या हमारी स्वार्थ-सिद्धि उसके द्वारा हो रही है।

दरअसल बात हमारे चेतनत्व की है। हमारी Sensitivity की है। वह चेतना करुणाप्रेरित होती है। इसलिए अगर हममें सच्ची करुणा होगी, तो यह चेतना भी होगी। परन्तु हमें सदा अपने सामने सामाजिक क्रान्ति और सामाजिक मूल्यों के मूलतः परिवर्तन का ही ध्येय रखना है। तात्कालिक समस्याओं के हल करने के पीछे ही पड़ेंगे, तो क्रान्ति नहीं सधेगी। इसका विवेक हममें हो कि वही काम हम अपने हाथ में लें, जिससे हमारा आन्दोलन आगे बढ़े।

निर्माण-कार्य और विकास-योजनाएँ

पाँचवें दिन का विषय था : निर्माण-कार्य और विकास-योजनाओं के साथ हमारा सहयोग।

निर्माण-कार्य की दृष्टि क्रान्ति की ही है। इसलिए निर्माण-कार्य का ऐसा तरीका हो, जो बुनियादी तौर पर शैक्षणिक हो। वह केवल Development activity (विकास-कार्य) ही न रह जाय। निर्माण-कार्य का कोई निश्चित ढाँचा सारे देश के लिए नहीं हो सकता। गाँव की परिस्थिति, हमारी और स्थानीय कार्यकर्ताओं की योग्यता तथा उनकी व्यवस्था-शक्ति के हिसाब से अलग-अलग स्थानों पर निर्माण-कार्य का ढाँचा अलग-अलग होगा। निर्माण-कार्य का पहला सवाल नेतृत्व का है। हमें यह देखना है कि आखिर नेतृत्व स्थानीय हो और ऐसे लोगों के हाथ में हो, जो स्वयं काम करनेवाले ही हों। नहीं तो डर इस बात का है कि एक Manegerial (व्यवस्थापक) वर्ग का निर्माण न हो जाय!

ग्राम का संगठन ग्राम-सभा द्वारा होगा। उसमें यह आवश्यक है कि स्त्री-पुरुष, दोनों अपनी जिम्मेवारी महसूस करें और ग्राम-सभा में समाज हिस्सा ले। कार्यकर्ता का सबसे मुख्य प्रश्न है। अगर कार्यकर्ता बाहर से आयेंगे, तो फिर वही भेद की बात खड़ी हो जाती है। इसलिए वहीं के कार्यकर्ता तैयार हों और और बाहर से कम-से-कम आयें। कार्यकर्ता की दृष्टि शिक्षा की हो, जिससे कि सर्वसामान्य नागरिक की तालीम का काम हो सके। इसके लिए अल्पकालीन या लम्बे शिविर भी रख सकते हैं। शिविर का काम निर्माण के प्रत्यक्ष काम के साथ जुड़ा हुआ है। शिविर में हिस्सा लेनेवालों को लिखना-पढ़ना अनिवार्य ही हो, ऐसा नियम नहीं रखना चाहिए; क्योंकि अनेक बिना लिखे-पढ़े लोग गाँवों की समस्याओं को अधिक समझनेवाले होते हैं।

अन्य विकास-कार्यों के साथ सहयोग की दृष्टि से हमें यह समझ लेना चाहिए कि कल्याणकारी राज्य में हर जगह इस तरह के कार्य होते रहते हैं। हमें अपने विचारों और तरीकों का विकास करने के लिए सहयोग करना चाहिए। जहाँ ऐसा लगे कि क्रांति के काम में हम विकास कर रहे हैं, वहाँ साथ काम करना चाहिए और जहाँ भी हो, वहाँ सुझाव आदि देने चाहिए।

हमें अभी बड़े पैमाने पर निर्माण के काम अपने हाथ में न लेकर देश में बीस-तीस स्थानों पर अपने ढंग से काम करना चाहिए। दूसरे कार्यों के साथ सहयोग देना चाहिए।

ग्राम-निर्माण के काम की जान बाँटकर खाने की वृत्ति में है। जितना बाँट-कर खाने की वृत्ति का विकास होगा, उतनी ही गाँव की सम्पत्ति बढ़ेगी। कार्य-कर्ताओं का यह हार्दिक विश्वास होना चाहिए कि सहकारिता द्वारा गाँव की खेती और अन्य कार्यों का विकास हो सकता है।

हमारे प्रशिक्षण-केन्द्रों में इस तरह का तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए कि सामान्य भाव से विकास और ग्रामदानी गाँव में विकास का क्या अन्तर होता है।

निर्माण-कार्य में सबसे पहले भूमि-वितरण होना चाहिए। वह भी भूमि के गुण की दृष्टि से। ग्राम-सभा की स्थापना भी प्राथमिक आवश्यकता है।

श्री जयप्रकाशजी ने अपने समारोप भाषण में इन सब प्रश्नों पर प्रकाश

डाला और कहा कि सर्वोदय-इकाइयों का निर्माण करने की ओर हमें अधिक ध्यान देना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति का विकास ही सर्वोदय-समाज का प्राण है।

परिशिष्ट : २

सर्वोदय-प्रदर्शनी

[इस साल भी हर साल की भाँति सर्वोदय-सम्मेलन के अवसर पर सर्वोदय-प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। श्री अनिलसेन गुप्ता के निर्देशन में अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ, वाराणसी के कला-विभाग के १०-१५ कलाकारों और कार्यकर्ताओं की शिल्प-साधना का इसमें पग-पग पर परिचय मिलता था। उन्होंने राष्ट्रपिता बापू की कल्पना के ग्राम-स्वराज्य से लेकर विनोबाजी के आदर्श ग्राम तक के विचार को ऐसा साकार रूप दिया था कि कोई भी दर्शक मुग्ध हुए विना न रहता था। फूस, सिरकी, सरकंडा, ताड़, खजूर, बाँस और चटाइयों आदि के सहारे यह सारा भव्य प्रदर्शन खड़ा किया गया था। उसमें भूदान, ग्रामदान, सम्पत्तिदान, श्रमदान, सर्वोदय-पात्र, शांति-सेना आदि सभी प्रमुख विषयों का अत्यन्त ही आकर्षक चित्रण था।

प्रदर्शनी-कक्षों में ५०० छोटे-बड़े घरों पर रंगीन चित्रकारी, मद्रासी चटाइयों पर ग्राम्य जीवन के १५० चित्र, बाँस की १५० डलियाओं पर जन-जीवन की झाँकी, विनोबा-पद-यात्रा के ५० चित्र, भूदान से ग्रामदान तक के ५० चार्ट तथा भगवान् विष्णु से लेकर विनोबा तक की दान-दक्षिणा प्रधान भारतीय संस्कृति को अभिव्यंजित करनेवाले १०० पोस्टर थे। इनके अतिरिक्त प्रदर्शनी में 'ग्रामराज क्यों ?', 'ग्रामराज्य कैसे ?', 'गांधी जीवन-दर्शन' आदि मंडपों में सारे रचनात्मक कार्यों का पूरा इतिहास प्रदर्शित किया गया था। वहाँ आदर्श-घर, कृषि, गोपालन, सफाई, खाद, खादी, ग्रामोद्योगों की विभिन्न प्रक्रियाओं में निर्माण के नमूने भी दिखाये गये थे।

१८ फरवरी '५९ की शाम को छह बजे **'स्वागत किस विधि करें**
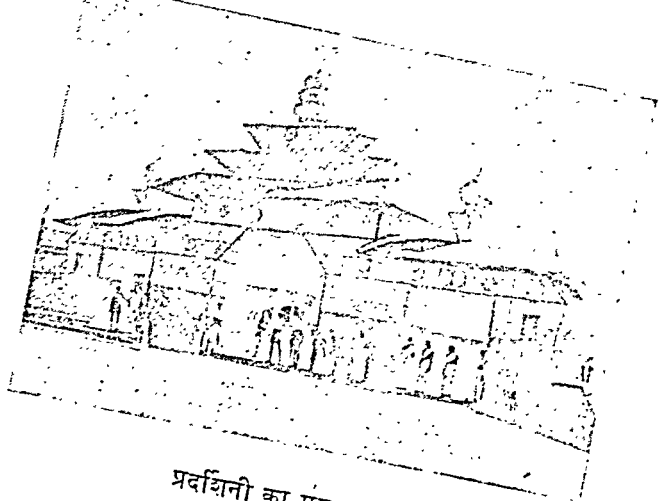
प्रदर्शिनी का मुख्य द्वार
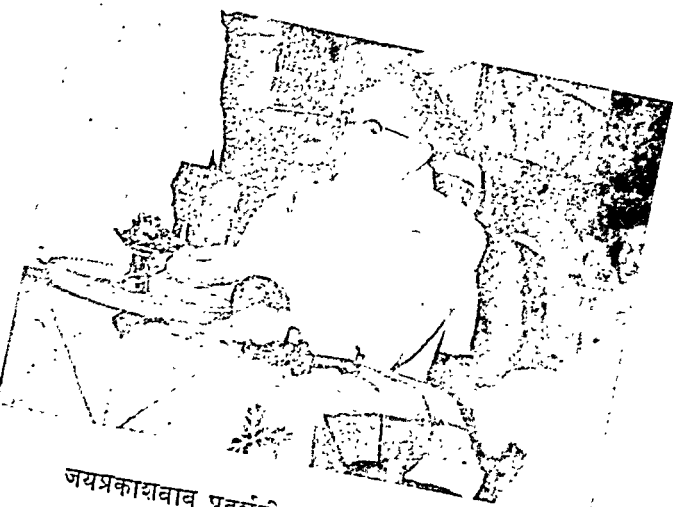
जयप्रकाशबाबू प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए
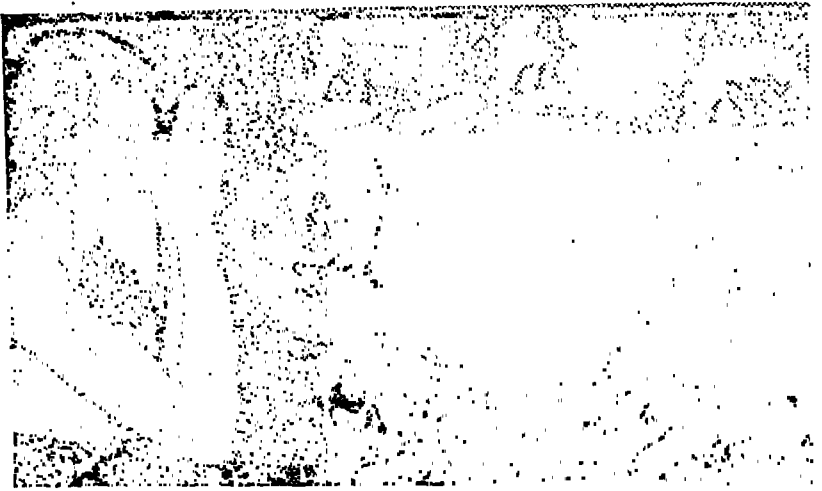
ग्राम स्वराज्य की दिशा में
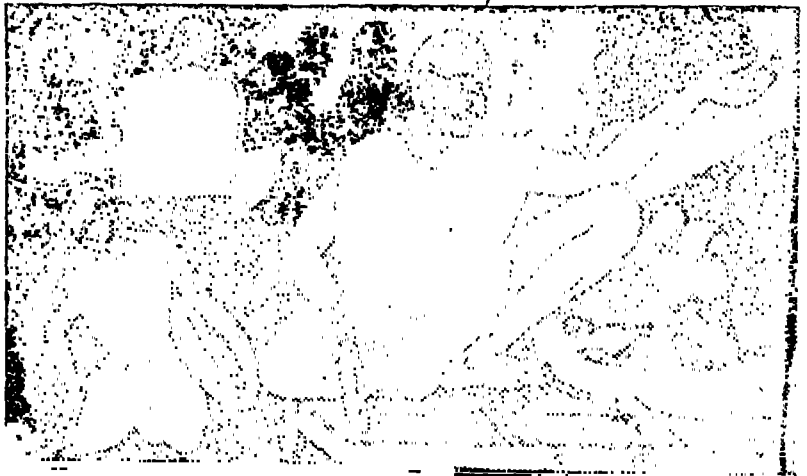
तुम्हारा……' इस स्वागत-गान से प्रदर्शनी का उद्घाटन-समारोह आरंभ हुआ। समारोह की अध्यक्षता श्री गोकुलभाई भट्ट ने की। श्री छीतामलजी गोयल ने प्रदर्शनी का परिचय दिया। राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री मोहनलाल सुखाडिया ने आभार प्रदर्शित किया। श्री जयप्रकाश नारायण ने एक मंगलदीप जलाकर प्रदर्शनी का उद्घाटन किया।]

गाँवों के पुर्ननिर्माण का प्रश्न

[जयप्रकाश नारायण]

किसी भी देश के इतिहास में ऐसा मौका सदियों के बाद आया करता है, जब कि उस समय के लोगों के सामने अपने भविष्य के लिए ऐसे महत्त्वपूर्ण निर्णय करने होते हैं, जो आज आपको और भारत की जनता को करने हैं। इस समय आप जो फैसला करेंगे, उस पर से सैकड़ों वर्ष आगे का इतिहास बननेवाला है। थोड़ी देर के बाद आप सब लोग अन्दर लगी प्रदर्शनी देखेंगे। वहाँ आप देखेंगे कि किस तरह से गाँवों के ऊपर सारा जोर दिया गया है। गाँवों का जीवन, गाँवों के उद्योग, गाँवों की रचना और ग्राम-स्वराज्य—यह सब चित्रों के द्वारा दिखाया गया है।

अपने देश में एक और प्रदर्शनी लगी हुई है और वह स्थायी रूप से लगी हुई है। उसका विकास चल रहा है। दुनियाभर से राष्ट्रों के बड़े-बड़े नेता, बड़े-बड़े वैज्ञानिक और अन्य लोग भारत देखने आते हैं। उन्हें भाखरा नांगल, भिलाई आदि बड़े-बड़े कारखाने दिखाये जाते हैं और उनका दिग्दर्शन कराया जाता है। वह भी एक प्रदर्शन है। अब इन दोनों में कहीं मेल आता है या नहीं ? दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं, जो आज के जमाने में गाँवों के उद्योगों की चर्चा करते हैं। सोचने की बात है कि यह कुछ सनक है गांधी या विनोबा की या क्या बात है ? आखिर हमारे सामने अमेरिका और रूस दुनिया के सबसे महान् राष्ट्र हैं। ये देश चन्द्रलोक के भ्रमण करने की तैयारी करनेवाले हैं। उसका स्वप्न देखनेवाले ये देश हैं। हम यहाँ घास-फूस की प्रदर्शनी रख लेते हैं; और घास-फूस की जिन्दगी बितानेवाले गाँवों की चर्चा करते हैं। आप लोगों में से गाँवों से

आये हुए बहुत कम लोग हैं, ज्यादातर लोग शहरी ही हैं। शायद गाँव आज तो आपको अच्छा न लगेगा। न वहाँ शहरों जैसा समाज है, न मनोरंजन के साधन हैं, न बच्चों को पढ़ाने के कोई साधन हैं और न रहने के लिए महल ही हैं।

आज देश का हर नेता, यहाँ तक कि पंडित नेहरू भी यह कहते हैं कि यह विज्ञान का जमाना है। अगर हम सही रास्ता नहीं अपनायेंगे, औद्योगीकरण नहीं स्वीकार करेंगे, तो हम पिछड़ जायँगे। गरीब भारत यों ही पिछड़ा देश है, फिर तो और ज्यादा पिछड़ जायगा। बात तो सही है। कुछ-न-कुछ निश्चय तो करना ही होगा। सवाल यह है कि ये जो दो रास्ते दिखाई पड़ते हैं—एक गांधी और विनोबा का दूसरा रूस और अमेरिका का—इन दोनों में कोई मेल बैठेगा, समन्वय होगा क्या ?

आज दुनिया के करीब-करीब हर मुल्क में नगरीकरण (Urbanization) की धारा बह रही है। देहात नगरों में बस रहे हैं। भारत में शहरों की आबादी हर साल पैंतीस लाख बढ़ जाती है। जिस अनुपात में देहात की आबादी बढ़ रही है, उससे ज्यादा शहरों की आबादी बढ़ रही है। शहरों में लोग रहते हैं, लेकिन वहाँ सफाई का, रहने का, खाने-पीने का, कपड़े आदि का इंतजाम नहीं। कोई टूटे-फूटे कनस्तरों की चद्दरों का घर बनाकर रहते हैं। किसी तरह से गुजारा करते हैं। फिर भी शहरों में लोग बढ़ रहे हैं।

मैंने भारत के कई विद्वानों से भारत के गाँवों के संबंध में बातें कीं। उन्होंने कहा कि गाँवों के पुनर्जीवन की बातें आप बेकार करते हैं। गाँव नहीं रहनेवाले हैं, गाँव खतम हो जायँगे। यह औद्योगीकरण का जमाना है। गाँवों के लोगों की जरूरतें बढ़ेंगी, गाँवों के लोगों के लिए भी रेडियो चाहिए। सांस्कृतिक विकास के लिए उसका भी उपयोग चाहिए। जब तक ये गाँव बने रहेंगे, तब तक उनका विकास नहीं होगा।

अभी मैं मद्रास गया था। वहाँ कुछ विद्वानों ने एक गोष्ठी रखी थी। उसमें से एक रिटायर्ड आई० सी० एस० ऑफिसर थे, उन्हें कृषि की अच्छी जानकारी थी। उनका कहना है कि Urbanization (नगरीकरण) सभ्यता की निशानी है और जिस हद तक भारत का नगरीकरण होगा, उस हद तक देश की

न्नति होगी। लेकिन जिस तरह से भारत की जनसंख्या बढ़ रही है, उससे यह हीं कहा जा सकता कि सारी जनता शहरों में बस सकेगी। तो गाँव तो जिन्दा हने ही वाले हैं, इसलिए उनकी रक्षा करनी है। गाँवों की सेवा करनी चाहिए, ेकिन यह मानकर कि गाँव हट जायँगे, इसलिए हमें यह करना है। एक मजबूरी ं कारण उन्हें जिन्दा रखना है, गाँवों के पास कोई सभ्यता है, संस्कृति है— सलिए नहीं। सिर्फ इसलिए कि गाँव हट जायँगे, अतः उनका विकास होना ाहिए। इसलिए सामुदायिक विकास-योजनाएँ आदि चल रही हैं।

तीसरे हम लोग हैं, जो यह नहीं चाहते हैं कि भारत में आज जो ५ लाख ६ हजार गाँव हैं, वे वैसे के वैसे रहें। उनका आमूल परिवर्तन करना चाहिए सा हम लोग कहते हैं। गाँव एक इकाई है, जिसके अन्दर कुछ मूल्य निहित हैं, जनकी रक्षा और विकास मानव के विकास के लिए आवश्यक है। यह ठीक है कि यह विज्ञान, यंत्रों का और औद्योगीकरण का जमाना है। हम विज्ञान, यंत्र तथा औद्योगीकरण का हृदय से स्वागत करते हैं, लेकिन उस पर विचारपूर्वक सोचना भी चाहते हैं। विज्ञान अथवा यंत्र मनुष्य का स्वामी या भाग्य-विधाता बने, ऐसा हम नहीं चाहते हैं। हम ऐसा समाज चाहते हैं, जिसमें मनुष्य का हाथ ऊपर हो, यंत्र और उद्योग उसके दास हों। दुनिया के बहुत से लोग ऐसा कहते हैं, लेकिन आज इस यंत्रीकरण की एक बहुत बड़ी धारा बह रही है और उसमें हमें बहना है। हम उस धारा में एक सूखी लकड़ी के टुकड़े की तरह हैं, जो बहता है। हमें बताया जा रहा है कि हमें अपने को उसके साथ Adjust (संतुलन) करना होगा। यह बेमानी बात है। मनुष्य ने यंत्र, विज्ञान और उद्योग को पैदा किया है, तो किस बात के लिए ? उस उद्योग की चक्की में पिसने के लिए तो उसने ऐसा नहीं किया है। आखिर मनुष्य का एक जीवन है, उसका एक आदर्श है, उसके मूल्य हैं, कुछ तथ्य हैं, सुख है, दुःख है—उस पर से वह तय करता है। मुझे युरोप में पेरिस के पास मोटर का एक कारखाना दिखाया गया। मुझे याद नहीं है कि एक मिनट में वहाँ से मोटर के कितने पुर्जे बनकर बाहर निकलते थे। मैंने देखा कि मजदूर कारीगर खड़े हैं और उनके सामने से मोटर के हिस्से गुजर रहे हैं—एक रफ्तार से। कुछ देर बैठकर आप देखेंगे, तो लगेगा कि ये लोग सब यंत्र के ही बने हुए हैं। अब कोई यंत्र मनुष्य को

यंत्र बना दे, तो ऐसे यंत्र का क्या उपयोग है ? उत्पादन आवश्यक है, कार्य-कुशलता भी आवश्यक है। लेकिन उसकी वेदी पर हम इन्सान का वलिदान कर दें, तो उसका फल बुरा होगा। इन कारखानों में काम करनेवाले लोग दिन-भर मशीन की तरह ही काम करते हैं, फिर मनोरंजन के लिए अतृप्त होकर दूसरी जगहों में दौड़ते हैं। यह प्रश्न सारी पाश्चात्य सभ्यता के सामने है।

आज दुनिया में कहीं भी आप चले जायँ, आपको विचारकों और आम लोगों में इस बात की चर्चा मिलेगी कि आज जिस तरह का समाज बनता जा रहा है, उसमें अगर परस्पर सहकार और सहयोग नहीं होता है, तो सारा मानव-समाज डूब जानेवाला है। संघर्ष का युग बीत गया, अब सहकार का युग आया है। आज रूस और अमेरिका भी संघर्ष नहीं, परस्पर सहकार की बात कर रहे हैं। सहकार आज मानवीय मूल्यों में सबसे बड़ा मूल्य बन गया है। मैंने सहयोग की यह बात इसलिए की है कि यह जो आज की दुनिया का सबसे बड़ा सामाजिक मूल्य माना जायगा, वह मूल्य आज किस तरह के समाज में अधिक-से-अधिक जीवन में प्रतिष्ठित हो सकता है। किस तरह की समाज-रचना में सहकार स्वाभाविक रीति से चल सकता है। अपने पड़ोसियों के साथ सहकार का मौका मिल सकता है। इस तरह से सहकार का कार्य जीवित हो सकता है। एक अमूर्त सहकार (Abstract Co-operation) हो सकता है। जैसे कि दुनिया के साथ भारत का सहकार है और एक अपने पड़ोसी के साथ। तत्त्ववेत्ताओं और आदर्श-वालों ने यह बात कही है कि सगुण उपासना सरल है और निर्गुण उपासना कठिन है। उसी तरह सगुण सहकार आसान है और निर्गुण सहकार कठिन है। अगर बचपन से सहकार सीखने को नहीं मिला, ऐसी संस्थाएँ नहीं बनीं कि जिनमें यह देखने को मिले कि कैसे सहकार किया जाता है, तो वह सहकार निर्गुण ही होगा। सहकार के लिए आवश्यक है कि मनुष्य के जीवन की इकाइयाँ ऐसी हों, ताकि उसमें सहकार हो सकता हो। अजमेर की आबादी सवा दो लाख है। अब सवा दो लाख आबादी के नगर में सहकार और एक-दूसरे के सुख-दुःख में भाग लेने का पाठ लोग कैसे पढ़ेंगे ? जो संस्थाएँ हैं, उनमें व्यक्तिगत सम्बन्ध कम आता है, Impersonality आती है। अब उन सम्बन्धों का पालन करना कठिन हो जाता है। जीवन के जो मूल्य आज आवश्यक हैं, उनको

लेकर हम विचार करें और उनको कायम रखने की बात सोचें, तो हम इस निश्चय पर पहुँचेंगे कि मनुष्य के जीवन की इकाई छोटी होनी चाहिए। वह इतनी छोटी न हो कि समाज न बने और इतनी बड़ी भी न हो कि एक-दूसरे को पहचान न सकें, एक-दूसरे के जीवन के सुख-दुःख में भाग लेने का मौका न मिले।

समाज इतना पेचीदा हो गया है कि मनुष्य अदना बनकर निःसहाय हो गया है। आज पाश्चात्य देशों में समाज व्यक्ति के लिए नहीं, व्यक्ति समाज के लिए होता चला जा रहा है। जीवन की सफलता इसीमें है कि मनुष्य का जीवन-विकास होता रहे। वही समाज-रचना सबसे ज्यादा ठीक है, जिसमें मनुष्य का विकास हो। मान लें कि एक जंगल है। उसमें रहनेवाले एक-दूसरे को जानते नहीं। वे एक-दूसरे को खा जाने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार की व्यवस्था और रचना वहाँ कायम है। लेकिन मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सबसे पहले समाज उसका परिवार है। यद्यपि उसे कोई समाज कहता नहीं है, उसे परिवार ही कहना चाहिए। आज जरूरत इस बात की है कि समाज का विकास हो; प्रेम का समाज बने। आज भिन्न-भिन्न वादों से संघर्ष बढ़े हैं। सिद्धांतों में संघर्ष भले हो, लेकिन जीवन के कुछ मूल्य हैं, जिनमें आज संघर्ष नहीं है। जैसे, सहकार या सत्य। न मुसलमान उससे इनकार करेगा, न हिन्दू, न ईसाई और न जैन। आज अगर किसी एक चीज पर, किसी एक विषय पर एक राय हो सकती है, तो कुछ ऐसे सद्‌मूल्यों पर ही कि जिनकी रचना से मानव-जीवन का उत्थान होगा, विकास होगा। उन सारे मूल्यों के विकास के लिए, उनकी पुष्टि के लिए यह आवश्यक है कि इकाई छोटी होनी चाहिए।

आज के हमारे जो गाँव हैं, वे उन भावी इकाइयों के लिए बनी-बनायी बुनियाद हैं। वहाँ से हम आगे बढ़ सकते हैं। आज वे जैसे हैं, वैसे ही उन्हें कायम रखें, तो आज कुछ शहर हैं, कुछ गाँव हैं। शहरों में एक ढंग का जीवन है और गाँवों में दूसरे ढंग का। गाँव और शहर का संघर्ष है। आज शहर गाँव का शोषण भी कर रहा है। सम्भव है कि कहीं ऐसी रचना बन जाय कि गाँव शहरों का शोषण करने लग जायँ। कम-से-कम कृषि में काम करनेवाले लोग अन्न की कीमत बढ़ाकर ऐसा तय कर सकते हैं और शोषण कर सकते हैं। हो सकता

है कि शहरवाले उससे बढ़े हुए दामों पर लोहा गाँववालों को देने लगें। इस तरह एक संघर्ष होगा। हमारी ऐसी कल्पना है कि न आज के शहर रहें, न आज के गाँव रहें। अपवाद के रूप में कुछ भले ही रहें। जैसे कोई युनिवर्सिटी हो, स्टील पैदा करने का शहर हो या काशी जैसे सांस्कृतिक केन्द्र हों। लेकिन आम तौर पर न गाँव रहे, न शहर रहे। सवाल है कि शुरू कहाँ से करें। कलकत्ते या अजमेर में तो शुरू नहीं कर सकते हैं। इसके लिए गाँव ही उपयुक्त हो सकते हैं। गाँव ऐसी बुनियाद हैं, जिनके ऊपर हमें नया समाज खड़ा करना है। वह समाज संस्कृति और विद्या का केन्द्र होगा। मनुष्य वहाँ एक मानवीय जीवन व्यतीत कर सकेगा। फिर जो छोटे-छोटे समुदाय होंगे, उनका परस्पर सहयोग होगा। समुदायों का सहकार होगा। फिर उन समुदायों की जमातें बनेंगी, फिर वह राष्ट्र के रूप में आयेगा। इस तरह देखेंगे, तो लगेगा कि गांधी-विचारवाले ग्राम-स्वराज्य की जो बात करते हैं, वह कोई पागलपन नहीं है। लेकिन उनमें कुछ ऐसे लोग भी हो सकते हैं, जो ऐसी बात कह देते हों कि जो शहरवालों को चोट पहुँचाती हो और गाँव का लाभ भी उससे न होता हो।

विद्या से, उद्योग से, यंत्र से हमारी कोई दुश्मनी नहीं है। हम चाहते हैं कि यंत्र और उद्योग के विकास के साथ-साथ मनुष्य का भी विकास हो। विनोबाजी से पंडितजी ने भी कई बार कहा कि आज विज्ञान का जो विकास हो रहा है, उससे कोई हर्ज नहीं है। लेकिन २०-२५ वर्ष के लिए वैज्ञानिक लोग यह तय कर लें कि अब यंत्रों का विकास नहीं करना है, मानव का विकास करना है। पंडित नेहरू ने सर जगदीशचंद्र वसु के शताब्दि-समारोह में कहा कि विज्ञान के साथ अध्यात्म का मेल होना चाहिए, पर वह नहीं हो रहा है। दिल्ली में योजना-आयोग में भी इस पर गम्भीरता से विचार नहीं हो रहा है। यह गांधी, विनोबा और ऋषियों का देश है। लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं है कि हम बड़ा पाप कर रहे हैं। हम अपने को बड़ा ज्ञानी समझते हैं, लेकिन हम अँधेरे में सोये हुए हैं। हमारे सामने कोई स्पष्ट दिशा नहीं है। विदेश से जब मैं लौटकर आया, तो मेरा विचार और भी अधिक पुष्ट हुआ और मुझे लगा कि हमारे देश में Agro Industrial Communities (कृषि-उद्योग-समुदाय) बनानी हैं। छोटे-छोटे आठ-दस हजार के केन्द्र चलें। वे संस्कृति के केन्द्र बनें।

आज के वैज्ञानिक शान्तिपूर्ण स्थान चाहते हैं, पर वे आज के गाँवों में तो बैठ नहीं सकते, किसी उपनगर में अवश्य बैठ सकते हैं। जब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में ऐसी कुछ बातें आयीं कि हमारे देश की बुनियाद ऐग्रो-इण्डस्ट्रियल हो, तो मुझे बड़ी खुशी हुई; पर प्रथम पंचवर्षीय योजना में तो उसकी बात ही नहीं थी। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी वह चीज नहीं आ रही है। खादी कमीशन को सरकार कुछ पैसा देती है और उससे कुछ काम हो रहा है, लेकिन वह मरते रोगी को ऑक्सीजन देने जैसा ही है। नये समाज की रचना के लिए कोई नये मूल्य की चीज नहीं पैदा हो रही है। उद्योगों का विकास होना चाहिए। देश के बड़े-से-बड़े दिमागवाले लोगों को, यंत्रों को समझनेवाले लोगों को आगे आकर बताना चाहिए कि यंत्र मनुष्य के दास कैसे होंगे। अगर भारत में, पंडित नेहरू के देश में यह नहीं सोचा जायगा, तो क्या क्रुश्चेव व आइसनहावर के देश में सोचा जायगा?

इस प्रदर्शनी में कलाकारों ने कुछ बताने, समझाने के लिए कुछ चित्र यहाँ रखे हैं। वे बहुत दीन हैं, उनके पास धन नहीं, सम्पदा नहीं। अपनी कला और भाव को उन्होंने चित्रों द्वारा प्रदर्शनी में पेश किया है। इस पर आप विचार करें। जनता की एक आवाज उठे, तो सुखाड़ियाजी और उपाध्यायजी के भी भी हाथ कुछ मजबूत हों, नहीं तो विदेश से वापस आकर लोग कहेंगे कि लोग चन्द्रलोक में जाने की तैयारी कर रहे हैं और तुम कहाँ जा रहे हो? भारत की एक परम्परा है कि कोई भी चीज यहाँ रूढ़ि बन जाती है। पर हमें सोच-विचार करना चाहिए। गांधी ने, विनोबा ने यह कभी नहीं कहा कि बुद्धि से काम नहीं लेना चाहिए। लेकिन कहाँ कैसे लेना चाहिए, यह देखना चाहिए। इसमें कोई संदेह नहीं कि बहुत बड़े कारखाने खड़े करेंगे, उनमें सवा-डेढ़ करोड़ की पूँजी लगायेंगे, तो कुछ बेकार लोगों को काम दे सकते हैं; लेकिन ऐसे कारखाने कितने हजार खुलेंगे और उनके लिए पूँजी कहाँ से आयेगी? तो यह स्थिति है। रूस, अमेरिका और यूरोप के सामने भी आज यह सवाल है कि समाज की रचना कैसी हो। **समाज से हिंसा, शोषण, संग्रह और शासन की वृत्ति निकल जाय, तो हम जैसा सोचते हैं, वैसा हो जायगा।** फिर भी महत्त्व इस बात का है कि हम समाज की रचना किस प्रकार की करें। अगर इतनी बात आप

समझ लें, तो इतनी बड़ी प्रदर्शनी खड़ी करना, हमारा आना और भाषण करना तथा आप लोगों का कष्ट करना ठीक है, नहीं तो मनोरंजन के लिए एक और तमाशा हो जायगा।

प्रदर्शनी की उपादेयता

[विनोबा]

प्रदर्शनी के कार्यकर्ताओं द्वारा किया गया यह प्रदर्शन हमें बहुत अच्छा लगा है। जैसे किसी पुस्तक में अनुक्रमणिका होती है और उसीके माध्यम से एक-एक विषय को देखना आसान होता है, वैसे ही ग्राम-रचना की आकांक्षा रखने-वाले लोगों के लिए यह प्रदर्शनी एक अनु-क्रमणिका के तौर पर ही होनी चाहिए। ग्राम कैसे बनाया जाय, यह प्रदर्शनी को देखते ही मालूम पड़ना चाहिए। दुनिया में जो कुछ है, उसका पूरा-का-पूरा प्रदर्शन किया जाय, तब तो प्रदर्शनी बहुत ही लम्बी-चौड़ी हो जायगी और उससे केवल आश्चर्य का भास होता रहेगा। इसलिए लोग अच्छी तरह से कुछ सीख सकें, तभी प्रदर्शनी लाभदायक सिद्ध होती है। वैसी योजना आपने यहाँ की है।

परिशिष्ट : ३

सफाई-शिविर

[१८ फरवरी '५९ को अखिल भारतीय सफाई-शिविर का उद्‌घाटन हुआ। यह शिविर १९ से २५ फरवरी तक, सम्मेलन शुरू होने के दो दिन पहले तक, चला। इस शिविर में सफाई के काम में रुचि रखनेवाले देशभर के कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। शिविरार्थियों की संख्या ७० थी, जिनमें राजस्थान के ३२, उत्तर प्रदेश के २५, बम्बई के ४, तमिलनाड के २, मैसूर के २, बिहार के १, पंजाब के १, केरल के १ और आंध्र के २ कार्यकर्ता थे। इनमें ५ बहनें थीं और भारत को अपना घर माननेवाले जर्मनी के एक भाई भी थे। सम्मेलन के अवसर पर सफाई का प्रवन्ध रखने का काम भी ये शिविरार्थी करते हैं। सम्मेलन के बाद में ये लोग प्राप्त-शिक्षण का उपयोग अपने-अपने क्षेत्र में करते हैं। सफाई-शिविर में विभिन्न विषयों पर सर्वश्री कृष्णदास गांधी, धीरेन्द्र मजूमदार, रामचन्द्र गोरा, सिद्धराज ढड्ढा, शंकरराव देव, वल्लभस्वामी, कृष्णराज मेहता आदि विचारकों ने शिविरार्थियों का मार्ग-दर्शन किया। प्रातः दस बजे प्रार्थना से सफाई-शिविर के उद्‌घाटन का कार्यक्रम शुरू हुआ। प्रास्ताविक रूप में शिविर के निर्देशक श्री अप्पासाहब पटवर्धन ने शिविरार्थियों को सफाई का महत्त्व बताया। शिविर-संयोजक श्री कृष्णदास शाह ने शिविर के कार्यक्रम का परिचय दिया और उसके बाद अ० भा० सर्व-सेवा-संघ के अध्यक्ष श्री धीरेन्द्र भाई ने शिविर का उद्‌घाटन किया।]

नयी तालीम की बुनियाद—सफाई

[धीरेन्द्र मजूमदार]

आप सब भाई-बहन शिविर का प्रशिक्षण पाने के लिए यहाँ आये हैं। यहाँ वे ही लोग आये हैं, जिन्हें सफाई में विशेष दिलचस्पी है। अप्पासाहब ने सही कहा है कि प्रशिक्षण या शिक्षण तो बाद को शुरू होता है, पहले दीक्षा की प्रक्रिया शुरू होती है, जो हर शिक्षण की परिपाटी है। आपकी दीक्षा अप्पा-

साहब जैसे साधक के हाथ से हो रही है। आप दीक्षा लें और फिर समझें कि आखिर किस चीज का शिक्षण आपको लेना है।

सफाई के कई माने होते हैं। ऐसा भी लोग सोचते हैं कि फलाने की 'सफाई' की। 'सफाई' कर दी जाय, याने खतम कर दिया जाय ! इसलिए अब तक सफाई के माने ही खतम करना था। कहीं गंदगी है, कचरा है, कूड़ा-करकट है, उसे खतम करना ही सफाई का मतलब रहा है। लेकिन हमें समझ लेना होगा कि सफाई का क्या मतलब है। अंग्रेजी में एक कहावत है: 'Anything out of place is dirt.' (कोई वस्तु अपने स्थान पर न हो, तो वही कचरा है।) सफाई का मतलब है, जो चीज स्थानच्युत हो जाय, उसे स्थान पर रख देना। कूड़ा-कचरा जो स्थानच्युत हो गया है, उसे एक जगह कर देना। मनुष्य भी स्थानच्युत हो जाता है, तो कचरा ही हो जाता है और उसका भी इन्तजाम किया जाता है। कभी कोई चीज उपयोगिता की थी, लेकिन आज वह नहीं रही, तो लोग उसे कचरे की पेटी में फेंक देते हैं। सफाई का मतलब यह होगा कि जो चीज स्थानच्युत हो गयी है, उसे किसी उपयुक्त स्थान पर रख देना। कचरे का स्थानान्तर नहीं, रूपान्तर करना है। मकान में झाड़ू दी, कमरे में झाड़ू दी और उस कूड़े को ले जाकर मकान के पीछे गिरा दिया। यह तो ऐसा ही हुआ कि डॉक्टर ने रोगी को एक कमरे से दूसरे कमरे में बदल दिया। लेकिन यह सफाई नहीं है। जो चीज आज समाज में उपयोग की हालत में नहीं है, उसे उपयोग के स्वरूप में लाना ही सफाई है। इसलिए मैं हमेशा कहा करता हूँ कि सफाई एक उद्योग है। ढेंकी, वस्त्र और कृषि उद्योग हैं, वैसे ही सफाई भी एक उद्योग है। जैसे और उद्योगों की विभिन्न प्रक्रियाओं के विज्ञान और शास्त्र की खोज होती है, वैसे ही सफाई-शास्त्र का भी निर्माण होना चाहिए कि उससे कितनी पैदावार बढ़ेगी, श्रम कितना लगेगा और खाद कितनी तैयार होगी। अर्थात् कूड़ा-कचरा, जो Raw material (कच्चा माल) है, उस माल में से क्या-क्या निकलेगा। उसका वैज्ञानिक तरीका निकालना होगा। चरखे का उद्योग हाथ में लिया गया। उसका बड़ा प्रयोग हुआ। श्री मगनलाल भाई ने उस पर काफी दिन तक प्रयोग किया। अब अम्बर चरखे पर श्री कृष्णदास भाई प्रयोग कर रहे हैं। कुछ और भाई भी मदद के लिए उनके साथ हैं।

उद्योग की प्रक्रिया कैसी होगी, इन सारी चीजों के प्रयोग करने होंगे। मिसाल के लिए मल-मूत्र का उदाहरण ही ले लीजिये। एक आदमी के मल-मूत्र की कीमत सालभर की १०) होती है। लेकिन मैं तो उसकी कीमत २०) मानता हूँ, क्योंकि उस खाद को हम जब हम खेत में डालते हैं, तो उससे जो पैदावार बढ़ती है, उस आमदनी को भी उसमें जोड़ना चाहिए। सारे देश की जनसंख्या करीब चालीस करोड़ होगी। ४०×२०=८०० करोड़ रुपये की सालाना आमदनी होती है। लेकिन इस उद्योग की ओर सरकार या किसी संस्था का ध्यान नहीं। मैं जानता हूँ कि इस शिविर में ऐसे लोग भी आये हैं, जो यहाँ से जाने के बाद सफाई का काम नहीं करेंगे। जिस उद्योग में कहीं से कच्चा माल खरीदने की आवश्यकता नहीं है और ८०० करोड़ रुपये पैदा होनेवाले हों, उसके लिए मनुष्य अपना जीवन उत्सर्ग न करता हो, तो यह उसका दुर्भाग्य ही है। दीक्षा लेने का मतलब है—जीवन उत्सर्ग करना।

मैंने संस्थाएँ देखी हैं और अपने हाथ से संस्थाएँ बनायी भी हैं। कई संस्थाओं में कितने ही लोग बुद्धिमान् हैं, कुछ कर सकते हैं; लेकिन मैंने नहीं देखा कि उन्होंने सफाई का काम अपने हाथ में लिया हो। जिन्होंने सफाई का काम लिया है, उनका दूसरे लोग मजाक ही उड़ाते हैं। इसलिए सफाई का शास्त्र तैयार करना चाहिए। प्रशिक्षण की बात हर सर्वोदय-सम्मेलन के साथ रही है। एक पुराने कार्यकर्ता के ही नाते नहीं, मैंने काफी घुस करके देखा है कि यहाँ कोई व्यक्ति सफाई को अपने जीवन का काम समझकर अपनाने को तैयार नहीं है। जो भाई और बहन यहाँ आये हैं, उन्हें यह तय कर लेना चाहिए कि यह जीवन का काम है। जैसे कृषि और अन्य उद्योगों का काम कुछ लोगों ने उठा लिया है, अण्णासाहब ने बहुत पहले से ही जैसे कृषि का काम उठा लिया है, वैसे ही सफाई के काम को भी एक उद्योग के नाते हमें हाथ में उठाना होगा। सफाई के काम के बारे में मेरा एक सुझाव है कि जैसे अन्य कामों के लिए अखिल भारतीय समितियाँ बनती हैं, वैसे ही सफाई की भी एक अखिल भारतीय समिति बने। सफाई के काम में जिनकी रुचि है, उन सबसे हम छठा हिस्सा माँगते हैं। जो लोग कहते हैं कि सफाई के काम में हमारी दिलचस्पी है, वे अपना नाम दे दें।

अब समय आ गया है कि जहाँ ग्रामदान हो गये हैं, उन ग्रामों में ऐसे २०-३०

लोग तैयार हो जायँ, जिन्होंने अपना मुख्य कार्य (कैरियर) ही सफाई का मान लिया हो। उनके अखिल भारतीय स्तर पर दो-तीन सम्मेलन किये जायँ, ऐसा मेरा सुझाव है।

नयी तालीम की बुनियाद सफाई है। व्यक्ति को जिन्दा रहने के लिए जैसे अन्न है, वैसे ही नयी तालीम को जिन्दा रहने के लिए मल-मूत्र-सफाई है। गांधीजी ने एक बार कह दिया था कि जिसे मल-मूत्र की सफाई आ गयी, वह नयी तालीम सीख गया। मैंने यह अनुभव किया है कि जहाँ-जहाँ गाँवों में मैंने पहले सफाई के साथ प्रवेश किया, वहाँ हमें सफलता नहीं मिली और जहाँ अन्य उद्योगों के बाद सफाई को भी एक उद्योग के नाते घुसाया, वहाँ लोगों ने उस काम को उठा लिया है। अंग्रेजी में 'सफाई के लिए कभी 'clean' शब्द नहीं इस्तेमाल करते हैं, 'Neat and clean' इस्तेमाल करते हैं।

मुझे आशा है कि यहाँ शिक्षण के लिए जो भाई-बहन आये हैं, वे सफाई-उद्योग के तज्ञ बनकर वापस जायेंगे और कला की दृष्टि से सफाई का शास्त्र निर्माण करेंगे।

सफाई-शिविर का उद्घाटन भाषण
१८-२-'५९

सफाई : नित्य का यज्ञ

[विनोबा]

भिन्न-भिन्न काल में समाज में भिन्न-भिन्न आवश्यकता होती है। तदनुसार वाह्य यज्ञों का रूप बदलता रहता है। वृक्ष-छेदन का भी एक यज्ञ हुआ और वृक्ष बढ़ाने का भी एक यज्ञ हुआ। बीच में सूत कातने का भी यज्ञ शुरू हुआ, जो आज भी जारी है। अब यह 'भूदान-यज्ञ' निकला है। इस तरह बाह्य यज्ञस्वरूप बदलता रहता है, परंतु बाह्य यज्ञों में भी कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिनका स्वरूप कायम रहता है। स्थूल आकार कायम नहीं रहता है, परंतु वह यज्ञ कायम रहता है। ऐसे बाह्य यज्ञों में यह सफाई एक यज्ञ है।

हम किसी ऐसे काल की कल्पना नहीं कर सकते हैं, जब कि मनुष्य को यह सफाई-यज्ञ नहीं करना पड़ेगा। ऐसा कोई समय हमारे विचार में नहीं आता। यह एक नित्य यज्ञ है, हमेशा का यज्ञ है। विज्ञान जैसे-जैसे आगे बढ़ेगा और स्वच्छता के लिए ज्यों-ज्यों नये-नये साधन मिलते रहेंगे, त्यों-त्यों इस यज्ञ का बाह्याकार बदलता रहेगा। पहले जितने समय में हम जितनी सफाई कर पाते थे, उससे कम समय में हम उससे अच्छी सफाई कर सकेंगे। यह सब होगा, लेकिन यह यज्ञ कायम रहेगा। हम ऐसी कल्पना कर सकते हैं कि समाज में औषधों की जरूरत नहीं रहेगी, परंतु ऐसा समाज कल्पना में नहीं आता, जिसमें खाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तो जीवन के साथ जैसे भोजन जुड़ा हुआ है, वैसे ही सफाई भी जीवन के साथ जुड़े हुए यज्ञ की तरह रहेगी।

खुशी की बात है कि हम लोगों में अब सफाई के विषय में दिलचस्पी पैदा हुई है। यह शिक्षण का एक विषय है। गाँव-गाँव में घर-घर में, सफाई होनी चाहिए। हर हालत में, यह नित्य का यज्ञ है। इसलिए धर्मशास्त्रकारों ने स्वच्छता को परमेश्वर की भक्ति के साथ स्थान दे रखा है। उसे ईश्वर की भक्ति का एक अंग ही माना है। वह सर्वथा उचित भी है।

देश में हमारी छोटी-बड़ी लगभग ५०० संस्थाएँ होंगी। उन सब संस्थाओं में सफाई-शास्त्र का ठीक ज्ञान होना चाहिए। उन संस्थाओं में उसका अमल होना चाहिए, ताकि आसपास के क्षेत्रों के लिए वे स्वयं एक नमूना बनें। अपने इस सर्वोदय के कार्य का यह एक अनिवार्य अंग है और आज इसकी बहुत जरूरत है।

मैं मानता हूँ कि इन ५०० संस्थाओं में अगर मल-मूत्रादि का उत्तम उपयोग करने का प्रबन्ध हो जाय, तो सारे देश को हम बचा सकेंगे। एक दफा भारत-सेवक-समाज के सामने हमने यह बात रखी थी कि वे कुल तीर्थ-क्षेत्रों की शुद्धि करें। उन्होंने इसके लिए एक सप्ताह निकाला भी था। इस तरह संस्थाओं से जितना हो सके, उतना नमूना पेश करें और सफाई को नित्य यज्ञ समझें।

अभी मैंने एक किताब पढ़ी, 'Water of Life'। उस किताब का नाम 'वाटर आफ लाइफ' पढ़कर शायद ही कोई मनुष्य बता सकेगा कि उसका क्या अर्थ होगा। लेखक ने मनुष्य के मूत्र को Water of Life कहा है। वैसे

जानवर का मूत्र भी Water of Life ही है। उसका अर्थ है—जीवन से पैदा हुआ पानी। 'मूत्रोपचार' नाम की नयी पद्धति में मानव के मूत्र से मानव के बहुत-से रोग दूर हो सकते हैं। वैष्णवों को यह सब सुनकर धक्का लगेगा कि मानव का मूत्र भी क्या कोई पीने की चीज है? परंतु लेखक ने यहाँ तक लिख दिया है कि लोग लाखों रुपया खर्च करते हैं और सर्वोत्तम दवा को व्यर्थ जाने देते हैं, अपने मूत्र को पीना चाहिए। भिन्न-भिन्न रोगों के लिए उसका बहुत उपयोग होता है, उसका वर्णन अंग्रेजी पुस्तक में हैं। रावजीभाई पटेल, जो कि गांधीजी के साथ दक्षिण अफ्रिका में थे, उन्होंने गुजराती में उसका अनुवाद किया है और 'मूत्र का उपचार' ऐसा सादा नाम रखा है।

इस तरह यह विषय अब विज्ञान का हो गया है। मानव-मूत्र के सेवन से कई बीमारियाँ दूर होती हैं। मतलब यही है कि कम-से-कम मल-मूत्र से घृणा नहीं रहनी चाहिए।

सर्वोदयनगर, अजमेर
२-३-'५९

परिशिष्ट : ४

प्रान्तीय कार्यकर्ताओं से

कार्यकर्ताओं की सेना खड़ी करें

[विनोबा]

दक्षिण की चारों भाषाओं के कार्यकर्ताओं को मैंने एक साथ बुलाया है; यह एक अन्याय ही है। लेकिन मैं हिंदी में धीरे-धीरे ही बोलूंगा। बीच में संस्कृत के शब्द इस्तेमाल करूँगा, जरूरत पड़ने पर अंग्रेजी के शब्द भी। इससे आप सब आसानी से समझ सकेंगे। वास्तव में हमें यहाँ आपस में वार्तालाप करना

चाहिए था। किन्तु उसके बदले में अभी मेरे बोलने का कार्यक्रम रखा है। इसलिए फिलहाल मैं कुछ बातें आपके सामने रखूंगा।

शांति-सेना, ग्रामदान, ग्राम-स्वराज्य—इन तीनों से एक पूजा-पद्धति तैयार होती है, ऐसा कुछ लोगों को लगता है। जगन्नाथन भी कहता है कि "शान्ति सेना एक Diversion (विचलन) है। भूदान में श्रद्धा बैठी जा रही थी, तब ग्रामदान शुरू किया। ग्रामदान में Attention (ध्यान) देने लगा, तो शांति-सेना ने उस Attention (ध्यान) को Divert (दूसरी ओर मोड़ना) किया।

आपने देखा है कि महाराष्ट्र में मैं सर्वोदय-पात्र, शांति-सेना आदि के बारे में बोला करता था, फिर भी वहाँ से हमारी यात्रा के समय ३०० ग्रामदान प्राप्त हुए। वह भी एक Compact Area (सघन क्षेत्र) में। फिर गुजरात में यात्रा चली। गुजरात में हमने शांति-सेना पर खूब जोर दिया। १२५ शांति-सैनिक वहाँ बने। लेकिन वहाँ भी हमारी यात्रा के समय ६५ ग्रामदान प्राप्त हुए। राजस्थान की यात्रा में हमारे सारे व्याख्यान सर्वोदय-पात्र के बारे में थे। फिर भी इस डेढ़ महीने की यात्रा में १२० ग्रामदान मिले। मैं शांति-सेना के बारे में बोलूं या सर्वोदय-पात्र के बारे में बोलूं, मैंने ग्रामदान को कभी भी छोड़ा नहीं।

हमें Army of workers (कार्यकर्ताओं की सेना) की जरूरत है। उसके लिए लोगों की सम्मति भी चाहिए। तमिलनाड की जनसंख्या करीब ३ करोड़ है। वहाँ आज ५०-६० कार्यकर्ता काम करते हैं। याने पाँच लाख लोगों में एक कार्यकर्ता। इसका मतलब है, हमें कार्यकर्ताओं को बढ़ाना चाहिए। कार्यकर्ताओं के पीछे लोकशक्ति खड़ी हो, यह हम चाहते हैं। शांति-सैनिक या ग्रामदानवाले अलग-अलग नहीं हैं।

हमने संपत्तिदान चलाया। कुछ जोर लगाया, तो कुछ संपत्ति-दान मिले। कुछ प्रांतों में उसका उपयोग नहीं हुआ। केरल में जो कुछ काम चलता है, वह संपत्तिदान पर ही चलता है, यह मैं जानता हूँ। वहाँ भी १५-२० कार्यकर्ता हैं। ये कार्यकर्ता यदि खूब जोर लगाकर काम करें, तो वह संपत्तिदान मिलने में ज्यादा तकलीफ नहीं होगी।

सूरत शहर सर्वोदय-पात्र की एक प्रयोगशाला है। श्री. नारायण देसाई के प्रयत्न से वहाँ ९००० सर्वोदय-पात्र रखे गये हैं। काम को और सुव्यवस्थित करके कुछ और जोर लगायें, तो वह Double (दूना) हो सकता है, ऐसा विश्वास नारायण देसाई को है। उन्होंने कहा कि अगर एक शहर से इतना बल मिलता है, तो हमारा आज जो खर्च होता है, वह सब निकल जायगा। सब से बड़ी बात तो यह है कि घर-घर में प्रवेश होता है। सर्वोदय-पात्र से Diversion (विचलन) नहीं होता। ग्रामदान को भूलना नहीं है। उसे बराबर पकड़े रहना है। हमको एक Chain of ग्रामदान (ग्रामदान की शृंखला) मिले, ऐसी कोशिश करनी चाहिए। बनासकाँठा जिले (गुजरात) में ६ ग्रामदान मिले। राजस्थान में ११० ग्रामदान मिले। इसलिए हमारा प्रयत्न 'Army of workers' (कार्यकर्ता-सेना) का है।

आन्ध्र के लोग शूर-वीर हैं। आंध्र देश वीरों का देश है। वहाँ करीब ७० कार्यकर्ता हैं। कडप्पा जिले में कुछ ग्रामदान मिले हैं। केवल कडप्पा जिले में ४०० से ज्यादा गाँव हैं। अगर कडप्पा जिले में ही इन गाँवों से संपर्क रखना है, तो इससे ज्यादा कार्यकर्ताओं की जरूरत है। लेकिन आंध्र देश में अभी सिर्फ ७० के करीब कार्यकर्ता हैं।

(फिर बाबा ने श्री जगन्नाथनजी को बुलाकर अपनी शंकाएँ प्रकट करने के लिए कहा। जगन्नाथन अंग्रेजी में थोड़ी देर बोले। सर्वोदय-पात्र के कार्यक्रम से यह आंदोलन कमजोर होता जा रहा है, ऐसा आक्षेप उनका था।)

जगन्नाथन ने अपनी शंका सुन्दर रीति से रखी। इधर-उधर करके सर्वोदय-पात्र १०-२० नहीं रखने हैं। अमुक जिले में ही काम करें, ऐसा भी नहीं। सर्वोदय-पात्र को सारे देश में फैलाना है। शांति-सेना के लिए कौन-सी Process (पद्धति) हो, यह आप ही तय करें। शांति-सेना फिलहाल सारे राज्य में न फैल सके, तो कोई हर्ज नहीं। मैं आपकी शक्ति को क्षीण करना नहीं चाहता।

गुजरात के रविशंकर महाराज पाँच महीने से हमारे साथ घूमते हैं। वे कहते हैं कि गुजरात के एक नगर में सर्वोदय-पात्र रखने की कोशिश करेंगे। अहमदाबाद में ८०,००० से ज्यादा जनसंख्या है; याने १६,००० परिवार हैं। वहाँ अब ३५०० सर्वोदय-पात्र रखे हैं। जोर लगाने पर ५० फीसदी विजय पा

सकेंगे। अहमदाबाद में सर्वोदय-पात्र के सिलसिले में २० नये कार्यकर्ता भी तैयार हुए हैं। ऐसे शहरों के नमूने केरल में भी होने चाहिए। कोझीकोड में हो, पालघाट में हो, एर्नाकुलम में हो, मदुराई में हो, आपको इस तरफ अपना जोर लगाना चाहिए।

मैं आपके सामने ऐसा कार्यक्रम रख रहा हूँ, जो अशक्य है। (१) घर-घर सर्वोदय-पात्र रखना और रोज उसमें अनाज डलवाना—यह अशक्य है। (२) अनाज इकट्ठा करके उसके आधार पर कार्यकर्ताओं को खड़ा करना—यह है अशक्य नंबर दो। तंत्रमुक्ति और निधिमुक्ति के साथ कार्यकर्ताओं की देहमुक्ति हो जाय, तो यह काम गिर जायगा। इसलिए कार्यकर्ताओं की आजीविका के बारे में सोचना चाहिए। माहवार ५०) पर किसी नौकरी के लिए ५० लोगों की माँग करें, तो ५०० से ज्यादा दरखास्तें आती हैं। हमारे इस काम के लिए भी ऐसे कार्यकर्ताओं के झुंड मिलने चाहिए। ५-६ महीने काम करके एक जिले में काफी सफलता मिलने की आशा दीखती है और बाबा के २-३ महीने के कार्यक्रम से वह पूर्ण सफल होने की संभावना दीखती हो, तो आप बाबा को लिखें, बाबा वहाँ आने के लिए तैयार है।

विमला ठकार ने मुझे लिखा था कि तमिलनाड के कार्यकर्ताओं की बुरी हालत देखी नहीं जाती। वहाँ उनके लिए कोई ठीक व्यवस्था नहीं है। वहाँ सिर्फ ५०-६० कार्यकर्ता हैं। उनकी आजीविका के लिए कोई व्यवस्था न हो, तो यह बहुत अफसोस की बात है। हिंदुस्तान में मरने के बाद समाधि या स्मारक बनाने का रिवाज है। मरने तक व्यक्ति की तरफ देखते तक नहीं। मरने के बाद स्मारक बनाने के बदले मरने के पहले मनुष्य की आजीविका के बारे में सोच-विचारकर कुछ इन्तजाम करना चाहिए। आप अगर ग्रामदानी गाँवों में शांति-सेना और सर्वोदय-पात्र का प्रयोग करना चाहते हों, तो मुझे कोई हर्ज नहीं है।

आजकल साहित्य-प्रचार भी बहुत कम दीखता है। साहित्य-प्रचार के लिए हमें एक प्लैटफार्म चाहिए और प्रेस भी हमारे हाथ में आना चाहिए।

अब मेरे कार्यक्रम के बारे में। मुझे दिसम्बर के अंत तक पंजाब, कश्मीर घूमकर पंजाब से ही लौटकर राजस्थान के रास्ते से इन्दौर पहुँचना है। उसके

वाद का कार्यक्रम मेरे मन में अभी नहीं है। उसके वाद ग्राम-स्वराज्य खड़े करने के लिए किसी भी प्रांतवाले यदि ऐसी माँग करें कि कम-से-कम २-३ महीने के लिए वावा की मदद जरूरी है, तो—अगर वहाँ उतना काम किया हुआ है, ऐसा महसूस हुआ तो—वावा वहाँ जाने के लिए तैयार है।

(आंध्र के एक भाई ने पूछा कि ग्रामदान कुछ वोगस भी हैं और वे मदद मिलने की आशा से दिये हुए हैं, इसलिए क्या किया जाय ?)

वाहर से मदद मिलेगी, पैसे मिलेंगे, ऐसी आशा करके जिन्होंने ग्रामदान किया है, वह 'वोगस' माना जाय। ग्रामदानियों की मदद करनी चाहिए, लेकिन ग्रामदानियों को यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि वाहर से मदद मिलेगी, वाहरवाले आकर काम करेंगे। सच्चे ग्रामदान वहुत कम होंगे। शिवाजी के जमाने में भी ऐसा हुआ करता था। एक-एक किला जीतते जाते थे। कुछ दिन के वाद दूसरे लोग आक्रमण करके छीन भी लेते थे। इसलिए घवराने की जरूरत नहीं। अगर काम ठीक करें, तो उसीमें से इन प्रश्नों का हल हमें मिल जायगा। वर्धा में एक दिन में वँटवारे का कार्यक्रम रखा, जिसमें अध्यापक, विद्यार्थी, कम्युनिटी प्रोजेक्टवालों, N. E. S. व्लॉकवालों और अन्य कार्यकर्ताओं ने सहयोग दिया। ऐसे प्रयोग करने योग्य हैं।

आपमें किसीको सर्वोदय-पात्र की अपेक्षा ग्रामदानी गाँव को ग्राम-स्वराज्य में परिणत करने में दिलचस्पी हो, तो वह काम आप खुशी से कर सकते हैं। ग्राम-स्वराज्य को सरल वनाने के लिए ही सर्वोदय-पात्र का कार्यक्रम है, कठिन वनाने के लिए नहीं। कोई सर्वोदय-पात्र या ग्राम-स्वराज्य की तरफ ध्यान न देकर मिली हुई जमीन के वँटवारे के काम में लगना चाहता है, तो वह खुशी से उसी काम को करे। उसके लिए भी शांति-सेना, ग्राम-स्वराज्य या सर्वोदय-पात्र वाधक नहीं होगा।

अजमेर
२७-२-'५९

—तमिलनाड, आंध्र, केरल और मैसूर के कार्यकर्ताओं के बीच किया गया प्रवचन

कार्यकर्ता मिल-जुलकर काम करें

[विनोबा]

हमारे कार्यकर्ताओं के गुण और संख्या में भले ही ऊपर से विरोध लगता हो, वास्तव में उनमें कोई विरोध नहीं है। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। विरोध यदि कुछ दीखता है, तो इसीलिए कि वस्तु को हम समग्र दृष्टि से न देखकर आंशिक रूप से देखते हैं। हमारे कार्य की कसौटी इसीमें है कि हम गुण में भी वृद्धि करें, संख्या में भी। मेरी सलाह है कि कार्यकर्ता प्रेम और सहिष्णुता के साथ मिल-जुलकर काम करें।

मैं समझता हूँ कि अगले नवम्बर में मैं कश्मीर से लौटकर इन्दौर पहुँचूंगा।

अजमेर
२८-२-'५९

—आसाम, बंगाल और उत्कल के
कार्यकर्ताओं के बीच

सर्वोदय-पात्र सबसे स्पर्श का साधन

[विनोबा]

महान् दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे, जो अपनी शक्ति को पहचानते हैं। दूसरे वे, जो अपनी शक्ति को पहचानते नहीं। उन्हें अपनी ताकत का एहसास नहीं होता। तत्त्वज्ञों को अपनी महिमा का पूरा ज्ञान नहीं रहता। विहार में बैठा परमेश्वर अपनी महिमा को नहीं जानता।

इस वर्ष के अन्त में मैं इन्दौर पहुँचनेवाला हूँ। इन्दौर हिन्दुस्तान के मध्य में पड़ता है। वहाँ से जिस दिशा में जाना हो, जा सकते हैं। फिर एक बार विहार देखने की इच्छा है। बंगाल या आसाम जाना हो, तो भी विहार में प्रवेश बिना गति नहीं।

हमारा यह साल परीक्षा का साल रहा। '५८ का साल चिन्तन का साल रहा। भूदान, सम्पत्तिदान का काम देश में चल रहा है। जिन लोगों ने अभी तक

कुछ भी दान नहीं दिया, वे आगे देनेवाले हैं। कोई आज का दाता है, कोई कल-परसों का दाता है। अभी तक हमें ७ करोड़ में से ७ लाख परिवारों ने दान दिया है। याने एक फीसदी पर हम पहुँच गये। अब ९९ ही रह गये हैं। चोटी, कान, हाथ—कुछ भी पकड़ा, तो पकड़ा। सर्वोदय-पात्र में जो मुट्ठीभर अन्न डालता है, उसे भी सर्वोदय का स्पर्श तो हो ही गया। सर्वोदय-पात्र सबसे स्पर्श का साधन है।

यहाँ १० पात्र रखे, वहाँ २० पात्र रखे, वहाँ ३० पात्र रखे। तीनों जगह मिलकर ६० पात्र हुए। इस तरह जहाँ जोड़ है, वहाँ घटाव भी है। हम यह नहीं चाहते। पात्रों को रखने से उन्हें बन्द करना आसान है। भूलने में कोई तकलीफ नहीं होती। इसलिए मुझे यह सुनाने की जरूरत नहीं कि कुल इतने सर्वोदय-पात्र रखे गये। मैं तो यही सुनना चाहता हूँ कि सारा-का-सारा गाँव सर्वोदय-पात्र हो गया। सबकी अलग-अलग जिम्मेवारी भी रहे, संयुक्त जिम्मे-वारी भी रहे।

बिहार में यह काम एक दिन में होना चाहिए। अयूब खाँ से एक दिन में कराची का पानी डर जाता है। वह अब दूध में मिलता नहीं। अयूब खाँ से इस काम के लिए कराची के लिए लोग नाराज हों, ऐसी बात भी नहीं है। संचित माल भी उसके डर से बाहर आने लगा। यह भय की प्रेरणा है। पर भीति से तो प्रीति का तत्त्व कहीं उत्तम है। हमारे राष्ट्रपति ने सर्वोदय-पात्र रखा। यह एक इशारा था। राष्ट्र में संवेदना होती, तो एक दिन में सारे राष्ट्र में, राष्ट्र के घर-घर में सर्वोदय-पात्र रख जाता। कुछ विरोधी लोग भले ही न रखते। पर हमारे राष्ट्र ने इस इशारे को नहीं समझा। सारे देश ने इस इशारे को ग्रहण नहीं किया, तो कम-से-कम बिहार को तो इसे समझना चाहिए। वहाँ उदारता तो है, पर अभी इतनी संवेदनशीलता पैदा नहीं हुई। मैं चाहूँगा कि जनता इस इशारे को समझे।

सर्वोदय सार्वजनिक भक्ति का काम है। राम-नाम की तुलना वेद, गीता, रामायण से आप करें, तो इसका मतलब यह होगा कि आप राम-नाम की महिमा समझे ही नहीं।

'शबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ !'

नाम की बड़ी महिमा है। नाम उधारे अमित खल। राम से राम का नाम बड़ा है। ('कहहुँ नाम बड़ राम तें।') ऐसा तुलसीदासजी कहते हैं। राम का नाम सबको छूता है। सबको उसका स्पर्श होता है। उसी तरह सर्वोदय-पात्र सबको छूना है। सूतांजलि सर्वस्पर्शी नहीं हो सकती। कातना सिखाओगे, तब न लोग कातेंगे? अ आ इ ई सीखेंगे, तब पढ़ेंगे। श्रीगणेशायनमः पहले सीखना पड़ेगा। सर्वोदय-पात्र में ऐसा कोई झमेला नहीं। उसके घर में रखते ही अध्ययन शुरू हो जाता है। सर्वोदय-पात्र पर इतना जोर देने का मतलब यह नहीं कि हमने भूदान-ग्रामदान आदि के दूसरे कार्यक्रम छोड़ दिये। ग्रामदान तो सबके सब होनेवाले ही हैं। ग्रामदान से बढ़कर कोई चीज नहीं। उसमें सरकारी दखल भी कम-से-कम होता है और सरकारी मदद भी मिलती है। बीच में सबको स्पर्श करने का साधन है—सर्वोदय-पात्र। अन्न की एक मुट्ठी से घर के भीतर अपना प्रवेश तो होने दीजिये। (बीच में माइक फेल हो गया।)—सर्वोदय-पात्र नहीं होगा, तो हमारा यही हाल होगा।

हमारे कार्यकर्ताओं की सेना जब सम्पत्ति-दान पर निर्भर नहीं रहेगी, तब लक्ष्मी की तरह सम्पत्ति भी पीछे दौड़ेगी। आप सर्वोदय-पात्र का उपयोग करें। सर्वोदय-मण्डल काम करे, लोग देंगे। सब लोग मुझसे ही प्रेरणा पाने की आशा न रखें। यहाँ Caution से, आदेश से नहीं, भक्ति से काम करना है।

अजमेर
२८-२-'५९ —बिहार के कार्यकर्ताओं के बीच

इन्दौर को सर्वोदय-नगर बनायें

[विनोबा]

अपने कार्यक्रम के विषय में मैंने इतना ही सोचा है कि यहाँ से पंजाब होकर कश्मीर जाऊँगा और वहाँ एक प्रेम का कार्य होगा। भूदान, ग्रामदान, शांति-सेना, सर्वोदय-पात्र यह अपना कार्यक्रम तो है ही, परन्तु वह उतना महत्त्व का नहीं है। कश्मीर की परिस्थिति हम देखें और कुछ प्रेम का काम कर सकें, तो कर

देखें। वहाँ जाकर कुछ काम बनेगा या नहीं बनेगा, मैं नहीं जानता। पर निरीक्षण तो बनेगा ही। उसका भी एक उपयोग है। कुछ दान वहाँ मिलेगा ही। वहाँ मुझे प्रेम मिलेगा, मेरा बल बढ़ेगा, मेरी ताकत बढ़ेगी। वहाँ का निरीक्षण करके ही आगे का काम निश्चित करने में कोई अर्थ है। वहाँ से वापस पंजाब आकर जयपुर से इंदौर पहुँचना है। मध्यप्रदेश से कहाँ जाना होगा, कुछ अभी तय नहीं किया है। मैं इतना ही जानता हूँ कि इंदौर के लिए कुछ विशेष दिलचस्पी मेरे मन में है। उसके भी कुछ कारण हैं, कुछ ऐतिहासिक कारण भी हैं। मैं जानता हूँ कि इंदौर, धार और निमाड़ ये ऐसे जिले हैं जिनमें शक्ति बहुत है। खास करके इंदौर शहर सर्वोदय-शहर बने और इनमें से एक जिला सर्वोदय-जिला बने, यह मैं चाहता हूँ। फिर वहाँ से खानदेश नजदीक ही होने के कारण बम्बई-राज्य पर असर डाल सकते हैं। यह शक्ति इंदौर में है, इसलिए इंदौर से मैं कुछ आशा रखता हूँ।

इस साल के अन्त में हम कहाँ पहुँचेंगे? दिल्ली कश्मीर से नजदीक है, इसलिए शायद वहाँ जाना हो। दिल्ली पहुँचने के लिए अभी काफी समय है, इसलिए दिल्लीवालों के पास पूर्व तैयारी के लिए काफी समय पड़ा है। एक दफा तो मैं मध्यप्रदेश घूम चुका हूँ। अब वहाँ दुबारा आना होगा। विन्ध्यप्रदेश भी दिल्ली के रास्ते में पड़ा था। अब तीसरी मर्तबा इंदौर आना होगा। वहाँ से बंगाल के लिए एक रास्ता है। काशी और नेपाल भी जा सकता हूँ। नेपाल के लोग भी बुला रहे हैं। जबलपुर भी जा सकता हूँ, खानदेश की तरफ भी जा सकता हूँ। खानदेश की तरफ जाना हो, तो सीधा जा सकता हूँ। इस तरह मध्यप्रदेश से मैं कहीं भी जा सकता हूँ। इंदौर, जबलपुर, नागपुर—ये तीनों स्थान ऐसे हैं, जो भारत के मध्य-बिन्दु हैं। वहाँ जो काम होगा, उसका परिणाम चारों ओर हो सकता है। मैं चाहता तो हूँ कि इंदौर एक सर्वोदय-नगर बने और कोई एक जिला इंदौर, निमाड़, धार इनमें से एक सर्वोदय-जिला बने। आप लोगों को लगता हो कि वहाँ काम हो सकता है, उसके अनुसार कोई भी जिला आप ले सकते हैं। जैसे दक्षिण में मैंने कहा था कि बँगलोर शहर सर्वोदय-नगर बने, तो उसका असर सारे दक्षिण पर हो गया, वैसे ही इंदौर शहर अगर सर्वोदय-नगर बने, तो दिल्ली तक उसका असर हो सकता है। वहाँ के हर घर में सर्वोदय-पात्र

रखा जायगा, शांति-सेना खड़ी होगी, तो एक समूह ऐसा बनेगा, जो इंदौर को सर्वोदय-नगर बना सकेगा। आपके पास अभी जितनी जमीन बाँटने लायक है, उतनी आप बाँट दीजिये। इस तरह से इंदौर शहर को सर्वोदय-नगर बनाने के या कोई एक जिला सर्वोदय-जिला बनाने के एक इस काम में आप पूरी ताकत लगायें, तो मैं भी अपनी पूरी ताकत लगाने के लिए तैयार हूँ। मुझे आशा है कि इस तरह का ठोस काम वहाँ बनेगा। जितना समय देना पड़ेगा, वह मैं दूँगा।

राजस्थानवालों से भी मैंने कहा है कि उन्हें जहाँ संभव लगता हो, वहाँ उनके साथ अपनी ताकत लगाने के लिए मैं तैयार हूँ।

दक्षिण भारत में जैसे बँगलोर शहर है, वैसे ही उत्तर भारत में इंदौर हो सकता है; लेकिन वहाँ सब शक्ति एकत्र लगनी चाहिए। पूरी तरह से आप ताकत लगाते हैं, तो उधर सरगुजा जिला भी है, वहाँ भी उस काम का परिणाम हो सकता है। परंतु एक शहर सर्वोदय-नगर बने और एक जिला सर्वोदय-जिला बने, यह मध्यप्रदेश के लिए मैं कसौटी समझता हूँ।

दिल्ली में घर-घर सर्वोदय-पात्र हो

अब दिल्लीवालों से क्या कहा जाय? अभी शाम को मैंने जो व्याख्यान दिया, वह दिल्लीवालों के लिए पूरे तौर से लागू होता है। वे इस पर सोचें। दिल्ली में अगर काम बनता है, तो सारे भारत पर असर होगा। आज दिल्ली हिंदुस्तान की राजधानी है। वह अगर सर्वोदय की राजधानी बनती, तो कितना अच्छा होता! वहाँ गांधीजी की समाधि भी है। अब मैं दिल्ली के नजदीक ही हूँ। कहीं से भी आप लोग मेरे पास आ सकते हैं और चर्चा हो सकती है। मैं चाहता हूँ कि दिल्ली के हर घर में सर्वोदय-पात्र हो। प्रधानमंत्री से लेकर भंगी तक हर घर में सर्वोदय-पात्र हो, तो उसका बहुत असर होगा। मैं मदद देने के लिए राजी हूँ।

पंजाब में कोरा मन लेकर मैं जाऊँगा। वहाँ तरह-तरह के मसले हैं। किसीको मेरे सहयोग की जरूरत है, तो मैं मदद देने के लिए राजी हूँ। अपने साथ कम-से-कम लोगों को लेकर मैं पंजाब में जाना चाहता हूँ। पंजाब के लोगों को

भी ज्यादा संख्या में मेरे पास नहीं रहना चाहिए। अब वे ही सोचें कि मेरे साथ किसको रखना चाहिए और किसें नहीं। मैं नहीं चाहता हूँ कि वे ज्यादा संख्या में रहें। वे काम में लग जायँ। आठ साल के वाद मैं वहाँ आ रहा हूँ। तो उसके लायक कुछ काम वहाँ बनना चाहिए। मेरे आने से पंजाव के झगड़े सव-के-सव मिटें, यही कामना लेकर मैं वहाँ आऊँगा।

कश्मीर में निरीक्षण, परीक्षण

कश्मीर में सवाल काफी हैं, लेकिन वहाँ मैं निरीक्षण, परीक्षण और अध्ययन करना चाहता हूँ। कोई फैसला मेरे पास नहीं है। केवल निरीक्षण, परीक्षण करना है। वहाँ आने पर क्या सूझेगा और क्या मदद दे सकता हूँ, यह वहीं तय होगा। मेरा शरीर कमजोर है। चलने के लिए नहीं, मुकाम पर पहुँचने के वाद मुझे आराम मिले—शारीरिक आराम नहीं—चिंतन और अध्ययन के लिए समय मिले, तो आप जितना चलायेंगे, उतना चलने के लिए मैं तैयार हूँ।

आज शांति-सेना के लिए मैंने राह खोल दी है। इसलिए छोटी-छोटी मुश्किलें मेरे सामने पेश मत करो। सत्यनिष्ठ, पक्षातीत भूमिकावाले और पूरा समय देनेवाले जो भाई हों, वे शांति-सेना में आ सकते हैं। गांधी-विचार में माननेवाले कुल-के-कुल लोग इसमें आ जायँ। उनका सहयोग माँगने का मेरा अधिकार है। वे सहयोग दें न दें, यह उनकी जिम्मेवारी है, मेरी नहीं।

जवलपुर भी सर्वोदय-शहर बने

प्रश्न : जवलपुर शहर भी सर्वोदय-शहर हो सकता है ?

विनोबा : अब सेठ गोविन्ददासजी यह बात बोल रहे हैं। राजनीति के झमेले छोड़कर इसमें आप कूद सकते हैं, तो बहुत बड़ा काम होगा। गीता में कहा है कि एकाग्रता के बिना कोई कार्य संभव नहीं। अगर जवलपुर आप सर्वोदय-जिला बनाते हैं या सर्वोदय-नगर बनाते हैं, तो यह जिंदगी के अंतिम पर्व में आपके हाथों से सर्वोत्तम कार्य होगा।

मैं सिर्फ यही चाहता हूँ कि सारे हिंदुस्तान में एकता हो जाय, इसलिए सर्वोदय-पात्र और शांति-सेना के सिवा दूसरा विचार नहीं रखना चाहता हूँ।

भारत में ३७ करोड़ लोग हैं, उनमें से सिर्फ ७५ हजार सैनिक मुझे मिल जाते हैं, तो मेरा काम बन जाता है। हरएक शांति-सैनिक पाँच हजार मनुष्यों के साथ परिचय रखेगा, निरीक्षण करेगा, मदद पहुँचायेगा। इस तरह से ७५ हजार सेवकों के जरिये सारे भारत को हम जानेंगे। सारे भारत के साथ हमारा परिचय होगा। यों सब तरह के मसले हल करने की कुंजी हमारे हाथ में आ जायगी।

शहरी भावना की वृद्धि

प्रश्न : इन दिनों लोग बहुत City minded (शहरी भावनावाले) बनते जा रहे हैं।

विनोबा : यह निश्चित ही है, एक प्रवाह ही है। परंतु उसीमें हमें काम करना है। आज गाँववाले भी स्वयं गाँव की भावनावाले नहीं हैं। अपने बच्चों को ज्यादा काम करना न पड़े, मुझे जो काम करना पड़ता है, उससे मेरा बच्चा बच जाय और आराम की जिंदगी बसर कर सके, यही हर बाप चाहता है। कम-से-कम परिश्रम में ज्यादा-से-ज्यादा पाने की इच्छा सभी लोग रखते हैं। इसलिए गाँववाले भी गाँव की भावनावाले नहीं हैं। मैं आपको कहना चाहता हूँ कि सब-के-सब गाँववालों के अनुकूल वातावरण आपको तैयार करना होगा और ग्रामदान के जरिये ही वह हो सकता है। अनाज बढ़ाना पड़ेगा, सहकार की भावना लोगों में लानी होगी। हमारा एक प्रेम-समाज बनाना होगा। आज जो है, उससे उल्टा ही मारा होगा। अपनी सब ताकत देहात में लगानी होगी। एक वकील से मैंने कहा था कि अरबी में 'वकील' शब्द का अर्थ बचानेवाला होता है। अल्लाह को 'तू है वकील' ऐसा कहा है। पाँच लाख गाँवों के लिए पाँच लाख वकील मिलने चाहिए। वहाँ की पंचायत में मैं आपको स्थान दूँगा, तो फिर आपको कोई चिंता नहीं है। उनके झगड़े बाहर न जायँ, यह जिम्मेवारी आपकी होगी। देहातों को हम आकर्षक बनाते हैं, तो बहुत-से शहर के लोग आ सकते हैं। इसलिए मैं वकीलों को समझाता हूँ कि ग्राम-स्वराज्य में झगड़े मिट जायेंगे, तो आपको काम नहीं रहेगा। आप बेकार बन जायेंगे, तो मैं आपको ग्रामदानी गाँवों में इस तरह का काम दूँगा।

प्रश्न : दिल्ली में संवेदनशीलता बहुत कम हो गयी है। आपकी प्रेरणा की आवश्यकता है। इसलिए आपको वहाँ पधारना होगा।

विनोबा : मेरा आगमन दिल्ली चाहती है, दिल्ली को मेरी जरूरत है, ऐसा हम मानें, तो इससे ज्यादा दूसरा भ्रम नहीं हो सकता है। दिल्ली में मेरी नहीं, मेरे विचार की जरूरत है। मेरे विचार में सहानुभूति रखनेवाले पचास फीसदी लोग पार्लमेण्ट में हैं। अगर मैं माँग करूँगा, तो मुझे और भी ज्यादा लोग मिलेंगे। एक भाई ने कहा है, पचास प्रतिशत लोग आपके विचार के नहीं हैं। क्या मेरे विचार के लिए हाथ ऊपर उठानेवाले पचास प्रतिशत हाथ भी नहीं मिलेंगे? इसमें उनका दोष नहीं है, हम लोग उनके पास पहुँच नहीं पाते हैं। हमारा साहित्य उनके पास पहुँचाना चाहिए। सत्यमभाई और ब्रजकिशन भाई वहाँ पर काम करते हैं, लेकिन अभी तक उन्होंने अपनी जमात नहीं बनायी। हम प्रेम से सब लोगों के पास पहुँचें और अपना विचार पहुँचाते चले जायँ, तो मैं समझता हूँ कि ऐसी जमात वहाँ बन सकती है।

डाकुओं की समस्या

प्रश्न : ग्वालियर और भिंड के नजदीक डाकुओं की समस्या है।

विनोबा : वहाँ लोग बहुत पीड़ित हैं और वह डाकुओं का जिला हो गया, यह मैं जानता हूँ। मैं चाहता हूँ कि उन जिलों में शांति-सेना संगठित हो जाय। डाकुओं का हृदय बहुत सरल होता है। परंतु मुझे डर यह है कि वे डाकू अगर शिक्षित होंगे, सेना से वापस लौटे हुए होंगे, तो जरा कठिन काम है। जो शिक्षित नहीं हैं, उन लोगों के साथ व्यवहार करना आसान होता है। रवि-शंकर महाराज ने गुजरात में इस तरह डाकुओं के बीच काम करके उनका परि-वर्तन किया है। इसलिए आप वहाँ शांति-सेना जरूर बनाइये। मेरे वहाँ पधारने पर काम होगा, ऐसी आशा आप रखेंगे, तो हिंदुस्तान के लिए बहुत बड़ा खतरा होगा। इसीलिए मैं पदयात्रा कर रहा हूँ। क्योंकि पदयात्रा करनेवाला शख्स कब पहुँचेगा, यह कह नहीं सकते हैं। पदयात्रा करने से बहुत बड़ा लाभ यह है कि स्थान-स्थान के लोगों को अपनी जिम्मेवारी महसूस होती है।

शांति-सेना और राजनीतिक लोग

प्रश्न : आज आपने शांति-सेना राजनैतिक लोगों के लिए खोल दी है, तो क्या चुनाव में शांति-सैनिक भाग ले सकते हैं?

विनोबा : वे चुनाव में भाग नहीं ले सकते हैं। जो पक्षातीत होंगे, वे इसमें आयेंगे। नहीं तो यह एक नाटक ही हो जायगा। पक्ष-मुक्त होना संन्यास की बात है और पक्षातीत होना योग की बात है। चुनाववालों के मन में किसी पक्ष के लिए तरफदारी होती है और चुनाव में तरह-तरह के झगड़े खड़े हो जाते हैं। इसलिए चुनाव में खड़े होनेवाले भाई इसमें नहीं आ सकते हैं। पाँच हजार लोगों के साथ परिचय रखनेवाला, उनको शारीरिक और मानसिक सुख पहुँचानेवाला, सत्यनिष्ठ पक्षातीत जो होगा, वही इसमें आ सकता है। किसी पक्ष का Primary member (प्राथमिक सदस्य) वह रह सकता है।

प्रश्न : डाकुओं में शांति-सैनिक कैसे काम करेगा ?

विनोबा : वह सबके साथ परिचय रखेगा। वह सबकी सेवा करेगा, वह अपने व्यवहार से यह सिद्ध करेगा कि वह डाकुओं की भी सेवा कर सकता है। डाकुओं में काम नहीं हो सकता है, ऐसी शंका जिसके मन में आती है, उसे शांति-सेना में दाखिल नहीं होना चाहिए।

प्रश्न : जितने ग्रामदान हुए हैं, उनमें वास्तव में कितने गाँवों में तबदीली हुई है ?

विनोबा : इस बारे में मैं नहीं जानता हूँ, न वह मेरी जिम्मेवारी ही है। जितने गाँव सच्चे हैं, उनमें काम होगा। जो सच्चे होंगे, वे चमक उठेंगे। वे परीक्षा के क्षेत्र हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए। वे सेवा के क्षेत्र हैं, इसलिए सेवा के लिए हमें वहाँ पहुँचना है और उन्हें मदद देने की जरूरत है।

अजमेर **—दिल्ली, पंजाब, मध्यप्रदेश, पेप्सू,**
२८-२-'५९ **कश्मीर के कार्यकर्ताओं के बीच।**

'भूदान-यज्ञ' का प्रचार बढ़ायें

[विनोबा]

मुझे यह आशा हो रही है कि अपने देश में सबकी सहानुभूति प्राप्त करने की दृष्टि हमें सध रही है। उत्तरप्रदेश से तो यह आशा मैं कर ही सकता हूँ।

मुझे ऐसा लगता है कि उत्तरप्रदेश के तीन डिवीजन अगर बना दें, तो शायद

अधिक अच्छा काम बनेगा। मैं यह कोई खास विचार नहीं सुझा रहा हूँ, एक Loud thinking चल रहा है। आप इस बात पर सोचें। हम सब जिलों के काम सँभालेंगे, तो नहीं बनेगा। जैसे गुजरात में उन लोगों ने किया है कि परस्पर एक तारीख निश्चित करके वे लोग मिल सकते हैं। बड़ा प्रान्त होता है, तो जिम्मेवारी चन्द लोगों पर आती है और फिर ठीक से अमल नहीं होता है। इसलिए अगर आप दो या तीन विभाग कर सकते हैं, तो लाभ होगा, ऐसा विचार मन में आया। इन्तजाम के खयाल से वह ठीक रहेगा और फिर अलग-अलग विभाग के आप लोग महीने में एक दफा मिलने की व्यवस्था रख सकते हैं। बाकी कुछ शहर और कुछ देहात के खयाल से आप काम कर सकते हैं।

आदर्श खड़ा करें

सर्वोदय-पात्र और शांति-सेना के बारे में भी मैं कहना चाहता हूँ कि शांति-सेना की दृष्टि से कोई एक शहर और सर्वोदय-पात्र की दृष्टि से कोई एक देहात आप ऐसा बना सकते हैं, जो नमूना हो। इस तरह दो-तीन या चार या पाँच शहर अपनी ताकत के मुताबिक आप ले सकते हैं और आगे चलकर पूरे जिले भी आप ले सकते हैं। तो फिर शायद प्रगति अधिक होगी।

'भूदान-यज्ञ' के ग्राहक बढ़ायें

तीसरी बात यह है कि आपका जो साहित्य-प्रचार है, उससे मुझे जरा भी संतोष नहीं है। 'भूमिपुत्र' के ग्राहक गुजरात में मेरे जाने के पहले आठ हजार थे और अब इक्कीस हजार हो गये हैं। यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि 'भूमिपुत्र' के इक्कीस हजार ग्राहक होते हैं, तो 'भूदान-यज्ञ' के इतने ग्राहक क्यों नहीं बनने चाहिए? क्योंकि उसके लिए पूरा बिहार, पूरा उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, जबलपुर-इटारसी तक फैला हुआ पूरा हिन्दी-विभाग है। उसमें 'भूदान-यज्ञ' के लिए काफी अवकाश है। करीब-करीब बारह करोड़ की जनता है। तो उसके अधिक-से-अधिक ग्राहक क्यों न बनाये जायँ?

आपने देखा होगा कि सात-आठ साल में सर्वोदय का एक प्लैटफार्म बना है और इस प्लैटफार्म पर जो बैठकें होती हैं, उनमें विरोधी पक्ष के लोग भी शामिल होते हैं। और लोग भी बड़े चाव से यह विचार सुनने के लिए आते हैं। यह सारा तो

ठीक है, लेकिन हमारा प्रेस अभी तक नहीं बना है। इसलिए इस दृष्टि से आपको सोचना चाहिए। शहर और देहात में आप घूमते हैं, तो व्यापक जीवन की दृष्टि आपको मिलती है और जो अनुभव आते हैं, वे सारे आप उसमें लिख सकते हैं। आपका एक प्रेस बनना चाहिए। मैं चाहता था कि यह काम '५७ से पहले हो। परंतु वह नहीं हो सका। अब इस पर आपको जोर देना चाहिए। फिर एक या दो मनुष्य आप ऐसे रखिये, जो खुद जाकर रिपोर्ट करें। अपने कार्यकर्ता जहाँ-जहाँ काम कर रहे हैं, वहाँ-वहाँ वे पहुँचें। हमारे कुछ कार्यकर्ता ऐसे हैं, जिनको लिखने की शक्ति नहीं है। लेकिन उनके अनुभव तो अच्छे होते हैं। इसलिए ऐसे शख्स उनके पास पहुँचें, उनका काम देखें, उनके साथ बात करें और उनके अनुभवों की रिपोर्ट लिखें, क्योंकि प्रत्यक्ष दर्शन से बहुत परिणाम होता है। युद्ध में War front (युद्ध-क्षेत्र) पर क्या चल रहा है, इसकी रिपोर्ट होती है, वैसे ही हमारे काम की रिपोर्ट हो। कहीं अखंड पदयात्रा चल रही है, कहीं जमीन का बँटवारा चल रहा है, कहीं निर्माण का काम हो रहा है, कहीं ग्रामदान मिल रहे हैं, कहीं ग्राम-संकल्प चलता है—ऐसे सारे कामों का निरीक्षण करके कुछ-न-कुछ हम लिखते जायँ, तो हमारा अखबार अच्छा चलेगा।

अनुकूलता में वृद्धि

मेरा तो उत्साह बढ़ रहा है। अब आपका क्या है, यह आप देखिये। दुनिया नजदीक-नजदीक आ रही है। नेताओं से हमारी बातचीत होती है। हम देखते हैं कि उनको भी यह काम आवश्यक मालूम होता है और वे सब श्रद्धा से इसकी ओर देखते हैं। यों हमारे लिए बहुत ही अनुकूलता बन रही है। अभी जहाँ जाता हूँ, सरकार के अधिकारियों, शिक्षकों आदि के सम्मेलन होते हैं। वे पहले इस विचार को सुनने की जिम्मेवारी महसूस नहीं करते थे। अब मैं सुनाता हूँ, तो चाव से और प्रेम से सुनते हैं; बल्कि अब तो कांग्रेस ने भी जो प्रस्ताव पास किया है, उसमें भी आपका परिणाम है। मैं कहना चाहता हूँ कि आपके लिए बहुत अनुकूलता पैदा हुई है, यह आप महसूस करें, तो बहुत काम हो सकता है।

समाज के टुकड़े न करें

श्री शंकरशरणसिंहजी : इन दिनों विद्यार्थियों का दिमाग बिगड़ा हुआ है, ऐसा लगता है। उसके लिए क्या किया जाय ?

विनोबा : अब आप विद्यार्थी, शिक्षक, आदिवासी, हरिजन, ऐसे टुकड़े मत कीजिये; क्योंकि इसमें आप नाकामयाब होंगे। सर्वसाधारण के लिए ही आपको शांति-सेना और सर्वोदय-पात्र का काम करना चाहिए। तो ये ही लोग आपके पास आयेंगे और आपसे सेवा लेंगे। परंतु विशिष्ट जनों की बात जहाँ होती है, वहाँ तरह-तरह की मुश्किलें आती हैं। कोई हरिजन है, कोई विद्यार्थी है, उसके लिए हमें काम करना है, ऐसा सोचेंगे, तो उनका अलग अस्तित्व कबूल करना होगा। इस तरह अलग-अलग टुकड़ों की सेवा हमें नहीं करनी है। सारे समाज का ही हमें परिवर्तन करना है और नये मूल्यों की स्थापना करनी है। उसमें से सारे सवाल हल हो जाते हैं। विशिष्ट जनों के लिए हम काम करें, ऐसा न हो। वे ही लोग हमारे पास आकर कहें, ऐसी स्थिति पैदा होनी चाहिए। आपकी ख्याति दुनिया में ऐसी होनी चाहिए कि आप शांति-स्थापना करनेवालों की जमात हैं। केरल में शांति-सेना का काम हुआ, बड़ौदा, अहमदाबाद में भी हुआ, तो वहाँ शांति-सेना की प्रतिष्ठा बन गयी। वैसे ही अपने सारे काम की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। कोई अनाहूत व्यक्ति बीच में दखल देते हैं, तो अनुकूल, प्रतिकूल ग्रह पैदा करेंगे। मैं मानता हूँ कि इस तरह अलग-अलग लोगों के मामले में कोई दखल देना चाहे, तो दे; लेकिन हम सर्वसाधारण वातावरण पर कब्जा पा लें, तो एक प्रतिष्ठा होगी। किसीको डरने की बात नहीं है। 'गुनाह बेलज्जत' हम नहीं करने देंगे।

सेवक कैसे बढ़ें ?

प्रश्न : सेवकों की संख्या कैसे बढ़े ?

विनोबा : आप अपने में से ही आदमियों को निर्माण नहीं कर रहे हैं। आप सब-के-सब गृहस्थाश्रमी हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि आप यह संख्या कैसे बढ़ा नहीं सकते हैं ? (यह सुनकर सारी सभा हँसने लगी) यह तो मैंने विनोद कर लिया। लेकिन मैं देखता तो नहीं हूँ कि आपका लड़का इसमें लगा

है, आपके लड़के को उसकी माता रूप देती है। आप अपने जीवन में बहुत त्याग करते हैं, तो माता उसे समझाती है कि "तू और कोई भी आदर्श रख, पर अपने बाप जैसा बेवकूफ मत बन, उसका आदर्श सामने मत रख।"

'सर्वोदय-पात्र के लिए सेवक कहाँ हैं ?' ऐसा सवाल लोग आपको पूछें, तो आपको यह कहना चाहिए कि देखिये, ये सेवक हैं। **अयं जयद्रथः, अयं सूर्यः**, यह जयद्रथ है, यह सूर्य है।

इस काम के लिए आप विद्यार्थी पाते हैं, तो ठीक है, परंतु उनको खोना नहीं चाहिए। वे अगर छोड़कर चले जाते हैं, तो मैं उन्हें दोष नहीं देता हूँ। अपनी ही कमी, गलती होती है। विद्यार्थी आते हैं और छोड़कर चले जाते हैं, इस पर हमें गंभीरतापूर्वक सोचना चाहिए।

अजमेर **—उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ताओं के बीच**
१-३-'५९

आन्दोलन आगे बढ़ रहा है

[जयप्रकाश नारायण]

कल विनोबाजी ने भगवान् मनु के श्लोक की चर्चा करते हुए कहा कि अपनी असफलता पर अपने को अपमानित मत करना। आजकल असफलता की बातें सुनाई देती हैं। उनमें से कुछ तो कार्यकर्ताओं की आंतरिक भावनाओं की प्रतिध्वनि भी होती है। ऊपर-ऊपर से कार्य का विकास देखकर उनका हृदय निराशा महसूस करता है।

यह बहुत बड़ा काम है। उधर परिस्थिति इस काम के प्रतिकूल नजर आती है। लेकिन जो परिस्थिति निर्माण हो रही है, वह इस काम के अनुकूल हो रही है—यह देखने के लिए सूक्ष्म दृष्टि से देखना चाहिए। ऊपर-ऊपर से देखने में चारों ओर अशांति और झगड़े नजर आते हैं, लेकिन दुनिया को शांति की राह पर आगे बढ़ना है, तो उसे उद्योग, खेती, राज्य-व्यवस्था, व्यवसाय आदि के बारे में विचार करना होगा। उन सबके रूप और प्रक्रिया में रद्दोबदल

करना होगा। दुनिया के विचारक और विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो चुका है और इस तरह प्रवाह शांति की ओर मोड़ ले रहा है।

ऊपर-ऊपर से देखने से ऐसा लगता है कि हम प्रवाह की उल्टी दिशा में बढ़ रहे हैं, प्रवाह हमारे प्रतिकूल है, मामला मुश्किल है; परंतु सौभाग्य से हमें ऐसे नेता मिले हैं, जो गांधीजी की तरह दीर्घ दृष्टि रखते हैं—दूरदर्शी हैं। यही कारण है कि कई लोगों को उनकी बात समझ में नहीं आती। कुछ लोगों को तो उससे भ्रम भी होता है। विनोवाजी ने सन् '५७ में भूमि-क्रांति की बात कही थी। यों तो गांधीजी ने भी एक साल में स्वराज्य ला देने को कहा था। लेकिन उसका मतलब यही था कि देश यदि सत्य और अहिंसा को अपनाये, तो अशक्य दीखती हुई बात भी शक्य हो सकती है। हमने देखा कि उसके छव्वीस वर्षों बाद स्वराज्य प्राप्त हुआ। शुरू में जो धारणा बाँधी थी, उसके अनुसार स्वराज्य नहीं मिला, लेकिन अन्त में सफलता प्राप्त हुई। उसमें थोड़ी हिंसा भी हुई और सोचने के अनुकूल परिणाम नहीं निकला, लेकिन वह व्यक्ति सफल रहा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

स्वराज्य प्राप्त करने के अरसे में कुछ छोटे-मोटे सत्याग्रह हुए और ऐसा लगा कि वे सब निष्फल रहे। देखनेवाले कहते थे कि गांधीजी निष्फल रहे। मैं भी उस जमाने में यही कहता फिरता था। हम कहते थे कि इसकी जगह दूसरा अचूक कार्यक्रम होना चाहिए, आन्दोलन में तीव्रता आनी चाहिए आदि। गांधीजी कहते थे कि मेरे पास रचनात्मक कार्यक्रम के सिवा और कोई कार्यक्रम ही नहीं है। उस समय हजारों लोग जेल गये। संघर्ष के लिए जनता बिलकुल तैयार खड़ी थी। फिर भी गांधीजी कहते थे कि रचनात्मक कार्यक्रम के सिवा मेरे पास कोई कार्यक्रम नहीं है। वे यह भी कहते थे कि सत्याग्रह की पद्धति में निष्फलता के लिए कोई स्थान ही नहीं है।

और हम निष्फलता कहते किसे हैं? अच्छे विचार का प्रचार किया, लाखों लोगों ने वह विचार सुना। हम गीता जैसे पवित्र ग्रन्थ पढ़ते थे, लेकिन उन्हें आज के जीवन में किस तरह अमल में लाया जाय, यह समझ में नहीं आता था। विनोबाजी ने वह मार्ग दिखाया। उन्होंने सुन्दर तरीके से जीने की राह बतलायी। कहीं भूदान हुआ, कहीं ग्रामदान हुआ, किसीने जीवनदान दिया, तो

न्होंने संपत्तिदान दिया। इसमें निष्फलता कहाँ मिली ? किसीने एक ही एकड़ ज़मीन का दान दिया। पर उसका असर थोड़े ही मिटनेवाला है ? अहिंसा और सत्य कभी निष्फल हो सकते हैं क्या ? अच्छे काम में निष्फलता होती ही नहीं है। हाँ, मंजिल पर न पहुँचे हों, यह बात दूसरी है।

जगन्नाथपुरी में विनोबाजी ने दो वर्ष में विश्व-शांति होने की बात कही थी। कई लोगों को ऐसे समय में ऐसी बातें गैरजिम्मेदार मालूम होती हैं। हमारे ऋषियों ने कहा है कि हर मनुष्य ब्रह्म बन सकता है। तो क्या यह कोरी कपोल-कल्पना है ? असल में उसके लिए कोशिश होनी चाहिए। तो विनोबाजी की बात का मतलब यह है कि यदि पूरा देश इस काम के पीछे लगा होता, तो आज यह काम बन गया होता।

यह सही है कि काम बहुत बड़ा है और हमें प्रतिकूल प्रवाह में तैरना है, ऐसा लगता है। लेकिन काम यदि देर से हो, तो चारों ओर उफनती हुई हिंसा, संघर्ष, ईर्ष्या, स्वार्थ और प्रतिद्वन्द्विता आदि विध्वंसक शक्तियाँ समाज को दबोच सकती हैं। तो फिर ऐसे समय में हमें क्या करना चाहिए ? 'निष्फलता !' 'निष्फलता!' के नारे लगाने के बजाय खूब जोरों से काम करना चाहिए, पूरी तीव्रता से काम करना चाहिए, काम में जुट जाना चाहिए। हर व्यक्ति अपने सीने पर हाथ रखकर विचार करे कि पिछले साल मैंने कितना काम किया ? फिर कार्यकर्ता अपेक्षा रखते हैं कि विनोबा कुछ जादू या चमत्कार कर देंगे, सम्मेलन में वे एकाएक कोई नया संदेश देंगे, कुछ बिजली-सी दौड़ जायगी। इस प्रकार लोग हर सम्मेलन में कुछ नवीनता की आशा करते हैं और मार्ग-दर्शन की अपेक्षा करते हैं। हर-वक्त क्या मार्ग-दर्शन मिले ? हर बार क्या नवीनता मिले ?

मैंने एक बार बात-ही-बात में विनोबाजी से कहा भी था कि सम्मेलन में घोषणा कर दीजिये कि मैं अब कोई नयी बात कहनेवाला नहीं हूँ। गांधीजी ने जैसे कह दिया था कि चरखे और रचनात्मक कार्यक्रम के सिवा मेरे पास और कुछ नहीं है, वैसे ही आप भी कह दीजिये। और बिजली क्या दौड़नेवाली थी ? बिजली भीतर हो, तभी तो बाहर के लट्टू जलेंगे। जो चिनगारी जलती होगी, वह दूसरों को जलायेगी। इसलिए कार्यकर्ता खुद टटोलें कि उनमें बिजली है कि नहीं ? शक्ति की खोज भीतर करनी है। चारों ओर सम्प्रदायवाद,

साम्यवाद, पूंजीवाद, हिंसा आदि तनाव हैं। ऐसे समय में दूसरा कौन-सा रास्ता है?

हमारा आन्दोलन ठीक गति से नहीं चल रहा है, तो उसका क्या विकल्प हो सकता है? सत्य और अहिंसा के सिवा दूसरा कौन-सा मार्ग है? इसलिए सत्य और अहिंसा को समझना चाहिए। यदि यह समझ में आ जाय, तो दूसरी कोई आवश्यकता नहीं है। यह समझे हों, तो उसके लिए श्रद्धा और निष्ठा की आवश्यकता है। बुद्धिपूर्वक भी विचार करना चाहिए। हर सत्याग्रह के समय कांग्रेस कार्यसमिति गांधीजी को तानाशाह नियुक्त करती थी। उसमें मोतीलालजी और सरदार पटेल जैसे बुद्धिमान् लोग थे, फिर भी गांधीजी को सर्वेसर्वा बनाया जाता था। क्योंकि वे मानते थे कि सत्य और अहिंसा का तात्त्विक चिंतन उनकी अपेक्षा गांधीजी का गहरा था। तो हमें वस्तु को बुद्धिपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। उसके सिवा और कोई रास्ता ही नहीं है।

कुछ चमत्कार हो जायगा, ऐसी आशा रखना निरर्थक है। हाँ, अपनी कमजोरियों और मर्यादाओं के बारे में अवश्य सोचना चाहिए और सजग रहना चाहिए। लेकिन दो-चार साल में यह हुआ और यह नहीं हुआ—ऐसा सोचना हमें छोड़ना होगा। यह कोई दो-चार साल में होनेवाला काम नहीं है। जिंदगी-भर का काम है। हालाँकि हमें कछुए की गति से नहीं चलना है, तेज चलना है, फिर भी फासला लंबा है। सर्वोदय-समाज का निर्माण करना कोई मामूली बात नहीं है, यह समझकर हम कमर कस लें!

गांधीजी के आंदोलन में ऐसे चढ़ाव-उतार बहुत आये। लोगों को लगता था कि अब सब खतम है। अब कोई आशा नहीं है। लेकिन बापू तो आत्म-विश्वास की अमर ज्योति लेकर आगे बढ़ते ही गये, बढ़ते ही गये और आज हम Consolidation काम को व्यवस्थित करने की स्थिति में आ गये हैं। प्रेम का समाज बनाने के लिए जमीन का बँटवारा होना चाहिए, ग्राम-स्वराज्य का नमूना खड़ा करना चाहिए। आगामी समाज में आर्थिक, बौद्धिक, सामाजिक आदि विकास की स्थिति कैसी होगी, वह देखने को मिलनी चाहिए, ऐसी अपेक्षाएँ लोग रखते हैं। लोगों का हम पर आक्षेप है कि हम लोग आगे दौड़े जाते हैं और पीछे क्या होता है, यह देखते ही नहीं हैं। यदि कार्यकर्ता ऐसा करते हैं,

तो ऐसा करना ठीक नहीं है। हमें आत्मविश्वासपूर्वक काम व्यवस्थित करते हुए आगे बढ़ना है।

अभी तक ज्ञानयोग था, अब कर्मयोग का वक्त आया है। हम जो काम करना चाहते हैं, उस काम की भूमिका हमारे पास तैयार होनी चाहिए। ग्रामदान के द्वारा वह भूमिका, सर्वोदय-पात्र के द्वारा व्यापकता और क्रांति की दृष्टि से निर्माण-कार्य करना है। निर्माण-कार्य में क्रांति की दृष्टि होनी चाहिए। यों तो निर्माण-कार्य कम्युनिटी प्रोजेक्ट भी करती है। लेकिन उसमें क्रांति की दृष्टि नहीं है। उसमें तो 'कम्युनिटी'—समाज भी नहीं है। ग्रामदान द्वारा हमें Community—समाज मिलता है।

पक्षातीत लोकशाही की स्थापना का भी प्रश्न है। वह दो तरह से हो सकती है। एक तो विचार-प्रचार होना चाहिए, वह काम कम हुआ है। शहर के बुद्धिजीवी लोगों के सामने हम उसका स्पष्ट चित्र नहीं पेश कर सके हैं। आज की स्थिति में से उस स्थिति की ओर किस तरह जाना है, वह अभी नहीं कर पाये हैं। वह काम हमें करना चाहिए। दूसरा, जिस हद तक ग्रामदान के काम का विकास होगा, उसी हद तक पक्षरहित लोकतंत्र बनेगा, ऐसा कहा जायगा। उसकी भूमिका पर ग्राम-स्वराज्य आ सकता है। इस तरह ग्राम-स्वराज्य पक्षरहित लोकतंत्र की नींव है।

यह आन्दोलन निष्फल हुआ है, ऐसा कहना मेरे मत से ठीक नहीं है। आंदोलन आगे बढ़ रहा है, यह मेरा निश्चित मत है।

—बंबई-राज्य के कार्यकर्ताओं के बीच

अजमेर
२८-२-'५९

ग्रामदान के बाद ग्राम-निर्माण में लगें

[जयप्रकाश नारायण]

विनोबाजी जहाँ रहते हैं, वहाँ के लोगों को यह महसूस होता है कि आन्दोलन चल रहा है। इस अर्थ में राजस्थान के लोग सौभाग्यशाली हैं कि आज उन्हें

यह अनुभव हो रहा है। इस प्रान्त से बाबा चले जायँगे, तब भी उत्साह कायम रहे, ऐसी योजना बनाने की आवश्यकता है।

कुछ लोगों की दृष्टि में आन्दोलन असफल हो रहा है, लेकिन सोचने की बात यह है कि असफलता कहाँ है? अच्छा काम जितना भी बढ़ा, वह अच्छा ही हुआ। पिछले आठ वर्ष से देश में एक आन्दोलन चल रहा है, लोगों को विचार और काम करने की प्रेरणा उसने दी। सन्तोष का विषय है कि उन विचारों पर अमल भी हुआ। यदि हम एक भी कदम आगे बढ़े, तो वह सफलता ही है। मुट्ठीभर कार्यकर्ताओं से जो कुछ बन पड़ा है, वह कम नहीं आँका जा सकता।

विनोबाजी ऋषि हैं। वे दूर की देखते हैं। वे हमारे सामने बराबर 'टारजेट' रखते जा रहे हैं। गांधीजी ने उस समय नारा दिया था: 'एक वर्ष में स्वराज्य!' तब स्वराज्य का नाम लेना भी कम खतरनाक नहीं था। इससे देश में विश्वास पैदा हुआ, एक बिजली-सी दौड़ गयी। सब जानते हैं कि आजादी तो उसके २६ वर्ष बाद मिल सकी। विनोबाजी ने कहा था कि सन् '५७ तक भूमि की समस्या हल होनी चाहिए। विचार लगानेवाले लगा सकते हैं कि ५० लाख एकड़ भूमि इकट्ठा होने का अर्थ तो दस फीसदी ही सफलता मिली—इससे कार्यकर्ताओं का दिल बैठने की आवश्यकता नहीं है। हमारा आन्दोलन निश्चय ही आगे बढ़ रहा है। दिल्ली से लेकर सुदूर गाँव तक उसका असर हो रहा है।

आज हमारा आन्दोलन इस सीमा पर पहुँच गया है कि हमें दृढ़तापूर्वक काम को मजबूत बनाने का संकल्प लेना है। जितना भूदान प्राप्त किया, उस जमीन का वितरण होना चाहिए। कार्यकर्ता ग्रामदानी ग्रामों में जाकर बैठें। सामूहिक प्रयत्नों से वहाँ निर्माण का कार्य चले। जब लोग यह पूछें कि आठ साल में आखिर क्या हुआ? कहाँ है ग्राम-स्वराज्य? तो हम इन ग्रामदानी ग्रामों में वह झलक दिखा सकें। कार्यकर्ताओं को अपनी शक्ति अब ग्राम-निर्माण पर केन्द्रित कर देनी है। हमारे प्रयत्नों में तीव्रता आवश्यक है।

अजमेर
२८-२-५९ **राजस्थान के कार्यकर्ताओं के बीच**

ग्रामदान के काम को पक्का बनायें

[जयप्रकाश नारायण]

आजकल चारों तरफ एक हवा फैल रही है कि सर्वोदय-आन्दोलन खतम हो गया। हम लोगों के बीच भी ऐसी निराशा फैली हुई है। पर इस निराशा का, इस विफलता का कोई अर्थ नहीं है। सोचने की बात है कि अच्छे विचार फैलाये गये, इसमें विफलता कहाँ आ गयी ? लोग और कुछ न करते, वे सिर्फ आपकी बात ही सुन लेते, तो भी अच्छा होता। पर उन्होंने तो आपकी बात ही नहीं सुनी, उस पर आचरण भी किया है। उस पर कुछ अमल भी किया है। किसीने भूदान दिया है, किसीने सम्पत्तिदान दिया है। कहीं-कहीं ग्रामदान भी हुए हैं। स्पष्ट है कि हर तरह से आन्दोलन आगे ही बढ़ा है।

सत्याग्रह में विफलता है ही नहीं

हमारे कार्यकर्ता बराबर नया कार्यक्रम चाहते हैं। वे चाहते हैं कि जादू की तरह कोई चीज हो जाय। पर विनोबा से जादूगर जैसी अपेक्षा रखना गलत है। गांधीजी से जब-जब ऐसी माँग की गयी, तो उन्होंने साफ कहा कि मेरे पास चरखे के सिवा और कुछ नहीं है। हम लोग उस समय जवान थे और हम गांधीजी की ऐसी बातें सुनकर बिगड़ते थे। पर वे तो अपना काम किये ही जाते थे। वे कहते थे कि सत्याग्रह में आदमी कभी पीछे नहीं हटता। मैं यह मानने को तैयार नहीं कि हम विफल हो गये हैं।

गांधीजी ने १ साल में स्वराज्य लाने की बात कही। विनोबा ने सन् '५७ तक भूदान कर डालने की बात कही। इसका मतलब यही है कि काम में, आन्दोलन में तीव्रता आये। गांधीजी १ साल की बात न कहते, तो २६ साल में भी स्वराज्य न मिलता। उसी तरह विनोबा ने कहा कि भूमि की समस्या चन्द सालों के भीतर हल हो सकती है। राजनीति में तो इस समस्या का कोई हल है नहीं। विनोबा ने हमारे सामने जो लक्ष्यांक रखे, उनकी दृष्टि से देखें, तो भले ही हम कह लें कि हमें सफलता कम मिली। ५ करोड़ एकड़ में ५० लाख एकड़ से भी कम जमीन मिलने का अर्थ यही है कि अभी ९ फीसदी ही सफलता मिली है।

पिछली बार सोखोदेवरा में सर्व-सेवा-संघ की प्रवन्ध-समिति की बैठक में प्यारेलालजी ने कहा था कि कोई भी कार्यक्रम अकेला नहीं खड़ा रह सकता। गांधीजी इस बात को समझते थे और इसीलिए उन्होंने चरखे के साथ ग्रामोद्योग, हरिजन-सेवा, नयी तालीम आदि कितने ही कार्यक्रम जोड़ दिये थे।

जो लोग सत्याग्रह को नहीं समझते, वे भले ही कुछ कहते रहें। हमारा आन्दोलन तो Iceberg—वर्फ का पहाड़ है। उसका जितना हिस्सा ऊपर रहता है, उससे कहीं बड़ा हिस्सा समुद्र के भीतर रहता है। हमारे आन्दोलन का कितने दिल-दिमागों पर असर हुआ, यह ऊपर का छोटा हिस्सा है। हमारे तपस्वी का फल, हमारा काम गहराई में है।

काम को पुख्ता करना जरूरी

हर आन्दोलन हर तरह की स्थितियों से गुजरता है। सत्याग्रह-आन्दोलन में कभी लोग जेल जाते थे, कभी वाहर आकर रचनात्मक काम करते थे। आज ऐसी स्थिति है, जहाँ Consolidation की जरूरत है। पिछले काम को पुख्ता और पूरा किया जाय। न करें, तो आगे वढ़ने की शक्ति नहीं आयेगी। आप ग्रामदान करते जायँगे और पीछे मुड़कर नहीं देखेंगे, तो सब गिर जायगा। अभी कितने ग्रामदानी गाँवों में हमने ठीक से काम किया है?

ग्रामदानी, ग्रामसंकल्पी गाँवों में हमें अच्छी तरह जमकर काम करना है। ऐसा कोई भी गाँव हमें छोड़ना नहीं है। वहाँ हमें कार्यकर्ताओं को वैठाना है। जरूरत इस बात की है कि आप ठोस जमीन पर उछलें। पीछे के काम को पत्थर की तरह मजवूत वना लें।

सरकार या विद्यालयवाले इस काम को उठा लें, तो उससे काम नहीं चलेगा।

अभी परसों सर्किट हाउस में गवर्नर ने हमें दावत दी। वहाँ श्री रघुकुल तिलक की पत्नी ने वताया कि मैंने अफसरों की वीवियों से वात की, तो पता चला कि वे जानतीं ही नहीं कि विनोवा कौन है? यह हाल है हमारी अज्ञानता का। तो जरूरत इस वात की है कि आप अपनी शक्ति Consolidation में, अपने काम को पुख्ता वनाने में लगायें। भले ही आप इसमें सिर्फ एक साल

लगायें, पर लगायें जरूर। Extensive और Intensive (व्यापक और सघन)—दोनों जरूरी हैं, पर Intensive पर जोर देना चाहिए। व्यापकता के लिए सर्वोदय-पात्र है।

विनोवा कहते हैं कि पहले ज्ञानयोग का युग था, अव कर्मयोग का युग आरम्भ हुआ है। मैं ऐसा नहीं मानता। मैं तो यही समझता हूँ कि शुरू से ही कर्मयोग चल रहा है।

कार्यकर्ताओं की कमी

हमारे आन्दोलन में सवसे वड़ी आवश्यकता है कार्यकर्ताओं की। हमारे यहाँ मुश्किल से तीन-चार हजार कार्यकर्ता हैं। इसराइल का प्रधानमंत्री वेंगोरिया हमसे यह सुनकर चकित रह गया कि हमारे यहाँ ज्यादा-से-ज्यादा चार-पाँच हजार कार्यकर्ता हैं। वोला : "४० करोड़ के देश में सिर्फ चार-पाँच हजार?" उसने वार-वार हमें समझाया कि जवानों को अपने आन्दोलन में खींचिये।

विचित्र भाई के पास एक प्रान्त में (उत्तर प्रदेश गांधी आश्रम में) पाँच-छह हजार कार्यकर्ताओं की वड़ी सेना है। विहार खादी-संघ के पास भी पाँच हजार कार्यकर्ता हैं। आज हम ऐसा नहीं कह सकते कि ये सभी कार्यकर्ता हमारी क्रान्ति का कार्य कर रहे हैं। स्वावलम्वी खादी भी संकीर्णता का कारण वन सकती है। विनोवा ने कहा है कि इनकार न करें, तो हम सवको शान्ति-सैनिक मान लेते हैं, पर सेनापति को सेना की स्थिति का पूरा पता रहना चाहिए, नहीं तो खतरा हो सकता है।

योग्यता भी आवश्यक

व्यक्तिगत सम्पर्क से काम सध सकता है। कुछ लोग कहते हैं कि गाँव के साक्षर लोगों में से कार्यकर्ता निर्माण किये जायँ। पर मेरा कहना है कि सिर्फ ऐसे कार्यकर्ताओं से हमारा सारा काम नहीं वनेगा। गाँव के कार्यकर्ताओं में ऐसे वहुत थोड़े कार्यकर्ता होंगे, जो दुनिया की हालत की पूरी जानकारी रखते हों।

कार्यकर्ताओं के शिक्षण का भी सवाल है। खादीग्राम में उसका एक मुख्य केन्द्र है। वहाँ ५ घण्टे मिट्टी खुदवायी जाती है, भाषण किये जाते हैं। पर

उतने से भी काम चलनेवाला नहीं है। कार्यकर्ताओं को कॉलेज का नहीं, अपना अर्थशास्त्र सीखना है। योग्यता के बिना काम नहीं चलेगा।

आस्था से जमकर काम करें

कुछ लोग कहते हैं कि आपका काम बहुत धीरे-धीरे चल रहा है, विरोधी शक्तियाँ बड़ी तेजी से बढ़ रही हैं, उनका हम कैसे मुकाबला करें? ऐसे लोगों से मेरा कहना है कि जिन्हें इस काम पर पूरी आस्था और श्रद्धा न हो, वे यह काम छोड़कर जा सकते हैं। ऐसा मानना चाहिए कि वे भ्रम में पड़कर इधर आ गये थे। लोग गांधी से लड़ते थे, परन्तु उन पर हम सबकी श्रद्धा थी। इसलिए लोगों ने उन्हें सेनापति बना दिया था। मैंने भी विनोबा के लिए ऐसी ही श्रद्धा रखी है। मैं मानता हूँ कि उनमें मुझसे अधिक आत्मशुद्धि है। इसलिए वे जो कहते हैं, उसी पर मैं अमल करता हूँ। विरोधी शक्तियाँ यदि बलवती हो रही हैं, तो हमें और अधिक तीव्रता से काम करना चाहिए। दूसरे लोग यदि आठ घण्टे काम करते हैं, तो हम सोलह घण्टे काम करें।

प्रजा-समाजवादी पार्टी और कांग्रेस के पुराने साथी मुझसे कहते हैं कि तुमने गलती की। वे मेरी बात ठीक से समझते ही नहीं। धीरे-धीरे वे भी समझ जायँगे। यों तो दोपहर को भी अँधेरा कहनेवाले कुछ लोग होते हैं और कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो कल सूर्योदय होगा, इस बात को तब तक न मानेंगे, जब तक सूर्योदय न देख लेंगे। ऐसों की बात करना व्यर्थ है।

अजमेर
१-३-'५९

—उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ताओं के बीच

परिशिष्ट : ५

खादी-कार्यकर्ता-सम्मेलन

जनता की संकल्प-शक्ति से ही खादी टिकेगी

[विनोबा]

१९१६ में मैंने जो काम किये थे, उनमें आठ घंटे निवार बुनने का काम भी था। मुझे याद है कि उन दिनों हम यह हिसाब करते थे कि दिनभर में २५ गज निवार बुनें, तो गुजारा चल सकेगा। जब तक २५ गज नहीं बुन पाया, तब तक उस काम को मैंने नहीं छोड़ा। आखिर ८ घंटे में तो नहीं, पर १० घंटे में तो २५ गज बुन ही लिया। उन दिनों सारा सूत मिल का होता था और मिल का ही काम चलता था। उसके बाद ध्यान में आया कि मिल का सूत लेकर ही बुनते हैं, तो हिन्दुस्तान को खास लाभ नहीं होगा। फिर अपना यह चरखा आया और हम लोग कातने बैठे। बाद में धुनने की बात निकली। फिर कपास, बिनौले और अब उसके आगे खेती और फिर ये ग्रामदान और भूदान। यह सब बिलकुल उल्टा आरम्भ है। बुनने से आरम्भ करके मैं भी समग्र ग्राम-दृष्टि तक पहुँच गया। ऐसा होता है कि संशोधन में पीछे-पीछे जाना पड़ता है। चिन्तन की जो प्रक्रिया होती है, उससे भिन्न प्रक्रिया आती है।

लाचार नहीं विचारवाली खादी

पिछले ४३ साल से कताई, बुनाई, धुनाई आदि के साथ मेरा अत्यन्त निकट संबंध रहा। मेरी जवानी के दिन इसके संशोधन में बीते। घंटों काता, घंटों बुना। बीच में तो यह हिसाब चला कि कताई की मजदूरी क्या होनी चाहिए, तो मैंने चार गुंडियाँ रोज कातना आरम्भ किया और उससे जो आय होती थी, उसी पर मैं रहता था। यह प्रयोग एक साल चला। उसमें एक भी दिन अपवाद नहीं गया। तो कहने का अर्थ यह है कि इतने वर्षों से मेरा खादी-काम से संबंध है और जीवन के प्रारम्भ का सर्वोत्तम समय मैंने इसमें दिया है। अनेक

प्रयोग किये हैं, कराये हैं, किये हुए देखे हैं। तो यह विषय मुझे कितना प्रिय होगा, इसका अंदाज किया जा सकता है। कोई ३० साल पहले मैंने एक व्याख्यान खादी पर दिया था और उसमें कहा था कि खादी कपड़ा नहीं है, खादी विचार है। खादी तो पहले भी थी। सब लोग खादी ही पहनते थे, पर वह जो खादी थी, वह लाचारी की खादी थी। खादी न पहनते, तो नंगे रहते। उनके सामने दूसरी कोई योजना नहीं थी, जिसे वे अपनाते। पर, अब जो नयी खादी आना चाहती है, वह एक नये विचार से आना चाहती है। इसलिए यह लाचार खादी नहीं है, बल्कि यह विचारवाली खादी है। इसकी जो मूलभूत बुनियाद है, उसके पीछे का विचार जब पकड़ा जायगा, तब यह चीज बहुत जल्द बनेगी। उन दिनों हमने तकली पर भी प्रयोग किये थे। हमारे हाथ में जो भी औजार हो, फिर वह छोटा-सा ही क्यों न हो, उसका हम उपयोग करें। इस दृष्टि से उसका प्रयोग किया। हमें जो औजार मिले, उसका हम उपयोग करें, लेकिन इसका मतलब यह नहीं था कि औजारों का संशोधन हम नहीं चाहते। बल्कि मैंने बहुत दफा कहा है कि विज्ञान पर यदि किसीका अधिकार है, तो सर्वोदय का। सर्वोदय न माननेवालों को विज्ञान पर कोई अधिकार नहीं। वे यदि नाहक उसमें दखल देते हैं, तो दुनिया का विनाश कर सकते हैं। हिंसा के साथ यदि विज्ञान जुड़ जाता है, तो मानव-जाति की समाप्ति है। परन्तु अहिंसा और सर्वोदय ये दोनों अगर विज्ञान के साथ होते हैं, तो इस दुनिया में हम स्वर्ग को ला सकते हैं। ईसामसीह का सपना था कि तेरा राज जो आसमान में है, वह नीचे जमीन पर आये। विज्ञान और अहिंसा दोनों जुड़ जायँ, तो वह सपना हम सत्य सृष्टि में ला सकते हैं। सर्वोदय विज्ञान का बड़े ही प्रेम से स्वागत करता है। मैं तो इस बात की राह देख रहा हूँ कि कब अणुशक्ति आये और गाँव-गाँव में पहुँचे, जिससे कि हर ग्राम में हम ग्राम-स्वराज्य ला सकें। क्योंकि वह जो शक्ति आयेगी, वह विकेन्द्रित शक्ति होगी। हर गाँव में ग्राम-स्वराज्य बनाने में उसकी मदद होगी।

अम्बर चरखे की मान्यता

खादी के काम का मतलब यह नहीं कि हम किसी पुराने औजार को लेकर

ही कातते रहें। उसका इतना ही अर्थ नहीं है। वह उससे कहीं गहरी है। अन्न, वस्त्र और घर—ये दो-तीन चीजें अपने काम के औजार हैं। कुछ चीजें हैं, जो बुनियादी हैं, प्राथमिक हैं और वे हर गाँव में मुहय्या हों, तो अहिंसक समाज-रचना आसान बनती है, नहीं तो कशमकश चलेगी। प्रतियोगितावाला समाज बनेगा, होड़-सी लगेगी। यह बड़ा भयंकर होगा। हम चाहते हैं कि सर्वोदय-विचार नये-नये शस्त्रों को ईजाद करे, शोध करे और उसका अहिंसक ढंग से उपयोग करे याने सारे समाज के लिए उसका उपयोग करे। अम्बर चरखा आया, तो यह चर्चा चली कि अंबर चरखे को हम मान्यता दें न दें, अहिंसा की की दृष्टि से कहाँ तक वह उचित है इत्यादि। यह चर्चा चलनी अत्यन्त स्वाभाविक थी, पर मैंने तो कृष्णदास से कह दिया था कि सब लोगों की जो राय बनेगी, सो तो जाहिर होगी; परन्तु अपनी ओर से मैं कहता हूँ कि मैं इसका पूर्ण स्वागत करता हूँ और मैं इसे चाहता हूँ। ऐसा नहीं है कि हम कोई दकियानूस बन जाते हैं और ऐसे औजारों पर नाहक समय खर्च करना चाहते हैं, जो कि इस जमाने में चल नहीं सकते, टिक नहीं सकते। मैं चाहता हूँ कि हमारे गाँव छोटे-छोटे संगठित हो जायँ और हमारे शहर थोड़े गाँव के ढंग के हो जायँ। यह प्रक्रिया हमें करनी होगी कि अपने गाँव को हम थोड़ा-सा बड़ा बनायें। हमारे शहर को कुछ मर्यादा लगानी होगी कि इतने से ज्यादा बड़े न बनें। परन्तु ग्राम अगर बहुत बड़े बने, तो एक-एक ग्राम की खेती इतनी लम्बी होगी कि दो-तीन मील दूर रहेगी। उस हालत में खेती की देखरेख करना बहुत कठिन होगा। मैंने देखा है कि जो गाँव बड़ा है, उस गाँव की खेती अच्छी नहीं है। जो गाँव प्रमाण में छोटा है, उसकी खेती अच्छी है, क्योंकि घर के नजदीक खेती होने के कारण किसान उसकी देखरेख अच्छी तरह से कर सकता है। जहाँ दो-दो मील दूर जाना पड़ेगा और वापस आना पड़ेगा, वहाँ जाने-आने में कितना ही समय चला जायगा। यह अमेरिका तो है नहीं कि मोटर से हम अपने खेत पर जायें। इतने रास्ते भी यहाँ बनाना शक्य नहीं है। धीरे-धीरे या तो हवाई जहाज चलेगा या तो पाँव चलेगा। तीसरी बात नहीं चलेगी। यह सही है कि जैसे-जैसे विज्ञान आगे बढ़ता है, दो ही चीजें टिकती हैं। एक अपनी निज की इंद्रियाँ, जिनको हम 'करण' कहते हैं, वे और दूसरे उत्तम उपकरण।

खादी को जनता का संरक्षण मिले

अम्बर चरखा जब आया, तो मैंने उसका बड़ा स्वागत किया। फिर चर्चा हुई। चर्चा के अन्त में निर्णय हुआ कि इसे हम अहिंसक विचार से मान्य करते हैं और इसको हम बढ़ावा देना चाहते हैं। अब इसके आगे दूसरी दिशा ध्यान में रहनी चाहिए। अभी सरकार की स्थिति क्या है और हमारी स्थिति क्या है— दोनों जरा हम साफ समझें। सरकार खादी को, ग्रामोद्योग को मदद देने को तो प्रस्तुत है, पर संरक्षण देने को प्रस्तुत नहीं है। दोनों का फर्क स्पष्ट ही है। यह काम मदद से आगे नहीं बढ़ेगा। आप थोड़ी-सी मदद देकर खादी को सस्ता बनायेंगे, तो भी मिल की होड़ में वह सस्ती बन नहीं सकती। यह बिलकुल सिद्ध वस्तु है। इसलिए यही समझना चाहिए कि मदद जब तक मिलती रही, तब तक तो वह चलेगी, अन्यथा नहीं चलेगी। अगर सरकार का संरक्षण नहीं मिलता है, तो जनता की तरफ से संरक्षण होना चाहिए। बिना संरक्षण के यह चीज चलेगी नहीं, यह निःसंशय है। सरकार संरक्षण देने की स्थिति में होती, तो सरकारी संरक्षण की चीज चलती। सरकार मदद देती है, उसका लाभ उठा करके अगर हम जनता की कोई ऐसी संकल्प-शक्ति पैदा करते हैं, तो संकल्प-शक्ति से वह चीज टिके, तभी टिक सकती है। अन्यथा वह टिक नहीं सकती। आज खादी को जो मदद दी जा रही है, उस मदद से अगर हम उसका ठीक उपयोग न करें, ग्राम-संकल्प की दिशा में और ग्राम-स्वराज्य की दिशा में उसका उपयोग हम न करें, तो यह मदद पूर्वक्रिया—मरने के पहले की क्रिया—की जैसी साबित होगी। यह मैं बहुत स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि अम्बर चरखे का उपयोग करके बहुत आसानी से गाँव-गाँव स्वावलम्बी हो सकते हैं। इसका थोड़ा नमूना दो जगह तो लोगों ने देखा है। एक तो हैदराबाद में, दूसरा दरभंगा जिले में। मैंने सुना कि हैदराबाद में कोई हजार-पन्द्रह सौ चरखे चल रहे थे और मुसलमान बहनें, जो कि अक्सर बाहर आती नहीं, वे परदे के बाहर बैठी चरखा चला रही थीं। हैदराबाद शहर में इतनी बेकारी और इतनी आवश्यकता थी कि पंद्रह सौ स्त्रियाँ एकत्रित हो गयीं। जिस किसीने यह दृश्य देखा, उस पर उसका बहुत असर हुआ। लोगों ने मुझसे आकर कहा कि वह तो बड़ा ही

अद्भुत दृश्य था। दरभंगा जिले में आज जो काम हो रहा है, वह मैंने देखा है। मैं जानता हूँ कि वहाँ वह शक्ति पड़ी थी। वहाँ बहुत सुन्दर कार्य हो रहा है। गाँव-गाँव में लोग संकल्प करते हैं कि अपना गाँव हम स्वावलम्बी बनायेंगे और अपने गाँव का ही कपड़ा हम इस्तेमाल करेंगे। इस संकल्प के अनुसार ही वे अंबर चरखे का उपयोग करते हैं। अपना स्वावलम्बन करके जो खादी बचती है, वह बाहर चली जायगी। गाँव को स्वावलम्बी बनाने की दृष्टि वहाँ चल रही है। तो अपने इस खादी-काम को इस दिशा में अगर हम मोड़ न दें, तो आप समझ लीजिये कि मैं तो उसमें बहुत खतरा मानता हूँ।

खेती, खादी और नयी तालीम

दूसरी बात यह है कि खादी और खेती, ग्रामोद्योग और नयी तालीम इन चीजों को हम अलग कर ही नहीं सकते। ये चीजें टिकेंगी, तो एक साथ टिकेंगी और गिरेंगी, तो एक साथ गिरेंगी। याने इनमें से एक टिकेगी और दूसरी गिरेगी, यह होनेवाली बात नहीं है। जो तालीम स्वयं बेकारी पैदा करेगी, उस तालीम को देनेवाला शिक्षक ही बेकारी-निवारण का साधन हो जायगा, उस तालीम के साथ खादी टिकनेवाली नहीं है। अगर खादी टिकनेवाली है, तो वह तालीम टिकनेवाली नहीं। ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं चलेंगी। यह तालीम बदलनी चाहिए। ऐसे ही गाँव के दूसरे उद्योग हैं। यह जो दूसरे उद्योग हैं, जिनका कच्चा माल गाँव में उपलब्ध है और जिनके पक्के माल की गाँव में जरूरत है, वह गाँव में ही बनना चाहिए। मुझे औजारों का कोई आग्रह नहीं है। आप भले ही वहाँ बिजली लगायें, चाहे और कुछ लगायें; लेकिन वह वहीं पैदा होना चाहिए। लेकिन आप वहाँ यदि बिजली लगाना चाहते हैं, तो इसका उपयोग गाँव को मिलना चाहिए, व्यक्ति को नहीं। अगर छोटा, सादा-सा औजार इस्तेमाल करते हैं, तो वह घर-घर में हो। यदि बिजली आती है, तो उसका लाभ पूरे गाँव को मिलना चाहिए, किसी एक व्यक्ति को नहीं। याने अन्दर-अन्दर शोषण न हो। यह तो एक बात हुई, दूसरी बात यह कि एक गाँव में बिजली आये और उससे यदि दूसरे गाँवों का शोषण होता है, तो यह भी मैं मान्य नहीं करूँगा। तो न तो अन्दर-अन्दर शोषण हो और न बाहर

शोषण हो। इस प्रकार से यदि बिजली आती है, तो उससे मेरा कोई विरोध नहीं।

जहाँ जो चीज पैदा हुई है, वहाँ उसका पक्का माल बनना चाहिए। यह जो योजना है, उसीके अन्तर्गत खादी है। खादी के साथ और भी दूसरे उद्योग आयेंगे। खादी, दूसरे उद्योग और तालीम—ये तीन चीजें हैं। अगर बुनियादी चीज—जमीन सबकी न हो जाय, तो ये तीनों चीजें नहीं चल सकतीं। जमीन की मालिकी पाप ही है। इसके लिए पाप से कोई छोटा शब्द मैं इस्तेमाल नहीं कर सकता। दूसरा शब्द मुझे मिलता ही नहीं। और यह मैं ही कह रहा हूँ, ऐसा नहीं है। कोई अस्सी-पचासी साल पहले इस विषय पर एक निबन्ध लिखा गया है, जिसमें कहा है कि जमीन की मालकियत महान् पाप है।* यह कोई मैं आज कह रहा हूँ, ऐसी बात नहीं है। जितने धर्मशास्त्र मैं देखता हूँ, कुल-के-कुल धर्मशास्त्र इसके विरुद्ध हैं। हिन्दुस्तानी हो, यहूदी हो, ख्रिस्ती हो, सब इसके विरुद्ध ही हैं। अर्थशास्त्र भी इसके विरुद्ध है। आज का अर्थशास्त्र इस बात का विरोध कर रहा है, मैं इस बात में नहीं जा रहा हूँ। जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए।

हमारी गलत दिशा

कुल-का-कुल गाँव जहाँ जितनी जमीन है, उसी आधार पर एक कुटुम्ब जैसा चिन्तन करे, तभी ग्रामोद्योग, खादी और नयी तालीम मिलकर ग्राम-स्वराज्य की योजना हो सकती है। गाँव-गाँव स्वावलम्बी हो, इस दिशा में, ग्राम-संकल्प की और ग्राम-स्वराज्य की दिशा में हमें इस कार्य को ले जाना चाहिए। खादी को सरकारी मदद मिलती है, उसका लाभ लेकर यदि अपने पाँव पर उसे खड़ी कर देते हैं, तो वह टिकेगी। मैं मानता हूँ कि अपने पाँव पर यदि वह चीज नहीं खड़ी हो सकती, तो सरकारी मदद लेना गलत नहीं है। सरकार मदद देती है, तो कोई उपकार करती है, ऐसा मैं नहीं मानता। बेकारी हटाना सरकार का कर्तव्य है। वह सरकार न करे, तो सरकार अपना मूलभूत कर्तव्य नहीं करती है। इस वास्ते बेकारी निवारण के खयाल से सरकार मदद दे, तो

---

* हेनरी जार्ज : 'प्रोग्रेस एण्ड पावर्टी'।

कोई उपकार नहीं है। परन्तु हमेशा यह तलाश रहेगी कि इस वेकारी निवारण का कोई वेहतर तरीका निकले और वह जो मदद देती है, वह न देनी पड़े, तो अच्छा है। इस प्रकार से हमेशा चिंतन चलता रहेगा। अतः मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि सरकारी मदद मिल रही है, कार्यकर्ता काम कर रहे हैं, खद्दर वढ़ रही है, विक रही है। सव कुछ हो रहा है, लेकिन यह सव कुछ देख-कर मुझे वहुत प्रसन्नता नहीं है। याने मुझे ऐसा लगता है कि जिस दिशा में हमें जाना चाहिए, उस दिशा में हम नहीं जा रहे हैं। व्यापारी खादी की जो हमारी पुरानी दिशा थी, वह दिशा हमारी छूट नहीं रही है। समग्र दृष्टि से खादी अपने विचार के साथ टिके न टिके, तो भी कोई हर्ज नहीं है—यहाँ तक गांधीजी कह गये। आखिर में १९४४ में जव वे जेल से वाहर आये, तो मैं अन्दर था। तव उन्होंने कहा कि कातनेवाला ही खादी पहने और पहननेवाला ही काते। उन्होंने यह सूत्र ही वना लिया था कि कातनेवाला पहने। इसका शाब्दिक अर्थ न लिया जाय कि हर मनुष्य को सूत कातना चाहिए और खादी पहननी चाहिए। परन्तु एक-एक प्रदेश अपना स्वावलम्वन करे। स्वावलम्वन के लिए ही वह काते, तो अच्छा होगा।

सरकार को दो सुझाव

सरकार यदि संरक्षण नहीं देना चाहती, लेकिन मदद भी देना चाहती है, तो एक वात मैं सरकार को सुझा सकता हूँ और वह यह कि सरकार दो काम करे। एक तो जिस तरह वह हर नागरिक को पढ़ना-लिखना सिखाना अपना कर्तव्य समझती है, उसी तरह वह हरएक को सूत कातना सिखाये। मैं कहता हूँ, हिन्दुस्तान के लिए यह 'डिफेन्स मेजर' है कि हिन्दुस्तान का हर नागरिक कातना जाने। पंडितजी से मैंने एक वार वात की थी, तो वे हँसते हुए वोले : "ठीक है। लेकिन सिखाने के वाद क्या करेंगे? इसका उपयोग क्या है?" मैंने कहा कि यह कहाँ पूछा जाता है कि पढ़ना सिखा दिया, उसका कहाँ-कहाँ उपयोग किया जायगा। जिसे हम पढ़ना सिखायेंगे, वह कम-से-कम २० कितावें पढ़ेगा, इसीकी कहाँ गारंटी है। सालभर में एक किताव पढ़ने की भी गारंटी है क्या? लेकिन पढ़ना सिखाने की वात हमने मान ली है। उसे तालीम का एक अंग माना है।

इसके बाद उसका स्वाभाविक तौर से इन्तजाम हम करेंगे ही। परन्तु हम यह सोचते नहीं कि उसका उपयोग क्या होगा ? कताई सिखाना भी वेसिक चीज है, बुनियादी है। इसी तरह से माना जाय—ऐसा हमने कहा था।

दूसरी बात मैं यह चाहूँगा कि सरकार बुन-काम के उद्योग का राष्ट्रीयकरण करे। याने बुन-काम सरकारी हो और कम-से-कम १२ गज प्रतिव्यक्ति—बुनाई का खर्च सरकार अपनी तरफ से करे। कम-से-कम १२ गज हर मनुष्य के पीछे वह बुनाई मुफ्त दे दे। ऐसी वह एक राष्ट्रीय नीति तय करे। हर मनुष्य के पीछे १२ गज सूत की बुनाई का खर्च कोई डेढ़-दो रुपये पड़ेगा। यों सारे हिन्दुस्तान के लिए ५० करोड़ रुपये की एक योजना लागू हो जाती है। यह सबसे सस्ती योजना है। इससे कुल-का-कुल कपड़ा भारत अपना कर लेगा। इतने पैसे में और उसके आधार पर आयोजन करना बिलकुल ही आसान है। एक गाँव से कितना हम किस तरह से प्राप्त करें, यह बहुत कठिन नहीं है।

ये दो माँगें मैं सरकार के सामने रखूँगा। वह अपनी शक्ति, अपनी शक्यता समझकर उचित कार्रवाई करे। लेकिन यह तो सरकार की बात है। हमारी बात यह है कि हमें आज सरकार जो मदद देती है, उससे हमें एक थोड़ा-सा आधार मिल जाता है। ग्राम-संकल्प की दिशा में उसे हम ले जायँ।

ग्रामदानी गाँवों में तुरत पहुँचें

अभी ग्रामदान हो रहे हैं। यहाँ राजस्थान में मुझे एक महीना हुआ। इस बीच यहाँ कोई १५० ग्रामदान हुए हैं। जहाँ वे ग्रामदान हुए हैं, वहाँ सघन क्षेत्र के जैसा ही क्षेत्र है। गुजरात से मैं अभी आया हूँ, जहाँ कोई ७०-७५ ग्रामदान हुए हैं। सघन क्षेत्र में ग्रामदान बढ़ रहे हैं और बढ़ेंगे। मैं मानता हूँ कि इन ग्रामदानी गाँवों का फौरन चार्ज लेना आपके खादी-कमीशन का कर्तव्य है। जहाँ ग्रामदान हुआ है, वहाँ आप पहुँचकर पूछें कि भाई, इस काम के लिए आप तैयार हैं ? तो वे कहेंगे कि आप थोड़ी मदद करिये। चरखा चलवाइये। आप चरखा सिखा दीजिये। यों आप ग्राम का चार्ज ले लें। जहाँ ग्रामदान नहीं हुए हैं और लोग ग्राम-संकल्प करने के लिए राजी हो गये हैं, वहाँ भी आप पहुँचें। ऐसे गाँव खास करके बिहार में बहुत हैं। ऐसे ग्रामदानी और ग्रामसंकल्पी गाँव

जितने हों, उन सबमें आपको फौरन पहुँचना चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि ग्रामदान जाहिर हुआ और हम लोग वहाँ न पहुँचें। जल्द-से-जल्द हमें वहाँ पहुँचना चाहिए। कहीं एक ही ग्रामदान हुआ हो, तो भी वहाँ पहुँचना चाहिए। वहाँ मदद पहुँचती है, तो आसपास के गाँव ग्रामदान होने के लिए बहुत अनुकूल होते हैं। मेरी खास माँग है कि ग्रामदान और ग्राम-संकल्प का विचार तथा आपका काम, यह दोनों इतने एकरूप हो सकते हैं कि जिससे स्वराज्य के दर्शन आपको हो सकें। हममें से हरएक यह कोशिश करे कि हमारा यह कार्य केवल सरकार के आधार पर नहीं, लोगों के आधार पर रहे। मैंने यह भी सुझाया है कि ग्रामदान का यह सुझाव अभी अमल में लाने लायक है। हमारे कार्यकर्ता अगर जन-आधारित रहते हैं और बाकी की मदद सरकार से आती है, तो बड़ा सुन्दर रूप होगा। लेकिन उसमें जरा समय लगेगा। पर चाहता मैं यही हूँ कि यह जो सर्व-जन-आधार निर्माण कराना चाहते हैं, उसमें आप लोग सहयोग दें और घर-घर में सर्वोदय-पात्र आदि रखें।

अजमेर —खादी-ग्रामोद्योग-बोर्ड की

प्रातः २७-२-'५९ बैठक में किया गया प्रवचन।

परिशिष्ट : ६

महिला-सम्मेलन

महिलाएँ समता, करुणा, शांति की जिम्मेदारी लें

[विनोबा]

[सम्मेलन के दूसरे दिन दोपहर के समय बहन राजम्मा ने विनोबाजी से प्रार्थना की कि "सर्वोदय-आन्दोलन को आगे बढ़ाने में महिलाएँ किस प्रकार योगदान कर सकती हैं, इस सम्बन्ध में आप कुछ कहें। आप सर्वोदय-आन्दोलन

में स्त्री-शक्ति प्रकट करने के बारे में बरावर चिन्तन करते रहते हैं और उसके लिए वहनों को विभिन्न उपाय भी सुझाते हैं। यहाँ देश की कार्यकर्त्रियाँ उपस्थित हैं। पिछली वार भी पंढरपुर में आपने महिलाओं को विशेष संदेश दिया था, उसी तरह इस वार भी कुछ उपदेश दें।"

इस पर विनोबाजी ने महिलाओं को संवोधित करते हुए इस आशय के विचार प्रकट किये।]

इन वर्षों में महिलाओं के सम्बन्ध में वोलने का कई वार अवसर आया है। महिलाओं को लक्ष्य करके प्रकट किये गये मेरे विचारों को सर्व-सेवा-संघ ने एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया है। उस पुस्तक का नाम है 'स्त्री-शक्ति'। हिन्दुस्तान के प्रत्येक स्त्री-पुरुष के हाथों में वह पुस्तक पहुँचेगी, ऐसा मुझे विश्वास है। फिर भी इस समय भी अपने कुछ विचार आपके समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

कांग्रेस का अभिनन्दन

कांग्रेस ने एक तरुण महिला को अपना अध्यक्ष चुना, इसके लिए प्रारम्भ में मैं उसका अभिनन्दन करता हूँ। यह पहला अवसर नहीं है, जब कि कांग्रेस ने महिला को अपना अध्यक्ष चुना है। स्वराज्य-प्राप्ति से पूर्व कांग्रेस की अध्यक्षा स्त्रियाँ रह चुकी हैं, लेकिन स्वराज्य के बाद तो यह पहला ही मौका है। स्वराज्य के पहले और स्वराज्य के वाद के कामों में वहुत अन्तर होता है। स्वराज्य के पहले के कामों का रूप लगभग Negative (अभावात्मक) होता है, इसलिए उस समय स्त्री या पुरुष किसीके भी अध्यक्ष वनने से कोई मौलिक अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु स्वराज्य के वाद निर्माण का काम करना होता है, जिसमें वहुत कुछ रचनात्मक काम होते हैं, उनको करने का मौका कांग्रेस ने एक स्त्री को दिया, इसकी मुझे प्रसन्नता है।

हिन्दुस्तान की महिलाओं के पिता, भाई, पति, पुत्र आदि भिन्न-भिन्न दलों में हैं। वे आपस में लड़ते हैं। उस लड़ाई से अलग कर उन्हें निर्माण के काम में लगाया जाय, इसके लिए महिलाएँ वहुत काम कर सकती हैं। मैं आशा करता हूँ कि उस दिशा में अग्रसर होने के लिए इस मौके का उपयोग किया जायगा। इंदिराजी ने सभी पक्षोंवाले भाई-वहनों को सहकार्य और सहयोग के लिए

आवाहन भी किया है। हम सर्वोदयवाले सदा सहयोग करना चाहते हैं, इसलिए हमारा सहकार अवश्य मिलेगा। परन्तु अब बहनों की ताकत बनाने के लिए कोशिश करनी होगी।

स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण इतिहास

हमारे यहाँ की सभ्यता में स्त्रियों का स्थान पुरुषों से भी ऊँचा रहा है। बुद्धि, शक्ति, भक्ति, श्रुति, धृति, स्मृति, कीर्ति आदि सभी महत्त्वपूर्ण शब्द स्त्रीलिङ्गी हैं। **'कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा'** इस तरह भगवान् ने भी गीता में गाया है और कहा है कि स्त्रियों में मैं स्त्री हूँ। मनु महाराज ने तो और भी विशेष बात लिख दी है। वह यह कि "दस उपाध्यायों से एक आचार्य श्रेष्ठ है, सौ आचार्यों से एक पिता श्रेष्ठ है और हजार पिताओं से एक माता श्रेष्ठ है।" माताओं का गौरव हजारों पिताओं से भी बढ़कर है। यह भारतीय सभ्यता का निर्देश है। यहाँ स्त्रियों की हमेशा प्रतिष्ठा रही है। हिन्दुस्तान के इतिहास में पुरुषों ने अनेक गलतियाँ की हैं, लेकिन स्त्रियों ने नहीं कीं। एक मानव के नाते किसी-किसी स्त्री से गलती हुई हो, तो दूसरी बात है। अन्यथा यहाँ हमेशा स्त्रियों ने पुरुषों को गलत काम करने से रोका है। रावण राक्षस रहा, लेकिन मन्दोदरी सती मानी गयी। वाली और तारा के बारे में भी यही कहा जा सकता है। रामायण और महाभारत में ऐसी कितनी ही मिसालें हैं, जिनमें स्त्रियों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर पूरा प्रकाश पड़ता है।

स्त्रियों को अपने जीवन में मुख्य दो काम करने होते हैं। एक काम है सहधर्माचरण, याने पुरुषों के काम में योग देना। राम के साथ सीता का वन में जाना ही उसका सहधर्माचरण है। दूसरा काम है—पुरुषों के कामों की पूर्ति करना। दुनियाभर में देखा गया है कि जिन कामों का करना पुरुषों के लिए कठिन होता है, वे काम स्त्रियाँ अच्छी तरह से कर सकती हैं। विशिष्ट कामों को करने के लिए पुरुषों को विशेष साधना की आवश्यकता होती है। परन्तु वात्सल्य, करुणा आदि गुणों के कारण स्त्रियाँ उन्हें आसानी से कर सकती हैं। पुरुषों को वैसे काम करने के लिए अपने में स्वतन्त्र गुण विकसित करने होते हैं। कुछ ही महापुरुष ऐसे हुए हैं, जो अपने परम पुरुषार्थ से दैवी गुणों में स्त्रियों से अधिक

विकास कर सके। ईसामसीह के मार्दव के सामने स्त्रियाँ भी फीकी पड़ती हैं! इस युग में बापू भी वैसे ही हुए! पुराने युग में कृष्ण हुए, जिनके स्मरणमात्र से स्त्रियाँ मुक्त हुई हैं। लेकिन ऐसे पुरुष कितने होते हैं? विशेष पराक्रम से पुरुषों को जो गुण साधने पड़ते हैं, वे स्त्रियों में प्रकृतिगत होते हैं। इसलिए स्त्री-शक्ति बहुत काम कर सकती है।

इन दो कामों के अलावा अब एक तीसरे काम की जिम्मेवारी भी स्त्रियों पर आयी है, वह यह कि वे पुरुषों द्वारा बिगाड़े हुए काम सुधारें। पुरुषों के हाथ से दुनियाभर की व्यवस्था होने से दो-दो महायुद्ध हो गये। अब वे समत्व के नाम पर स्त्रियों को भी सेना में भरती करने लगे हैं। यूरोप में स्त्रियों की पलटनें बनी हैं। अब वहाँ स्त्रियाँ भी बन्दूकें लेकर 'लेफ्ट-राइट, लेफ्ट-राइट' करती हैं। इन दिनों पुरुषों ने दुनियाभर में जो Party Politics (दलगत राजनीति) शुरू कर दी है, वह कितनी दोषपूर्ण है? हर जगह छेद-ही-छेद, टुकड़े-ही-टुकड़े हो रहे हैं। इन टुकड़ों को जोड़ने का काम स्त्रियों को करना है। पहले तो कपड़ा फटे ही नहीं तथा फट ही जाय, तो उसे सी देने का काम स्त्रियों को करना है।

यह घूंघट क्यों ?

कई स्थानों में हमने बहनों को घूंघट निकालते हुए देखा है। बाबा के दर्शन करने के लिए आती हैं, तब भी उनकी आँखों पर परदा रहता है। मुझसे ठंड सहन नहीं होती, इसलिए मैं कानों को लपेट लेता हूँ। कानों को लपेटने के कारण मेरा भी घूंघट बन जाता है। फिर उनका तो घूंघट रहता ही है। तब वे क्या दर्शन करती होंगी? यदि वे कुछ सुनने के लिए आतीं, तो कोई परवाह नहीं थी, लेकिन आती हैं वे दर्शन करने के लिए और दर्शन कर नहीं सकतीं। जिन आँखों में लज्जा है, वे क्या देख सकेंगी? ऐसी लज्जा क्यों होनी चाहिए? लज्जा तो पाप की होती है। ऐसी हालत में स्त्रियाँ बाहर आयें और वे काम करें, जो मैंने बताये हैं। वे समाज के दूसरे नये कामों में भी हिस्सा बँटा सकती हैं। यह बहुत कठिन काम है। जब सामने कठिन काम आता है, तब उत्साह आना चाहिए। हमारा जन्म कठिन काम करने के लिए पुरुषार्थ करने के लिए हुआ है, यह आप अच्छी तरह समझ लें।

स्त्रियों के लिए दो काम

हिन्दुस्तान में स्त्री-शक्ति कैसे आगे आये, इसके लिए मेरा चिन्तन चल रहा था। इसी बीच शान्ति-सेना एवं सर्वोदय-पात्र का काम सामने आया। यही स्त्रियों के लिए बहुत बड़ा कार्यक्रम बन गया है। सर्वोदय-पात्र का काम तो स्त्रियाँ पूर्ण रूप से कर ही सकती हैं। सर्वोदय-पात्र के बारे में लोगों का ख्याल है कि उसका बराबर जारी रहना कठिन है। लेकिन मेरा मानना है कि स्त्रियाँ इस काम को अपने हाथों में ले लें, तो वह कभी बन्द नहीं हो सकता। स्त्रियों में चिपके रहने की एक जबरदस्त शक्ति है। एक बार वे इस योजना से परिचित हो जायँ, तो फिर छोड़ेंगी नहीं।

'सत्याग्रह' के बजाय 'सत्यधृति'

हमारी माँ के पास एक देवी की मूर्ति थी। वह उसकी प्रतिदिन पूजा करती थी। माँ के देहावसान के बाद उस मूर्ति को मैंने अपने पास रखा। लेकिन बाद में मैंने उसे काशीबा को दे दिया। यह सन् '१८ की बात है। अब '५८ खतम हुआ है। बीच के इन चालीस वर्षों से काशीबा बराबर उस प्रतिमा की पूजा कर रही हैं। इतने दिनों में कितना फेर-बदल हुआ होगा? बीमारी आती है, आपत्तियाँ आती हैं और तरह-तरह के प्रसंग आते हैं, फिर भी सभी कुछ झेलते हुए इतने वर्षों से बिना किसी नागा के उस देवी-मूर्ति की पूजा करते रहना स्त्रियों का ही काम है। यह शक्ति उन्हींमें है। संस्कृत में 'धृति' शब्द है, जिसका अर्थ है—धारण कर लिया। स्त्रियों में धृति होनी है।

सर्वोदय-पात्र

इन दिनों एक शब्द चल रहा है—'सत्याग्रह'। अपने शास्त्रों में 'सत्य' और 'धृति' याने सत्य से चिपके रहने की बात है। कठोपनिषद् में एक कहानी है। नचिकेता यमराज से आत्मज्ञान की माँग कर रहा है। इस पर यमराज उसे प्रलोभन दे रहा है कि तुम यह लो, वह लो। लेकिन वह दूसरी सब चीजों को लेने से इनकार कर देता है। नचिकेता को अपनी बात पर दृढ़ देखकर यमराज ने प्रसन्न होकर कहा कि **'यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि'**। तू सत्य को पकड़ रखनेवाला है। सत्य और धृति शब्द के स्थान पर आज सत्याग्रह शब्द

चल रहा है। सत्याग्रह शब्द कुछ कमजोर है। एक हद से आगे बढ़ने पर यह शब्द इतना निर्दोष नहीं है, जितना कि 'धृति' शब्द है। इसलिए 'सत्याग्रह' के स्थान पर हम 'सत्यवृति' शब्द का उपयोग कर सकते हैं। सत्य को पकड़े रखना स्त्रियों का धर्म है। इस गुण के कारण वे सर्वोदय-पात्र का काम उठा सकती हैं।

शान्ति-सेना

शान्ति-सेना का काम भी स्त्रियों के लिए बहुत आसान है। जहाँ दो पक्ष लड़ते हों, वहाँ शान्ति की मूर्ति कोई महिला आकर खड़ी हो जाय, तो बस झगड़ा खतम ही समझिये। झगड़े की परिस्थिति में स्त्रियाँ उसे रोकने की हिम्मत करें, यही मेरी माँग है। शान्ति-सेना के लिए आदेश होने पर कहीं भी अन्यत्र जाना स्त्रियों के लिए सम्भव न हो, तब भी कोई हर्ज नहीं है। वे अपने-अपने स्थानों पर रहकर भी शान्ति का काम कर सकती हैं।

स्विट्जरलैण्ड में स्त्रियों को वोटिंग का अधिकार नहीं है और वे वोट देने का हक चाहती भी नहीं हैं। आखिर इसका कारण क्या है? पुरुषों की चोटियाँ स्त्रियों के हाथ में रहें, तो उन्हें चुनाव के पीछे दौड़ने की क्या आवश्यकता है? माताओं के हाथों में बच्चे होते हैं। वे जानती हैं कि बच्चों के झगड़े में पड़कर क्या करना है? यह कहकर मैं आपके हाथों से वोट का हक छीनना नहीं चाहता, पर मैं आपको यह सुझा रहा हूँ कि आपको अधिकारों की छीना-झपटी में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है। अगर स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी करने के चक्कर में न पड़ें, तो वे उनको नियन्त्रण में रख सकती हैं और निष्पक्ष भूमिका रखने में सहायक हो सकती हैं।

बापू का सपना साकार बनायें

लोकतन्त्र में विरोधी पक्ष आवश्यक माना जाता है, ताकि वह सत्ताप्राप्त दल को अनियंत्रित होने से रोक सके। मैं भी मानता हूँ कि सत्तारूढ़ पक्ष को अच्छे कामों में मदद देने, हिम्मत बँधाने और गलत कार्यों से रोकने के लिए दूसरे पक्ष की जरूरत होती है। परन्तु जब दोनों पक्ष सत्ताभिलाषी हों, सत्ता के आसपास ही दोनों का नृत्य चल रहा हो, तो वे एक-दूसरे को ठीक करने के

बजाय एक-दूसरे के गुणों को ही चूस लेते हैं। इसलिए प्रजातन्त्र की पूर्ण शुद्धि सत्ताभिलाषी विरोधी पक्ष से नहीं हो सकती। उसके लिए तो तीसरे ही पक्ष की जरूरत होगी, जो तटस्थ रहकर रचनात्मक दृष्टि से टीका करने के साथ-साथ निष्पक्ष भाव से सेवा करता रहे। बापू ऐसा ही पक्षमुक्त समाज बनाना चाहते थे। उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि कांग्रेस का रूपान्तर लोक-सेवक-संघ में हो जाय और वह चुनाव से दूर रहकर सभी पक्षों पर असर डालने में सक्षम बने, लेकिन वैसा न हो सका। अब वह जिम्मेवारी आप लोग उठाकर बापू के लोक-सेवक-संघ के सपने को साकार बनायें।

महिलाएं शान्ति की जिम्मेदारी लें

जब कभी मैं सरकारी कर्मचारियों, राजनैतिक पक्षवालों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं से मिलता हूँ, तो उनसे यही कहता हूँ कि "तुम भले ही पक्षों में पड़े रहो, मैं तुमसे कुछ भी नहीं कहना चाहता; लेकिन तुम अपनी माताओं, स्त्रियों, बहनों तथा लड़कियों को मेरे हाथों में सौंप दो। उनकी शक्ति मेरे लिए बस है। फिर वे ही अपने बच्चों, पतियों, भाइयों और पिताओं को गलत कामों से रोक सकती हैं।" इससे आप समझ सकती हैं कि मैंने स्त्रियों से कितनी अपेक्षाएँ रखी हैं। इसलिए अब समाज में अशान्ति न हो, क्षोभ न हो, शोक न हो यानी समता, करुणा और शान्ति बनी रहे, उसके लिए आपको जिम्मेवारी उठानी होगी।

विज्ञान के युग में अब जितने भी सवाल उठते हैं, उनका समाधान भी क्षोभरहित चित्त से ही होना चाहिए। इसीलिए मैंने स्थितप्रज्ञ के लक्षणों की इस जमाने के लिए अनिवार्य आवश्यकता मानी है। इस जमाने में छोटे-से-छोटे मसले फौरन विश्वरूप ले लेते हैं, अतः उन मसलों का फैसला तत्काल करना पड़ता है। इस स्थिति में अस्थितप्रज्ञ होने से कैसे चल सकेगा? मसले जितने बड़े होते हैं, उनका निर्णय उतनी ही जल्दी करना होता है। इन दिनों जिनके पास निर्णायक बुद्धि होगी, वे ही तारण करने में समर्थ होंगे। यह काम स्त्रियाँ कर सकती हैं। वे स्वाभाविक तौर से मातृ-स्थान हैं। उनके चित्त में सबके लिए समत्व, ममत्व, प्रेम और करुणा है, इसलिए उनकी प्रज्ञा में स्थिरता

और तटस्थ भूमिका रहनी चाहिए। यदि बहनें इस स्थिति में आ जायँ, तो निःसंदेह उनका असर कुल-के-कुल पक्षों पर होगा।

बहनें ब्रह्मविद्या प्राप्त करें

भूगोल, राजनीति, गणित आदि विद्याओं में पुरुष पारंगत होना चाहें, तो हों; लेकिन आप सब बहनों को ब्रह्मविद्या प्राप्त करनी चाहिए। मैंने कस्तूरबा ट्रस्ट की बहनों का भी ध्यान इसी ओर आकृष्ट किया है। मैंने उन बहनों को कहा था कि तुम उनको तालीम देती हो, परन्तु ब्रह्मविद्या के अभाव में तुम्हारी इस तालीम का कोई उपयोग नहीं होगा। बीस-बाईस वर्ष की अकेली जवान लड़की प्रतिकूल परस्थितियों में जब देहातों में काम करेगी, तब आध्यात्मिक शक्ति के बिना कैसे टिक सकेगी? अभी मैं चित्तौड़ से आ रहा हूँ। वहाँ मुझे मीरा का दर्शन हुआ था। उसमें कितना त्याग और कितना साहस था! अपने जमाने की सारी मर्यादाएँ तोड़कर वह बाहर आयी थी। उसने जो बहादुरी दिखायी, वह भारत के इतिहास में अद्‌भुत है। जहाँ राजस्थान में आज भी परदे का रिवाज है, वहाँ मीरा परदा तोड़कर नाच उठती है:

'पद घुंघरु बाँध मीरा नाची रे।
लोग कहें मीरा भई रे बावरी न्यात कहे कुलनासी रे!'

लोग उसे पागल कहते हैं, कुल का विनाश करनेवाली कहते हैं; फिर भी वह किसीकी परवाह नहीं करती। आखिर यह हिम्मत उसमें कहाँ से आयी? मीरा की शादी की बात चली, तो उसने कहा कि मैं तो श्री गोपाल के चरणों की दासी हूँ। फिर भी मीरा की शादी कर दी गयी, तो उसने अपने पति का भी ऐसा जीवन-परिवर्तन किया कि वह पति न रहकर भक्त बन गया। मीरा जैसी ही हालत रामकृष्ण की भी थी। पहले रामकृष्ण पागल माने जाते थे। उन्होंने अपनी पत्नी की देवी समझकर पूजा की। मूर्ति के सामने बैठकर जैसे गन्ध, फूल, आरती से पूजन किया जाता है, वैसे ही उन्होंने किया, तो उनकी पत्नी का भी परिवर्तन हो गया। मैं यह कहना चाहता हूँ कि रामकृष्ण और मीरा में जो ताकत थी, वह ब्रह्मविद्या की थी। स्त्रियों को इसी ब्रह्मविद्या की अत्यन्त आवश्यकता है। हृदय में चाह हो, लगन हो, तड़पन

हो, तो ब्रह्मविद्या की 'इच्छामात्रेण' प्राप्ति होती है। मैं चाहता हूँ कि आप सबके हृदय में इसकी प्राप्ति के लिए आकांक्षाएँ उत्पन्न हों।

अजमेर
२८-२-'५९

परिशिष्ट : ७

साहित्यिकों से

साहित्यिक हमें आशीर्वाद दें

[विनोबा]

मुझे बहुत ही खुशी होती है, जब साहित्यिकों के बीच में अपने को पाता हूँ। मुझे वह स्थान मिल जाता है, जहाँ मुझे झुकना चाहिए। सिर झुकाने के जितने स्थान हों, उतना ही मनुष्य का विकास शीघ्र होता है। जिसे सारी सृष्टि में, कण-कण में और प्रत्येक पदार्थ में आत्म-दर्शन होगा, परमात्मा की विभूति का दर्शन होगा, उसके लिए तो सर्वत्र ही सिर झुकाने की सहूलियत होगी। ऐसे जितने स्थान उपलब्ध हों, उतना ही मनुष्य के लिए अच्छा है। मेरे लिए साहित्यिकों का एक ऐसा स्थान है कि जहाँ स्वभाव से ही मैं नम्र हो जाता हूँ। वैसे अपने में मैं इतना नम्र नहीं हूँ, जितना विशेष स्थानों में नम्र बन जाता हूँ।

दुर्लभ श्रोता

साहित्यिक तो मैं नहीं हूँ, लेकिन एक दृष्टि से देखा जाय, तो मैं साहित्यिकों की प्रेरणा हूँ। वह इस अर्थ में कि साहित्यिकों को प्रेरणा तब मिलती है, जब उनकी बात प्रेम से सुननेवाले मिल जाते हैं। साहित्यिक कोई ज्यादा माँग तो करते ही नहीं हैं। दूसरे लोग दुनिया से माँग किया करते हैं, लेकिन साहित्यिक तो इतना ही कहते हैं कि "सिर्फ मेरी बात सुन लो, फिर छोड़ देना हो, तो छोड़ देना और कुछ लेना हो, तो ले लेना। तुम्हारी मर्जी की बात है। जो सूझे सो करो,

लेकिन मेरी बात सुन लो।" इतने में ही साहित्यिक को संतोष हो जाता है। इतने कम में संतोष माननेवाला शायद ही कोई दूसरा हो; इसलिए जब उनको मेरे जैसा श्रोता मिल जाता है, तो मुझसे उन लोगों को प्रेरणा मिल जाती है। साहित्यिकों का श्रोता भी दुर्लभ ही होता है। वह विचारों को समझे और चाहे वे विचार अपने विचारों से कितने ही भिन्न हों, विरुद्ध हों; फिर भी उन्हें समझे—भले ही उन्हें मान्य न करे, फिर भी वह उनका मर्म समझे और विरोधी विचार का भी रस-ग्रहण कर सके। ऐसा जो व्यक्ति हो, उसीका नाम है साहित्यिकों का श्रोता।

साहित्यिकों की खूबी यह है कि एक साहित्यिक का दूसरे साहित्यिक के साथ मेल बैठता नहीं। साहित्यिक की यह भी खूबी है कि वह प्रतिक्षण बदलता रहता है। विसंगति उसके जीवन में होगी ही नहीं, क्योंकि नित्य बदलते रहना ही उसका जीवन होना चाहिए। उसको वह संगति समझेगा। फिर भी वह भीतर ही भीतर एक एकता महसूस करेगा। ऐसे अनेक साहित्यिकों के पास पहुँचकर सबका रस ग्रहण करनेवाला, साहित्यिकों की इज्जत करनेवाला और सबके मुख्तलिफ विचारों में से कुछ-न-कुछ ग्रहण करनेवाला श्रोता भी दुर्लभ होता है। ऐसे दुर्लभ श्रोताओं में से मैं हूँ। इसीलिए उनके सामने मेरा सिर झुक जाता है।

वाणी का महत्त्व

'यावत् ब्रह्म तिष्ठति तावत् वाक्!' ऋग्वेद में यह वचन आया है कि 'ब्रह्म जितना व्यापक है, वाणी भी उतनी ही व्यापक है।' यहाँ 'वाक्' शब्द का अर्थ केवल स्थूल वाणी नहीं है, जिससे हम बोलते हैं; बल्कि एक ब्रह्म-शक्ति है, जिसके आधार से मनुष्य चिन्तन करता है। इसे चिन्तन-प्रकाशन कहते हैं। चिन्तन को समझना पड़ता है। चिन्तन करना, उसे प्रकाशित करना और उसे समझना—ये तीनों बातें वाणी के जरिये होतीं हैं। मन चिन्तन करता है, वाणी बोलती है और कान सुनते हैं। मन, वाणी और कान ये भेद तो स्थूल हैं, परन्तु यहाँ तो 'वाक्' शब्द इस्तेमाल किया है, जिसमें मन, वाणी और कान—तीनों आ गये। वाक्-शक्ति का अर्थ है—साहित्य।

साहित्य से ब्रह्म-चिन्तन और आगे जाकर ब्रह्म-प्रकाशन कर सकते हैं। इसके बिना ब्रह्म अप्रकाशित रह जायगा। साहित्यिकों का ध्यान स्वभावतः सृष्टि में जो कुछ भला और बुरा, गुप्त और प्रकट चलता है, उसकी ओर रहता है। वर्तमान-वृत्ति और भविष्य-वृत्ति, जिसकी प्रेरणा आज होती हो और जिसकी प्रेरणा कल भी होती हो, ऐसी सब चीजों का ध्यान साहित्यिक रखता है। तो जो काम मैंने सात-आठ सालों से उठा लिया है, उस तरफ साहित्यिकों का ध्यान है और वह होना ही चाहिए। साहित्यिकों से ऐसा कहना अज्ञान है कि आप आइये, हमारी सहायता कीजिये और हमारे काम की ओर ध्यान दीजिये। जो साहित्यिक होता है, ऐसी बातों की ओर उसका ध्यान होता ही है। साहित्यिक इधर ध्यान देता नहीं, यह सब उसके ध्यान में आ ही जाता है। हम यह महसूस नहीं करते हैं कि साहित्यिक इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं। मुझे अनुभव भी ऐसा ही आया है। जब कभी साहित्यिकों से बात करने का मुझे मौका मिला है, तब मैंने यह पाया है कि उनके दिल में हमारे काम के प्रति खूब सहानुभूति है। हर प्रान्त की हर भाषा में जो मंगल है, जो सत्य है, जो शिव है, उस तरफ साहित्यिकों की स्वाभाविक ही सहानुभूति होती है। भूदान, ग्रामदान और मालकियत छोड़ने की बात, शरीर-परिश्रम का महत्त्व, विश्व-मानुष का निर्माण—ये सारी बातें ऐसी हैं कि अगर उनका जड़ अर्थ किया जाय, तो उसमें से दोष पैदा होंगे। परन्तु केवल स्थूल अर्थ न करते हुए सूक्ष्म दृष्टि से उस ओर देखें, तो वह एक बहुत ही मंगल और शुभ विचार है।

दिगम्बर स्थिति की प्राप्ति

तो साहित्यिकों की सहानुभूति स्वाभाविक ही होती है। हम जब साहित्यिकों के पास पहुँचते हैं, तो हम अपने को निर्भय पाते हैं। यह इसीलिए होता है कि इतने वर्षों के अभ्यास से मैं दिगंबर बन गया हूँ। लोगों के सामने नग्न ही खड़ा हो जाता हूँ। मैं जैसा हूँ, वैसा ही दुनिया के सामने खड़ा हो जाता हूँ। साहित्यिकों को वह मनुष्य अत्यन्त प्रिय होता है, जो चाहे जितना गिरा हुआ हो, परन्तु जो नग्न हो। उन पर साहित्यिकों का बहुत प्यार होता है। तो इन दिनों बिल्कुल ही नग्न हो गया हूँ। वाणी में मैं संयम नहीं रखता हूँ,

वर्ताव में मैं संयम नहीं रखता हूँ। मैं बहुत ज्यादा जानता भी नहीं हूँ कि संयम कैसे रखना चाहिए। थोड़ा-सा जानता हूँ, फिर भी उसका पालन नहीं करता हूँ और जो सहज सूझता है, वह बोलता हूँ। जो सुझाव सहज ही कहने जैसा मालूम होता है, वह मैं कह देता हूँ। किसी संस्था में मैंने अपना स्थान नहीं रखा है। इसीलिए चित्त को कोई बाह्य उपाधि भी खास रही नहीं। साहित्यिकों को नग्नता प्रिय होती है। वह नग्नता की प्राप्ति मुझे हो गयी है। इसीलिए आपकी टोली में मैं अपने को निर्भय ही पाता हूँ।

विश्वास की भारी शक्ति

कल शाम को मैंने कहा था कि अब इसके आगे हमको किसी प्रकार से संकुचित बनना या बने रहना सुखकर नहीं होगा। विज्ञान की शक्ति मदद में आयी है और आत्मज्ञान की शक्ति तो अपने देश में थी ही। आत्मज्ञान हमको व्यापकता सिखाता ही था, परन्तु विज्ञान अब उसे भौतिक आवश्यकता बना देता है। इस विज्ञान-युग में अगर हम व्यापक नहीं बनेंगे, तो हमारा भौतिक जीवन अशक्य हो जायगा। ऐसी परिस्थिति विज्ञान उपस्थित करता है, इसीलिए आत्मज्ञान और विज्ञान एक हो जाते हैं। इन दो के अलावा मुझे एक और शक्ति का दर्शन हुआ है। उस तीसरी शक्ति को मैं 'विश्वास-शक्ति' कहता हूँ। विज्ञान-युग में विश्वास-शक्ति की बड़ी जरूरत है। राजनीति में, सामाजिक योजनाओं में और समाज-शास्त्र में इसकी बहुत जरूरत है। हममें जितनी विश्वास-शक्ति होगी, उतने से हम इस काल के लायक रहेंगे। इन दिनों अविश्वास बहुत दीखता है। खास करके राजनैतिक, धार्मिक और पांथिक क्षेत्र में यह पुरानी चीज चली आयी है। परन्तु वह टिकनेवाली नहीं है। यदि हम उसे टिकाना चाहेंगे, तो भी वह टिकेगी नहीं। राजनीति में अविश्वास को एक बल माना गया है, उसे सावधानता का लक्षण माना गया है। मैं मानता हूँ कि जिस क्षण में मन में यत्किंचित् अविश्वास पैदा हुआ, वह क्षण हमारे लिए असावधान है। पूर्ण विश्वास के बिना राजनीति सुधरेगी नहीं। राष्ट्रों का झगड़ा बढ़ेगा। पांथिक झगड़े भी बढ़ेंगे और विज्ञान-युग में उसका परिणाम बहुत खतरनाक होगा। इसीलिए वेदान्त और विज्ञान के साथ मैंने विश्वास को भी जोड़ दिया है और इन तीनों तत्त्वों की मैं आजकल उपासना करता हूँ।

तीन महान् शक्तियाँ

इन दिनों मैंने संस्कृत में एक श्लोक वनाया है, जो मेरा जप का मन्त्र हो गया है। और सारे भारत में वह चले, इसलिए यह संस्कृत में वनाया है :

वेदान्तो विज्ञानं विश्वासश्चेति शक्तयस्तिस्रः।
येषां स्थैर्ये नित्यं शान्तिसमृद्धी भविष्यतो जगति ॥

वेदान्त, विज्ञान और विश्वास—ये तीन शक्तियाँ हैं और इन तीनों शक्तियों के स्थैर्य से दुनिया में शान्ति, समृद्धि होगी। आज दुनिया को शान्ति और समृद्धि की जरूरत है। वह वेदान्त, विज्ञान और विश्वास से ही हो सकेगी। वेदान्त याने वेद का अन्त, वेद का खातमा। वेद याने सव प्रकार के काल्पनिक धर्म, Conventional धर्म दुनियाभर में जितने हैं, उन सवका अन्त याने वेदान्त! तो इस्लामांत, जैनान्त, वौद्धान्त, सिखान्त, ख्रिस्तांत—इन सवका अन्त इसमें आ जाता है। वेदान्त से मेरा मतलव है वायवलान्त, कुरानान्त आदि जितने भी हैं, उन सवका अन्त। सत्य की खोज, सत्य की पहचान और सत्य को मानना—यह वेदान्त है। विज्ञान है सृष्टि-तत्त्व की खोज। उसके अनुकूल यदि हमारा शारीरिक जीवन वनेगा, तो सम्पूर्ण स्वास्थ्य की उपलब्धि होगी। आगामी युग का चित्र जव मैं अपने मन में खड़ा करता हूँ, तो लगता है कि वह एक ऐसा युग होगा, जिसमें हर वीमारी के लिए उपाय उपलब्ध होंगे, लेकिन मनुष्य को कोई भी वीमारी होगी नहीं। उपाय उपलब्ध होंगे, लेकिन उपायों के उपयोग का मौका उपलब्ध नहीं होगा। आँख के लिए उत्तम चश्मा उपलब्ध है, परन्तु आँखों को चश्मे की कोई जरूरत नहीं। वना हुआ चश्मा म्यूजियम में या संग्रहालय में तैयार रहेगा। हर गाँव में डॉक्टर हो—ऐसा आदर्श इन दिनों माना जाता है; लेकिन आगे की दुनिया में डॉक्टर का नाम नहीं होगा। उसमें सव तन्दुरुस्त होंगे, वीमारियों से पीड़ित होकर कोई पड़ा रहे, ऐसा नहीं होगा। वीमारी के कारणों का निर्मूलन नहीं होता है, इसीलिए उपायों का उपयोग करने का मौका मिलता है। यह जव तक नहीं वनेगा, तव तक सृष्टि-विज्ञान-तत्त्व का चिन्तन करके इसके अनुसार हम अपने जीवन को नहीं वना सकेंगे।

आप परीक्षण करें

विज्ञान और परस्पर विश्वास होना चाहिए। फिर वह राजनीतिक क्षेत्र हो, सामाजिक क्षेत्र हो या कौटुंबिक क्षेत्र हो। ये तीनों शक्तियाँ दुनिया के लिए तारक होंगी, ऐसा मैंने माना है और यही मैं आपके सामने रखता हूँ। उसमें आपको अगर कोई शुद्धि करनी है या वृद्धि करनी है, तो आप कर ही सकते हैं। यह मेरा सौभाग्य रहा है कि हिन्दुस्तान की सब भाषाओं के सर्वोत्तम साहित्य से परिचय करने का मौका मुझे मिला है। सभी भाषाओं में जो साहित्य है, उसका आस्वादन करने का मौका हमें मिला है और नित्य कुछ-न-कुछ अध्ययन मैं करता ही रहता हूँ। बीच में एक जापानी भाई दो महीना साथ थे। उतने में उन्होंने मुझे जापानी भाषा सिखायी। एक जर्मन बहन साथ में थी, जिसने मुझे जर्मन भाषा सिखायी। इस तरह मैं सीखता ही रहता हूँ, क्योंकि मैं स्वभाव से विद्यार्थी ही हूँ। मेरी आपसे प्रार्थना इतनी ही है कि हम जो कर रहे हैं, उस तरफ आपका ध्यान तो है ही, परन्तु उसका परीक्षण भी आप करें। परीक्षण की दृष्टि से हमारे सामने आप अपना निचोड़ रखिये, तो हमें बड़ी मदद मिलेगी। हम चाहते हैं कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच जो भेद हैं, और हिन्दुस्तान के भीतर भी जो अनेक प्रकार के भेद हैं, वे सब न रहें; बल्कि एक पूर्ण वस्तु बने। विविध अंगमात्र बने रहें, भेदरूप न बनें, ऐसा हम चाहते हैं और उस दृष्टि से हम कुछ काम करना चाहते हैं।

साहित्यिकों का आशीर्वाद मिले

अब हमें पंजाब और कश्मीर जाना है। भूदान, ग्रामदान आदि विचार वैसे पहले से ही संकुचित तो था ही नहीं, यह एक विशिष्ट विचार था; परन्तु अब वह विशिष्ट से आगे बढ़कर व्यापक बन गया है। पंजाब और कश्मीर में हम ऐसा मन लेकर जा रहे हैं कि वहाँ के लोगों के साथ हम जितना एकरस हो सकते हैं, उतना होने की कोशिश करें और विविधता से भरी हुई एकता का दर्शन सारी दुनिया में हो। लेकिन इसके लिए साधनरूप भारत और पाकिस्तान हो। पाकिस्तान आज हर साल सैन्य के पीछे कम-से-कम सौ करोड़ रुपये खर्च करता है। हिन्दुस्तान भी तीन सौ करोड़ रुपया हर साल सैन्य के पीछे खर्च

कर रहा है। लश्कर पर चार सौ करोड़ रुपया खर्च करना बहुत ज्यादा खर्च होता है। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान, इन दोनों का खर्च मिलकर हमारा ही खर्च होता है। दाहिना हाथ और बायाँ हाथ, दोनों शस्त्र-सज्ज हैं, यह चीज हमें बहुत दुःख देती है। हमारे मन में आता है कि भिन्न-भिन्न राष्ट्र भले ही बने रहें और अपने-अपने ढंग का जीवन बिताते रहें; परन्तु जैसे एक ही राष्ट्र में एक प्रान्त में से दूसरे प्रान्त में जाने के लिए किसी 'वीसा' या 'पासपोर्ट' की जरूरत नहीं रहती है, फिर हम चाहे कहीं भी जायँ, वैसे ही किसी भी देश में हम बिना पासपोर्ट जा सकें, ऐसा होना चाहिए। हम कुल विश्व के नागरिक हैं, ऐसी व्यवस्था हो, यह चाहते हैं। इस प्रकार की चाह हृदय में लेकर हम पंजाब और कश्मीर जाना चाहते हैं। आपका आशीर्वाद हमें मुहैया हो, तो यह काम हमसे बन सकता है, अन्यथा हमारा तो प्रयत्न होगा। उसकी फलश्रुति परमेश्वर को समर्पण करके हम काम करते रहेंगे। हमारी इस इच्छा का कुछ रूप बने, इसीलिए आपके आशीर्वाद की हमने अपेक्षा रखी है।

अजमेर
प्रातः २८-२-'५९

परिशिष्ट : ८

भारत-सेवक-समाज से

भारत-सेवक-समाज मेरा समाज

[विनोबा]

[भारत-सेवक-समाज की एक टोली दिल्ली से अजमेर तक पदयात्रा करते हुए आयी थी। वह टोली विनोबाजी से मिली। उसे विनोबाजी ने सम्बोधित किया।]

आपने पदयात्रा की। यह आपने बड़े पते की बात की है। पदयात्रा से

कुछ ऐसे लाभ मिलते हैं, जो और तरीकों से नहीं मिलते हैं। पदयात्रा का यह बहुत बड़ा अनुभव है। आपने देखा होगा और आपने यह महसूस किया होगा कि आपके जीवन का यह सबसे मूल्यवान् समय था। आप अपने जीवन में इसका उपयोग करेंगे, ऐसा जब मैं सुनता हूँ, तब मुझे बहुत आनन्द होता है। यह भी सोचना चाहिए कि पदयात्रा से मुक्त चिन्तन होता है। आकाश के साथ जो संपर्क आता है, वह बहुत उन्नत होता है और उसका हमारे दिमाग पर बहुत ही अद्भुत परिणाम होता है। अभी आपने यह महसूस किया होगा। इसलिए चिन्तन के लिए पदयात्रा का बहुत बड़ा उपयोग है।

जनता से सम्पर्क

दूसरी पते की बात जो आपने कही, वह यह कि पदयात्रा से जनता के साथ हमारा सीधा संपर्क आता है। हम उनमें से ही एक हैं, ऐसा जनता को महसूस होता है। गाँव-गाँव हम लोगों के पास पहुँचते हैं, तो उन्हें उससे बहुत खुशी होती है। कुछ लोग जहाँ गाँव में आग लगाने के लिए पहुँचते हैं, वहाँ हम सेवा के लिए पहुँचते हैं। इससे उनके दिल को ठंडक पहुँचती है। अपनी सभ्यता में और परंपरा में एक के बाद एक ऐसे वीर-महावीर निकलते हैं, जो इस तरह लोगों के पास पहुँचकर जनता को ज्ञान देते हैं। आपके जैसे लोग गाँववालों से मिलते हैं, तो उनकी भलाई की बात करते हैं। आप पक्षमुक्त चिंतन करते हैं, तो प्रजा को बहुत आनन्द होता है। इसलिए पदयात्रा का पूरा लाभ भारत-सेवक-समाज उठाये।

सेवक-समाज मेरा ही समाज

मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप पक्षमुक्त समाज हैं और आपसे ऐसी अपेक्षा है। मैं भी भारत में पक्षमुक्त समाज बनाना चाहता हूँ। इसलिए भारत-सेवक-समाज मेरा समाज है। मैं आशा करता हूँ कि आप अपनी सेवा सारे समाज को देंगे। सबसे बड़ी बात यह है कि दुःख-निवारण की जिम्मेवारी आप पर है। गाँव में जो सबसे ज्यादा दुःखी है, उसकी तलाश आपको करनी होगी। उसकी सेवा आप कर सकते हैं, उसकी चिन्ता आप करें, तो सर्वोदय हो जाता है। इसलिए हमने घर-घर में सर्वोदय-पात्र का कार्यक्रम लिया है। उसी

तरह सर्वोदय-साहित्य भी लोगों के पास पहुँचना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि आप यह काम उठायें। भारत-सेवक-समाज है, तो पूरे भारत की सेवा आपको करनी है। भावार्थ यही है कि समग्र भारत की सेवा हम करते हैं, यह भावना होनी चाहिए।

परस्पर सहयोग रहे

मैं चाहता हूँ कि भारत-सेवक-समाज में और सर्वोदय-समाज में सहयोग और सहकार हो। जो बातें हम दूसरे लोगों से कहते हैं, वे हम अपने जीवन में लाने की कोशिश करें। ऐसी अपेक्षा सेवकों से की जाती है। मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मेरी मदद आप जितनी चाहेंगे, उतनी आपको मिलेगी और उसकी कोई 'ऑफिशियल' कीमत नहीं होगी। आपके नेताओं से आपको 'ऑफिशियल' मदद मिलेगी। लेकिन मैं जो मदद आपको दूंगा, वह मदद लेने की जिम्मेवारी आपकी रहेगी। वैसे तो मेरा हाथ सबके लिए आगे बढ़ा है, परन्तु मैं आपका मित्र होकर आपको सलाह दूंगा। अगर आप मेरी सलाह मानते हैं, तो भी मैं राजी हूँ और नहीं मानते हैं, तो भी राजी हूँ; बल्कि अधिक राजी हूँ, क्योंकि मैं चाहता हूँ कि मेरा कोई दबाव न पड़े और हर कोई स्वतन्त्र चिंतन करे। मेरी बात बिना समझे कोई मानता है, तो मुझे दुःख होता है। अगर कोई मेरी बात न माने, क्योंकि वह उसे नहीं जँचती है, तो मुझे उतना ही आनन्द होता है, जितना कोई मेरी बात समझने पर मानता है। किसी तरह का आग्रह मेरे विचार में नहीं है। मैं आज्ञाकारी नहीं हूँ, सलाहकारी हूँ। मेरी तरफ से आपको सलाह मिलेगी और जितनी आप चाहेंगे, उतनी मदद मैं आपको दूँगा और आपसे भी मदद चाहूँगा।

अजमेर

२८-२-'५९

दरगाह शरीफ में

[विश्व की मुसलिम जनता के लिए मक्का शरीफ के वाद दूसरा पवित्र-स्थल है—अजमेर यहाँ की दरगाह शरीफ की जियारत करने के लिए विश्व के कोने-कोने से मुसलिम भाई आया करते हैं। अवकी वार वावा ने इसी नाते सम्मेलन का स्थान अजमेर पसन्द किया। स्वाभाविक था कि वे दरगाह शरीफ में जाते, पर उसके पहले ही दरगाह के नाजिम ने श्री यज्ञदत्त उपाध्याय के पास निमंत्रण भेजकर यह प्रार्थना की कि शान्ति और प्रेम के पुजारी वावा वहाँ अवश्य पधारें और उनके साथ हर कोई यहाँ आ सकता है।

Copy of the letter addressed to Shri Y. D. Upadhyaya from Administrator Dargah.

Dated 18th February '59.

My dear Panditji,

I understand that Babaji is visiting Ajmer shortly. I hope he will visit Dargah also. We would certainly like him to visit the Shrine of the Saint. I want to make it clear that everybody is most welcome to the Shrine, because the ideal of the great Saint was Peace and Love. I hope you will kindly extend an invitation on my behalf to Vinoba Bhaveji and let me know the date and time of his visit.

Yours truly,
Sd/- A. Shah
Nazim

१ मार्च १९५९ को सवेरे ५ वजे वावा के साथ कोई दस हजार स्त्री-पुरुष दरगाह में पहुँचे। सज्जादानशीन ने दरगाह के पहले दरवाजे पर आकर वावा

का स्वागत किया और अत्यन्त आदरपूर्वक भीतर ले गये। उन्होंने बाबा के सिर पर पगड़ी बाँधी और पुष्पमालाएँ पहनायीं।

दरगाह में इबादत करने के बाद बाबा जब चौक में पधारे, तो नाजिम ने उनका स्वागत करते हुए कहा कि विनोबा मुल्क के रूहानी इन्सान हैं। उन्होंने खिदमते खल्क का जो काम उठाया है, उसमें हरएक को शिरकत करनी चाहिए।

बाबा ने स्वागत का उत्तर देते हुए छोटा-सा प्रवचन किया।]

इबादत के लिए तीन चीजें जरूरी

[विनोबा]

दस साल पहले मैं यहाँ एक दफा आया था। सात दिन यहाँ मुकाम रहा। वे दिन ऐसे थे कि लोगों का दिमाग ठिकाने नहीं था। इसीलिए मैं यहाँ आया था। मुझे खुशी है कि आज सब हिन्दू-मुसलमान यहाँ पर मिल-जुलकर रहते हैं।

कहीं-कहीं पर मन्दिरों-मसजिदों में सब लोगों के जाने की मनाही रहती है। कुछ खास-खास लोग ही वहाँ घुसने पाते हैं। यह ठीक नहीं। ऐसा होना चाहिए कि सभी इबादतगाहों में बिना किसी भेदभाव के सभी लोग जा सकें। यों इबादत के लिए न मन्दिर की जरूरत है, न मसजिद की। हर जगह इबादत की जा सकती है। इस सिलसिले में सब भेदभाव मिटा देने चाहिए और सबको मिलकर रहना चाहिए।

भक्ति के लिए, इबादत के लिए सिर्फ तीन चीजों की जरूरत है। कुरान शरीफ में कहा गया है—सब्र, रहम और हक। मैं इन्हें प्रेम, करुणा और सत्य कहता हूँ। सबको मुहब्बत से रहना चाहिए, सब पर रहम करना चाहिए और गरीबों को दिल खोलकर देना चाहिए।

दरगाह शरीफ, अजमेर

१-३-'५९

शान्ति-सेना की रैली

[सम्मेलन की परिसमाप्ति के दूसरे दिन २ मार्च '५९ को प्रातःकाल पाँच बजे शान्ति-सैनिकों का एक दल अजमेर से गगवाना के लिए निकला। **'शान्ति के सिपाही चले, क्रान्ति के सिपाही चले'** गाते हुए सभी सैनिक चार-चार की कतार में चल रहे थे। सबसे आगे थे—विनोवा। उनके पीछे कदम से कदम मिलाते हुए श्री जयप्रकाश नारायण, रविशंकर महाराज, अप्पासाहब पटवर्धन, केलप्पन, सिद्धराज ढड्ढा, चारुचन्द्र भंडारी, वैद्यनाथप्रसाद चौधरी, श्रीमती अमलप्रभा दास, ठाकुरदास बंग आदि ८७० शान्ति-सैनिक थे।† साढ़े नौ मील चलकर सभी सैनिक पौने नौ बजे गगवाना हाईस्कूल के मैदान में पहुँचे। उस समय शान्ति-सैनिकों की इस रैली का दृश्य देखकर लोग गद्गद हो रहे थे। किसी को दाँडी-कूच-सत्याग्रह के दिनों का स्मरण हो रहा था, तो कोई उसे 'देव-दुर्लभ दृश्य' कह रहा था। उस अद्भुत रैली का दर्शन कर विनोबाजी भाव-विह्वल हो उठे।

दस बजे से साढ़े दस बजे तक सूत्र-यज्ञ हुआ। उसके पश्चात् श्री वल्लभस्वामी की अध्यक्षता में शिविर का कार्यक्रम चला। आये हुए शिविरार्थियों के मन में कुछ समस्याएँ थीं, कुछ विचार थे और भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न भी थे। उन सभीको ध्यान में रखते हुए आरम्भ में विनोबाजी ने छोटा-सा प्रवचन किया।]

विनोबा :

शांति-सेना का आरम्भ बापू ने कर ही दिया था। वे शांति-सेना के सेनापति तथा प्रथम सैनिक भी थे। वे दोनों नातों से अपना काम पूरा करके चले गये।

---

† शान्ति-सैनिकों की प्रान्तवार संख्या इस प्रकार थी :

उत्तर प्रदेश १९७, केरल १८, कश्मीर १, पंजाब २७, महाराष्ट्र १२१, बिहार १०३, मध्यप्रदेश ५१, गुजरात ७९, दिल्ली ३, तमिलनाड १९, मैसूर २७, बंगाल ३०, राजस्थान ४२, असम ३, बंबई २४, आन्ध्र ५५, उड़ीसा ४९ और नेपाल १।

शांति-सेना की वात नयी नहीं, पुरानी है। सन्तों ने ऐसी सेना बनायी भी है। दुनिया के भिन्न-भिन्न देशों में उसका इतिहास भी पढ़ने को मिलता है। मैंने जब तेलंगाना में प्रवेश किया था, तब जाहिर किया था कि मैं यहाँ पर शांति-सैनिक के नाते आया हूँ। शान्ति-सेना का आरम्भ मेरे लिए वहीं से हो गया था। तब से आज तक यही खयाल मन में रहा है कि मैं शांति-सैनिक के नाते ही घूम रहा हूँ। अभी कश्मीर जाने की वात सोची गयी है। उसमें भी मेरी यही दृष्टि रहेगी। कश्मीर में अभी प्रवेश नहीं हुआ है। वहाँ कोई शांति-सैनिक भी नहीं बने हैं, लेकिन आज कश्मीर का नाम लेते ही एक सैनिक बहन खड़ी हुई। उसने पाँच मिनट पहले ही अपना नाम शांति-सैनिक के लिए हमारे पास दिया है। इसलिए आज यहीं से कश्मीर का आरम्भ हो गया है। यही एक शुभ शकुन है। मैं अपनी कश्मीर-यात्रा से बहुत ज्यादा अपेक्षा नहीं रखता हूँ। केवल निरीक्षण की ही अपेक्षा लिये हुए वहाँ जा रहा हूँ। ईश्वर ने चाहा, तो कश्मीर में बहुत अच्छी सेना बन सकती है। राणा प्रताप के नाम से राज-स्थान से मैंने कुछ आशा रखी थी। अपनी यात्रा में मैंने देखा है कि वह यहाँ पूरी हो सकती है और सेना खड़ी हो सकती है।

शान्ति-सेना हिन्दुस्तान का दुःख मिटायेगी

मैंने आशा की थी कि इस रैली में ५०० सैनिक आयेंगे। गुजरात में कहीं बोलते समय मैंने अपने इसी अन्दाज का उल्लेख किया था। किन्तु यहाँ बताया गया कि इस रैली में ८७० लोग हैं। फिर भी समस्त शान्ति-सैनिक यहाँ नहीं आये हैं। कुछ लोगों ने तय किया कि वे जिस काम में लगे हैं, उनके लिए उसीमें लगे रहना अच्छा है। इसलिए भी वे लोग यहाँ सम्मिलित नहीं हुए। जो नहीं आये, उन सबको ध्यान में रखकर देखा जाय, तो शान्ति-सैनिकों की संख्या लगभग एक हजार के आसपास पहुँच गयी है। जितनी संख्या के बारे में मैं सोच रहा था, उससे दुगुनी संख्या हो गयी है। जब मन निःशंक होता है, तब कार्य आगे बढ़ता ही है।

मैं आशा करता हूँ कि हिन्दुस्तान का दुःख मिटाने में यह छोटी-सी सेना कामयाब होगी। इस सेना में बूढ़े हैं, बहनें हैं और बीमार लोग भी हैं।

नेपाल की एक वहन भी इस शांति-सेना में दाखिल हुई है, यह वहुत खुशी की वात है। मैं उम्मीद करता हूँ कि हिन्दुस्तान और दुनिया का दुःख मिटाने का काम यह शांति-सेना करेगी। जिस प्रकार भूदान, ग्रामदान आदि का काम कुछ चला, उसके परिणामस्वरूप भूमि-समस्या आदि के वारे में दिमाग साफ हुआ और आगे का पथ प्रशस्त हुआ, उसी प्रकार इस काम से दूसरी राह खुल जायगी।

मेरी समस्या

यहाँ पर हम लोग इसलिए एकत्र हुए कि हम अपनी-अपनी समस्याएँ प्रस्तुत करें। मेरे सामने एक समस्या है, वही पहले पेश करूँ। मैं नहीं जानता कि उसका हल कैसे निकलेगा ? मैंने माना है कि शांति-सैनिकों को वीमार पड़ने का हक नहीं है। कोशिश तो मेरी भी रही है, पर लोग यह समझते हैं कि मैं शरीर के विषय में वहुत वेदरकार हूँ। वचपन में मैं जरूर वेदरकार था। उस समय ज्ञान-प्रधान वृत्ति थी। अतः दूसरे किसी विषय पर मेरा ध्यान ही नहीं जाता था और तव शरीर का ज्ञान भी कुछ कम ही था। ऐसे ही कुछ कारणों से वचपन में वेदरकारी थी। लेकिन इन दिनों मैं अपने शरीर के प्रति वेदरकार नहीं हूँ। मैं आज जो भी काम करता हूँ, वहुत सावधानी के साथ करता हूँ। अगर मैं वीमार होता हूँ, तो उसकी खवरें हिन्दुस्तानभर में पहुँचती हैं। उससे लोगों को भय भी लगता है और दुःख भी होता है। मैं यह समझता हूँ कि शान्ति-सैनिकों को और दूसरी चीजों का हक हो, लेकिन वीमार पड़ने का हक नहीं हो सकता। उनका जीवन समाज-सेवा के लिए अर्पित होता है। हम अपनी सावधानी से समाज-सेवा में विघ्न पैदा करें, तो वह हमारी पारमार्थिक अयोग्यता मानी जायगी।

अव आप अपनी समस्याएँ पेश कर सकते हैं। उन समस्याओं को हम भी सुनेंगे, आप भी सुनेंगे और सारे लोग मिलकर समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करेंगे।

[विनोवाजी के वाद और भी कुछ कार्यकर्ताओं ने अपने विचार प्रकट किये, समस्याएँ रखीं एवं प्रश्न भी रखे। शान्ति-सैनिकों की इस वाढ़ को देखकर

दोपहर में श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि "आप प्रश्न पूछें और उनका जवाब दिया जाय—इसके लिए यह अवसर नहीं है। आज सुबह जो कूच हुई, हम सब साथ रहे, परिचय हुआ—यही आज के लिए काफी है। फिर भी मैं इतना अवश्य कहना चाहता हूँ कि आज का दृश्य देखकर मुझे बोधगया का 'जीवनदान-आन्दोलन' याद आ रहा है। उस समय लोगों ने बिना आगा-पीछा सोचे और उस आन्दोलन की वस्तुस्थिति को समझे बिना ही अपने जीवनदान की घोषणा कर दी थी। वह स्थिति शान्ति-सेना के साथ न हो, इस बारे में हमें सावधानी रखनी चाहिए।"

श्री सत्यसेवक गद्रे तथा अन्य कार्यकर्ताओं ने भी अपना-अपना दृष्टिकोण उपस्थित किया। कार्यकर्ताओं के कई प्रश्नों पर प्रकाश डालते हुए विनोबाजी ने उस शिविर की परिसमाप्ति अपने 'प्रार्थना-प्रवचन' से की।]

शान्ति-सेना की समग्र दृष्टि

[विनोबा]

यहाँ इतने भाई बोल रहे थे, उसमें से कुछ भाव मैंने पकड़ लिये और उतने ही विषयों पर कुछ खुलासा करूँ, ऐसा सोचा है।

शान्ति-सैनिक योगयुक्त जीवन बितायें

सुबह मैंने कहा था कि शान्ति-सैनिक जो कुछ भी हक रखें, लेकिन बीमार पड़ने का हक न रखें। उसका बड़ा ही सुन्दर दार्शनिक उत्तर गद्रेजी ने दिया। उन्होंने कहा कि वेदान्त कहता है कि शरीर से तो हम पृथक् हैं और बीमार पड़ेगा, तो शरीर ही पड़ेगा। अतः उससे हमारा क्या सम्बन्ध है? किन्तु वेदान्त यदि इतना आसान होता, तो वह हमें पहले से ही सध जाता। वेदान्त कहता है कि जहाँ तुम देह से भिन्न हो, वहाँ उसका अर्थ कितना गहरा जाता है, यह समझने की जरूरत है। जिसने यह पहचाना कि मैं देह से भिन्न हूँ, उसकी देह स्वस्थ ही रहेगी, यह समझना चाहिए। जब हम बीमार पड़ते हैं, तो देह के साथ कुछ-न-कुछ एकरूप हो जाते हैं, कुछ आसक्ति होती है। गलत काम करते हैं, इसलिए बीमार पड़ते हैं। बीमार पड़ना ही देहासक्ति का लक्षण है। देह से अलग हो जायँ, तो बीमारी ही खतम हो जाय।

दूसरे एक भाई ने कहा कि मुझे बीमारी में अच्छे विचार सूझे हैं। लेकिन वह बीमारी की नहीं, भगवान् की कृपा से है। अगर ऐसा होता, तो किसी कॉलेज या हाईस्कूल की जरूरत ही न पड़ती। लोग बीमार पड़ते और विचार सूझते जाते। जिस पर भगवत्-कृपा होती है, उसे आपत्ति, संकट से भी लाभ हो सकता है। मैंने जो कहा था, उसमें गम्भीर आशय यह था कि शांति-सैनिकों को अपनी जिम्मेवारी महसूस करनी चाहिए कि वे निरंतर सेवक हैं और जैसे सूर्यनारायण ने एक दिन भी दुनिया को धोखा नहीं दिया, वैसे ही हमें भी निरंतर सेवा में उपस्थित रहना होगा। इसलिए हमारा जीवन समत्वयुक्त और शान्त रहे। अतिरेक किसी प्रकार का नहीं करें, जिससे शरीर में अनारोग्य होकर काम रुक जाय। इस तरह मैं शांति-सेना का मूलभूत विचार ही बता रहा था कि शांति-सेना के मनुष्य को योगयुक्त जीवन बनाना चाहिए।

उपवास हमारे लिए लागू नहीं

यहाँ शांति-सैनिकों के विषयों में उपवास का भी एक विषय उपस्थित किया गया था। अंग्रेजी में कहावत है कि 'जहाँ फरिश्ते पैठने से डरते हैं, वहाँ मूढ़ मनुष्य बेदरकार प्रवेश करना चाहते हैं।' उपवासादि प्रश्न ऐसे हैं, जो हम सब लोगों को लागू नहीं हैं। मैं इसका आत्यंतिक निषेध नहीं करता। उसका अपना एक स्थान है, यह मैं जानता हूँ। साधारणतः यह समझने में कोई हर्ज नहीं कि वह हम लोगों के लिए नहीं है। मान लीजिये, मुझमें प्रेम है, समत्वयुक्त चिन्तन कैसे किया जाय, यह जानता हूँ, जनता की सेवा कर रहा हूँ और अपने को दुर्जन के सामने उपस्थित करता हूँ। फिर यदि मेरे प्रेम, समत्ववाद या सेवा-भाव का उन पर परिणाम न होता हो, तो वह उपवास से कैसे होगा ? उपवास में इनसे बढ़कर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो मेरे प्रेम, समत्व-भाव या सेवा-भाव में नहीं है ? उपवास से दबाव पड़ता है, ऐसी कल्पना करें, तो मैं मानता हूँ कि वह सत्याग्रह नहीं, वह गलत ही काम है। परन्तु उपवास ही जिस हालत में प्रेम, करुणा, समत्व का चिह्न होगा, उस हालत में उसका परिणाम होगा। उस हालत में वह उपयुक्त माना जायगा। भक्त-जन ताली बजाते हैं, तो क्या हम भी तालियाँ बजाने से भक्त-जन बन जाते हैं ? ताली बजाने से भक्ति नहीं होती, भक्ति के

चिह्न के तौर पर जब ताली बजायी जाती है, तभी भक्ति का रूप प्रकट होता है। इसलिए ताली बजाने को ही भक्ति का टेकनिक नहीं माना जा सकता। इसी तरह भक्त नाचते और गाते भी हैं। किन्तु उनके नाचने और दूसरों के नाचने में बहुत फर्क होता है। अतः जब प्रेम, सत्य, करुणा आदि का उपवास के रूप में प्रकाशन होता हो, तो वह चीज मान्य है, पर भक्ति के तौर पर ही। उपवास बहुत गहरा विषय है, लेकिन दबाव डालने का प्रकार हो सकता है।

देहासक्ति कैसे मिटेगी ?

गद्रेजी ने दूसरी एक बात यह कही कि हममें शरीर की आसक्ति पड़ी है। मृत्यु नजदीक है, मरने का डर है। इसीलिए आमरण उपवास तो नहीं, किन्तु २०-२५ उपवास करें, जिससे जीवन खतरे में आ जाय, मृत्यु नजदीक आ जाय, तो थोड़ी निर्भयता आयेगी और शरीर की आसक्ति भी जायगी। लेकिन मैं मानता हूँ कि इस तरह देह की आसक्ति न जायगी। देह की आसक्ति या भय इस देह से नहीं होता। कुछ लोग आत्म-हत्या करते हैं, तो क्या वे महात्मा हो जाते हैं ? देहासक्ति छोड़ें और निर्भय बनें, यह बहुत ही गहरी चीज है। वह काया-क्लेश आदि से नहीं होता है। जैन लोगों में उपवास करके कुछ लोग मरते हैं। जैन परिभाषा में उसे 'संथारा' कहते हैं। वे बिना कारण आमरण उपवास करते हैं, इसलिए कि हमारे जो पाप हों, वे जीर्ण हो जायँ। पूर्वकर्म मुक्ति में बाधक हों, तो उसे जीर्ण करने की वृत्ति होती है। अपनी तपस्या से अपने कर्मों को काट डालने के विचार को 'निर्जरा' कहते हैं। मैंने ऐसी जैन बहनें देखी हैं, जो 'संथारा' की बात कहती हैं, तो उन्हें कोई नहीं रोकता। जैन-समाज इसमें धन्यता मानता है! मुझे तो यहाँ तक शंका है कि जब खाने की इच्छा हो, तो वे लोग कहेंगे कि जब इतना कर लिया है, तो खाना ठीक नहीं। उससे अपकीर्ति होगी और व्रत में बाधा होगी। इससे कोई भयमुक्तता होती है या देहासक्ति छूटती है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यह चीज ज्ञान से ही सध सकती है। अज्ञानावस्था में रहकर भी ज्ञान का जैसा ही परिणाम लाने की दूसरी युक्ति निकालें, यह सम्भव नहीं। जो कार्य ज्ञान से होता है, वह दूसरी किसी चीज से नहीं हो सकता। अतः उपवास की यह कल्पना आप अपने दिमाग

से निकाल दें, तो अच्छा हो। उपवास आसान है, लेकिन संयमपूर्वक आहार कठिन है। मौन आसान है, लेकिन संयमपूर्वक बोलना कठिन है। दस-पंद्रह उपवास कर लिये, तो कठिन काम कर लिया, ऐसा भी नहीं। हम संयम से खाते हैं या नहीं, यही महत्व की बात है। सत्याग्रह के विचार में उपवास की बात बार-बार आती है और चिंतन में कुछ मुश्किल पैदा करती है।

पक्षातीतता और पक्षमुक्तता

पक्षातीत और पक्ष-मुक्त के प्रश्न पर जो चर्चा चली है, वह चित्त में उलझन पैदा करती है। कोई यह न माने कि लोक-सेवकों की निष्ठा में कोई परिवर्तन करना होगा। लोक-सेवक की निष्ठा में पक्ष-मुक्ति आवश्यक है और वह अपने स्थान पर ठीक ही है; फिर भी बहुत से लोग ऐसे हैं, जो नित्य-निरंतर जीवन और मन से सेवा करते हुए भी मोहवश या पूर्वसंस्कारवश किसी संस्था के साथ जुड़े भ्रातृ-भाव को तोड़ नहीं सकते। उनके लिए कुछ सहूलियत होती है, क्योंकि पक्षातीत भूमिका वे दिखा सकते हैं। मुझे कई बार भ्रम हुआ है कि सामने दिखाई पड़नेवाला चन्द्र चतुर्दशी का है या पूर्णिमा का। बिल्कुल गोल-चक्र दीखता है, इसलिए निर्णय करना कठिन होता है। किंतु चतुर्दशी का चन्द्र पक्षातीत होगा और पूर्णिमा का चन्द्र पक्ष-मुक्त। पक्ष-मुक्त और पक्षातीत में इतना ही अंतर है। ऐसे कुछ भाई हैं, जो कल ही आकर कह गये कि मेरा नाम शांति-सैनिक में लिख लें। वे तो हमारे कार्यक्रम में लगे ही हैं। सिर्फ पक्ष-मुक्ति की शर्त ही उन्हें हमसे अलग रखती थी। अतः पक्षातीत की इस नयी व्याख्या से निश्चय ही वे हमारे साथ आ सकते हैं। हम उन पर टीका नहीं कर रहे हैं। गोकुलभाई जैसों का नाम शांति-सेना में प्रवेश करवाया जाता है, तो वह गलत नहीं, उचित ही है।

प्यारेलालजी ने बापू का एक वाक्य अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है कि "मैं 'योजना' और 'संगठना' के बीच 'योजना' पसंद करूँगा। संगठना अहिंसा की कसौटी है।" इससे वे क्या कहना चाहते थे, यह समझना चाहिए। हिंसावाले संगठन करने में कुशलता हासिल करते हैं। पक्की और मजबूत संगठना कर उसमें शासन, नियमों के बन्धन, आदेश आदि की सारी योजनाएँ करते हैं, जिससे

हिंसा में रक्षण की वह शक्ति आ जाती है, जो वास्तव में उसमें नहीं रहती। फिर भी अहिंसा में इतनी मजबूत संगठना बनती है, जितनी संगठना हिंसा कभी कर ही नहीं सकती। अहिंसा की संगठना हिंसा के बराबरी की ही नहीं, बल्कि इसे भी मात कर सकती है, ऐसा दिखा दें, तो उसमें अहिंसा की कसौटी हो जाती है। जबरदस्ती से की गयी आज्ञा का पालन लोग करते अवश्य हैं, लेकिन वह भावपूर्वक और अक्षरपूर्वक पालन नहीं होता, जितना कि गुरु की सलाह का होता है। उनकी सलाह का जितना चमत्कार और जितना असर लोगों पर होता है, उतना हिंसाकारी की हिंसायुक्त आज्ञा से नहीं होता। अगर हमारे भाव और वाणी शुद्ध हैं, तो नम्रतापूर्वक दी गयी सलाह सहज ही हृदय में पैठ जायगी, उससे ज्यादा प्रेरणा मिल सकेगी। इस तरह अहिंसा के पास जो तरकीबें हैं, वे हिंसा से ज्यादा कारगर हो सकती हैं। संगठना करने में हम ऐसा दिखा दें, तभी हमारी अहिंसा की कसौटी हो सकती है।

विरोधी से एकरूप बनने का यत्न करें

यह कैसे होगा? यह इस आज्ञा-शक्ति से नहीं हो सकता। यदि हम एक साथ बैठें, मिलकर चर्चा करें और उसमें जो कुछ निर्णय निकालें, वह लोगों को आज्ञा से भी बढ़कर शिरोधार्य लगेगा। यह कैसे होगा, इस पर जब सोचता हूँ, तो ईसा का वाक्य याद आ जाता है कि "तुझसे जो मतभेद रखता है, उससे तू जल्द-से-जल्द एकरूप हो जा।" याने 'एडजस्टमेंट' करने की यह कुशलता अहिंसा में होनी चाहिए। तभी यह विचार सबको शिरोधार्य हो सकता है। मान लीजिये कि यहाँ एक हजार शान्ति-सैनिक हैं। पाँच हजार लोगों के लिए एक व्यक्ति माना जाय, तो ये हजार व्यक्ति पचास लाख लोगों की सेवा कर सकते हैं, उनमें शान्ति-स्थापन कर सकते हैं। फिर यदि शान्ति-सैनिकों में थोड़ी-सी भी शुद्धि हो और जरा कुछ प्रेम की कला हो, तो एक शांति-सैनिक दस हजार लोगों की भी सेवा कर सकता है। इस तरह एक करोड़ जनता की सेवा करने और शान्ति कायम रखने के लिए इतने सेवक पर्याप्त हो सकते हैं। लेकिन मिलकर काम करने का यह माद्दा हममें आना चाहिए। जैसे सभी शब्द अपने-अपने विषय में प्रमुख होते हुए भी वाक्य-विन्यास के समय एक को मुख्य मान

बाकी अपना गौण भाव स्वीकार कर सुन्दर वाक्य बना देते हैं—अपनी प्रमुखता का अड़ंगा डाल साहित्य को बिगाड़ नहीं देते—वैसे ही हम अपने को 'सर्वाडिनेट' करना सीखें, दूसरे के मातहत काम करें। यहाँ यह जरूरी नहीं है कि तुम मेरे ही मातहत काम करो। यह है बापू के वाक्य का अर्थ।

एकाग्रता और एकांगिता के अर्थ

अब एकांगिता और एकाग्रता की बात देखिये। हम एकाग्रता चाहते हैं, एकांगिता नहीं। दोनों में फर्क क्या है, यह तो हम जानते हैं, लेकिन उसे शब्दों में रखने की बात है। एकाग्रता वह है, जिसके अन्दर समग्रता निहित होती है। मान लीजिये, मैंने किसीका हाथ पकड़ा। अगर मैं ऐसा मानूं कि मैंने सिर्फ उसका हाथ ही पकड़ा, तो यह एकांगिता है। लेकिन अगर यह मानूं कि मैंने उसका हाथ ही नहीं, बल्कि उस मनुष्य को ही पकड़ लिया, तो उसमें समग्रता आ जाती है। इसे ही एकाग्रता कहते हैं। एक चीज हाथ में पकड़ लें और उससे सारे ग्राम में ग्राम-स्वराज्य हो, ऐसी कुशलता एकाग्रता में है। पूछा जाता है कि ग्रामदानी गाँव में जायँ, तो आरम्भ कहाँ से करें, दूकान से, खादी से या सफाई से ? इस पर जवाब दिया जाता है कि "अपनी-अपनी रुचि के अनुसार, ज्यादा लोगों की इच्छा जिस प्रकार की हो, उसके अनुसार किया जाय।" पर वास्तव में इसका जवाब यही है कि हममें जो शक्ति होती है, उसमें से समग्र गाँव की सेवा होती है। अगर तुममें प्रबोधन की शक्ति हो, तो तुम उस ग्रामदानी गाँव में अध्यापन के काम से शुरू करो। ग्राम के जीवन के हर पहलू को किस प्रकार व्यापक बना सकते हैं, इसकी युक्ति सधनी चाहिए। एकांगिता में एक अंग हाथ में आता है, तो एकाग्रता में अंगी हाथ में आता है।

साम्य करुणा और विवेकपूर्वक ही हो

कोरापुट में कुछ लोगों को सर्वोदय-पात्र में से ३० से ५० रुपये के अन्दर तनख्वाह दी जाती है। उसी क्षेत्र में दूसरे ऐसे भी कार्यकर्ता हैं, जिन्हें हम 'वेतन-भोगी' कह सकते हैं। वे कोई ५०० रुपया नहीं लेते। उन्हें १५० रुपये तक मिलता है। वे कार्यकर्ता और ये कार्यकर्ता, दोनों समाज के सामने आते और कहते हैं कि हम दोनों एक ही हैं। तब समाज पूछता है कि "आपको तो बहुत

पैसा मिलता है, फिर आप हमारे पास से पैसा क्यों इकट्ठा करते हैं ?" निःसन्देह जहाँ एक ही विचार के अनेक सेवक बिल्कुल अलग-अलग प्रकार से रहते हैं, वहाँ इस प्रकार का 'कन्फ्यूजन' (भ्रम) पैदा होना लाजिमी है। इसके लिए दो बातें करनी चाहिए। पहली बात यह है कि हम जो युग लाना चाहते हैं, वह साम्ययोग-युग बने। यह साम्य करुणामूलक और विवेकपूर्ण होना चाहिए। यह विवेक हमें और समाज, दोनों को होना चाहिए। मान लीजिये कि मैं अविवाहित हूँ और मेरा दूसरा मित्र विवाहित है। उसका खर्चा ज्यादा होगा ही। अतः उसे ज्यादा मिलना चाहिए और मैं अविवाहित हूँ, इसलिए मुझे कम मिलना चाहिए। यही है करुणा और विवेक की बात।

वेद में एक मन्त्र आता है, जिसका अर्थ है कि मैं अकेला सत्यरूपी रमणीय पर्वत की चोटी पर बैठा था। इतने में प्रेमी मित्र चढ़कर ऊपर आये। मैं वहाँ बैठा हूँ, सुन्दर दृश्य देख रहा हूँ, सुन्दर हवा लग रही है। लेकिन मेरे हृदय की आवाज ने कहा कि यह मेरे मित्र, जो वत्सल बाल-बच्चेवाले हैं, मेरी मदद के लिए चिल्ला रहे हैं। अतः मैं करुणा से नीचे उतर आता हूँ। यह अवतार की कल्पना है। करुणा एक वस्तु है और उसीके कारण महापुरुष दुनिया से मुक्त होते हैं और दुनिया की सेवा में लगे रहना पसंद करते हैं। कोई अपरिग्रही यदि किसी परिग्रही के लिए प्रेम, करुणा और विवेक न रखे, तो उसका अपरिग्रह एकांगी हो जायगा। समाज को सिखाना होगा कि समाज में तारतम्य तो रहेगा ही, फिर भी यह साम्ययोग समझना ही होगा कि हम सब एक हैं। इसी वृत्ति से रहकर भी हम यह बात समाज को समझा सकते हैं। दूसरी बात यह भी हो सकती है कि विभिन्न सेवकों की आमदनी के साधनों को एकत्र कर मिल-बाँटकर खायें। यद्यपि उसमें भी कम-बेशी बाँटना ही होगा, लेकिन एकत्र कर बाँटने का माद्दा ला सकें, तो अच्छा ही है।

कार्यकर्ताओं को क्या-क्या सिखाया जाय ?

जयप्रकाशजी ने कहा कि हमारा यह कार्य अद्भुत हो रहा है, ऐसा मानने की जरूरत नहीं है। ऐसी जरूरत है भी और नहीं भी। आज जो घटना घटी, वह अद्भुत है भी और नहीं भी। हम इस काम की ओर

अतिरंजित होकर देखें, तो नाकामयाब होंगे। शांति के क्षेत्र में हमने कहने-सुनने लायक कुछ किया नहीं है, उस हालत में हमें संशोधन की जरूरत रहेगी। हम थोड़े-से ही प्रफुल्लित हो जायँ, तो वह आनन्द भी शांति-साधना में बाधक हो जायगा। जैसे विषाद बाधक होता है, वैसे आनन्द भी हो जायगा। इस दृष्टि से शांति की आवश्यकता है, इसमें कोई शिकायत नहीं है। हम भी कुछ हैं, इस प्रकार के अनुभव का भी एक मूल्य है। उससे उत्थान होता है। अतः उस आनन्द को थोड़े में समाप्त करना चाहिए और गम्भीरता से सोचना चाहिए, इसके लिए संशोधन करना चाहिए। इसके लिए शिक्षण की आवश्यकता है। सर्व-सेवा-संघ शिक्षण का काम सोचे, योजना करे। शिक्षण के लिए विस्तृत योजना बनायी जा सकती है।

कुछ चीजों की शक्तियों का अभी हमें भान नहीं हुआ है। बोलने की शक्ति का भान हुआ है, मगर मौन की शक्ति का भान कम हुआ है। मौन में भी बड़ी शक्ति होती है। ऐसे कई प्रसंग आते हैं कि जहाँ मौन होने पर चित्त पर बहुत अच्छा असर होता है। उससे मनुष्य सँभल जाता है। जानकीबाई ने जमनालालजी का वर्णन करते हुए कहा था कि वे मेरे जैसा व्याख्यान नहीं दे सके; क्योंकि उनके पीछे डर लगा रहता था कि मैं जैसा बोलूंगा, वैसा करना पड़ेगा। यह दहशत जिनके पीछे हो, वे वक्ता बन नहीं सकते। मौन का यह विशेष प्रयोजन है। हमें मौन की शक्ति संशोधित करनी होगी।

जहाँ भक्ति के साथ संगीत जुड़ जाता है, वहाँ भी शांति की स्थापना हो सकती है। इसका भी संशोधन करना चाहिए। उड़ीसा में मैंने कहा था कि नाचो, गाओ, बजाओ और गाँव में जाओ, तो तुम्हें देखते-देखते ग्रामदान मिल जायगा। अतः हम जो शिक्षण दें, उसमें भक्तियुक्त संगीत का, संगीतयुक्त भक्ति का शिक्षण दिया जाय।

एक और विचार, जो सहज ही आ जाता है, वह यह है कि हमारी जितनी सेवाएँ चलती हैं, वे कर डालने की होती हैं। अगर हम कोई काम कर रहे हों, तो कहते हैं कि "इतना काम कर डालता हूँ और फिर आता हूँ।" लेकिन अगर कोई खाता हो, तो यही कहेगा कि "इतना खा लेता हूँ, तब करता हूँ।" यह कभी नहीं कहता कि "खा डालता हूँ", क्योंकि खाना तो असली चीज है। तात्पर्य यह कि

आज जो वृत्ति है, वह सेवा 'कर डालने' की है, 'करते रहने की नहीं'। एक प्रसंग आया, तो सेवा कर डाली। 'सेवा करते हैं', इसकी विशेषता हमें मालूम ही नहीं, पर वही मालूम होनी चाहिए। ध्यान रहे कि हम कितनी ही सेवा क्यों न करें, बचपन में समाज ने हमारी जो सेवा की, उससे तुलना करने पर हम पर ही उसका ऋण रहेगा। याने समाज ने हम पर जो उपकार किये हैं, उनका ऋण चुकाते-चुकाते भी शेष रहता ही जाता है और आखिर उससे क्षमा माँगकर ही हम उसके उपकारों से मुक्त हो सकते हैं। कार्यकर्ताओं के शिक्षण में चिन्तन, सेवा कैसे की जाय, इसका भी ज्ञान देना होगा। 'सेवा कर डालना' नहीं, 'निरंतर करते रहना'—इसका शिक्षण देना होगा।

व्यवस्था का शास्त्र भी हम लोगों में नहीं है। जब मैं अव्यवस्था देखता हूँ, तो मुझे जरा भी गुस्सा नहीं आता। क्योंकि मैं समझता हूँ कि वह हमारा स्वभाव ही है। लेकिन कहीं व्यवस्था दीखती है, तो मैं प्रसन्न हो जाता हूँ। प्रार्थना में कुछ लोग देरी से आते हैं और आकर रास्ते में ही बैठ जाते हैं। अपने बाद के आनेवालों के बारे में कुछ सोचते ही नहीं। इसलिए जरा दूर जाकर कोने में बैठना चाहिए। इस तरह स्पष्ट है कि हमें व्यवस्था का शास्त्र मालूम नहीं है। अगर हम अपना इतिहास देखें, तो पता चलेगा कि हमारी बड़ी-बड़ी सेनाएँ भी पाँच-पाँच हजार सैनिकों की सेनाओं के सामने इसीलिए हार गयीं कि हममें व्यवस्था और योजना-शक्ति नहीं थी। विपक्षी की सेना व्यवस्थित और हमारी सेना अव्यवस्थित होती थी। इसलिए हमें व्यवस्था का शास्त्र सीखना होगा। हम अपने कार्यकर्ताओं को जो शिक्षण देंगे, उसमें व्यवस्था-शास्त्र का भी अन्तर्भाव करना होगा।

चिन्तन की बात लीजिये। चिन्तन में क्षोभ नहीं होना चाहिए। ऐसा भास हो कि हमारे ऊपर हमला हो रहा है, तो शान्ति से चिन्तनपूर्वक उसका उत्तर देना चाहिए। उसमें क्षोभ नहीं होना चाहिए। विज्ञान के जमाने में जो क्षोभयुक्त चिन्तन करेगा, वह मार ही खायेगा। इस अक्षोभी चिन्तन के लिए एक अक्षोभी चिन्तनशास्त्र बना है। खुशी की बात है कि हमारे पास व्यवस्था-शास्त्र न होने पर भी चिन्तन-शास्त्र अवश्य है, जो विदेशों में नहीं है। पश्चिम के विकसित चिन्तन-शास्त्र से तुलना कर मैं कहता हूँ कि चिन्तन-शास्त्र का हमारे

देश में बहुत ही अच्छा विकास हुआ है। उसे यहाँ प्रमाण-शास्त्र कहते हैं। मैंने ऐसी अच्छी पद्धति दूसरे देशों के चिन्तन-शास्त्र में नहीं देखी। अवश्य ही इसमें कभी-कभी विरोध होता है, पर वह इसीलिए होता है कि हम एकांगी बोलते हैं। हमारे मन में एक भाव होता है, शब्दों में दूसरा और समझनेवाला तीसरा ही भाव समझ लेता है। इसके मूल में चिन्तन-शास्त्र का ज्ञान न होना ही एकमात्र कारण मालूम होता है।

राजस्थान से दो विशेष माँगें

ये कुछ बातें सरसरी तौर पर आपके सामने रखीं। अब यह विचार कीजिये कि राजस्थान से हमारी क्या माँग है? हमें राजस्थान के तीनों गुणों से युक्त तीन हजार सेवक चाहिए। इन तीन गुणों में एक तो भक्ति है, जिसका प्रतीक मीरा है। दूसरा पराक्रम है, जिसका प्रतीक राणा प्रताप है और तीसरा व्यवस्था-शास्त्र है, जिसके प्रतीक मारवाड़ी हैं। ये तीन गुण हैं इस प्रदेश के। इन तीनों गुणों से युक्त तीन हजार शांति-सैनिक मैं राजस्थान से माँग रहा हूँ। सरकार ने राजस्थान के मामूली बन्दोबस्त के लिए तैंतीस हजार पुलिस रखी है। मैं चाहता हूँ कि यहाँ तीन हजार शान्ति-सैनिक बनें और उन तैंतीस हजार सैनिकों को दूसरा कोई काम दिया जाय। उन्हें मुक्ति दी जाय और तीन हजार सेवकों को उनकी जगह दी जाय। यहाँ के मुख्यमंत्री से जब यह पूछा गया कि "क्या तीन हजार शांति-सैनिकों की माँग ज्यादा है?" तो उन्होंने कहा कि "यह माँग कोई ज्यादा नहीं है।" ध्यान रहे कि ये शब्द आपके मुख्यमंत्री के हैं, जो बिना हिसाब के बोल नहीं सकते। अगर हम ठीक तरह से लोगों के पास पहुँचें, तो तीन गुणों से युक्त तीन हजार सेवक प्राप्त करना असंभव नहीं है।

दूसरी मेरी माँग यह है, जिसे मैंने बहुत बार दोहराया है कि मुझे कुल-के-कुल ग्राम ऐसे चाहिए, जहाँ सर्वोदय-पात्र हों। मुझे खुशी है कि कुछ गाँववालों ने यह माँग पूरी की है और सर्वोदय-पात्र लाकर ही मेरा स्वागत किया है। ये दो मेरी विशेष माँगें हैं। यहाँ के भाई विचार करें और जो कर सकते हैं, वह अवश्य करें।

सर्वोदय तथा भूदान-साहित्य

(विनोबा)

धम्मपद	२)
गीता-प्रवचन	१।)
शिक्षण-विचार	१॥)
सर्वोदय-विचार स्वराज्य-शास्त्र	१)
कार्यकर्ता-पाथेय	॥)
त्रिवेणी	॥)
साहित्यिकों से	॥)
भूदान-गंगा (छह खंड)	६)
ज्ञानदेव-चिन्तनिका	१)
लोकनीति	१।)
साम्यसूत्र	।=)
स्त्री-शक्ति	॥।)
भगवान् के दरबार में	=)
गाँव-गाँव में स्वराज्य	=)
सर्वोदय के आधार	।)
एक बनो और नेक बनो	=)
गाँव के लिए आरोग्य-योजना	=)
व्यापारियों का आवाहन	।)
ग्रामदान	॥।)
गुरुबोध	१॥)
भाषा का प्रश्न	।)
जनक्रान्ति की दिशा में	।)
जय जगत्	।)
सर्वोदय-पात्र	।)
शान्ति-सेना	॥)
आदिवासियों से	।)

(धीरेन्द्र मजूमदार)

समग्र ग्राम-सेवा की ओर	३॥)
शासनमुक्त समाज की ओर	॥)
नयी तालीम	॥)
बुनियादी शिक्षा-पद्धति	॥)
ग्रामस्वराज : क्यों और कैसे ?	=)॥

(श्रीकृष्णदास जाजू)

संपत्तिदान-यज्ञ	॥)
व्यवहार-शुद्धि	।=)

(जे० कॉ० कुमारप्पा)

गाँव-आन्दोलन क्यों ?	२॥)
गांधी-अर्थ-विचार	१)
स्थायी समाज-व्यवस्था	२॥)
स्त्रियाँ और ग्रामोद्योग	।)
ग्राम-सुधार की एक योजना	॥।)

(दादा धर्माधिकारी)

सर्वोदय-दर्शन	३)
साम्ययोग की राह पर	।)
मानवीय क्रांति	।)
क्रांति का अगला कदम	।)

(महात्मा भगवानदीन)

सत्य की खोज	१॥)
चिंतन के क्षणों में	॥)
माता-पिताओं से	।=)
बालक सीखता कैसे है ?	॥)

(अन्य लेखक)

नक्षत्रों की छाया में	१॥)

चलो, चलें मँगरौठ ।।।)
भूदान-गंगोत्री २।।)
भूदान-आरोहण ।।)
श्रम-दान ।)
धर्म-सार ।)
स्थितप्रज्ञ-लक्षण ।)
ग्रामदान क्यों ? १।)
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ? १।।)
यात्रा के पथ पर ।।)
सफाई : विज्ञान और कला ।।।)
सुन्दरपुर की पाठशाला ।।।)
गो-सेवा की विचारधारा ।।)
गो-उपासना ।)
पावन-प्रसंग ।।)
समाजवाद से सर्वोदय की ओर ।=)
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र ।)
सर्वोदय-संयोजन १)
गांधी : एक राजनैतिक अध्ययन ।।)
सामाजिक क्रांति और भूदान ।-)
गाँव का गोकुल ।)
शोषण-मुक्ति और नव समाज ।।=)
भूदान से ग्रामदान =)
पूर्व-बुनियादी ।।)
सत्संग ।।)
क्रांति की राह पर १)
क्रांति की ओर १)
गांधीजी क्या चाहते थे ? ।।)
भूदान-पोथी ।)

सर्वोदय-सम्मेलन-रिपोर्ट, कांचीपुरम् १)
सर्वोदय-सम्मेलन-रिपोर्ट, कालड़ी १)
सर्वोदय-सम्मेलन-रिपोर्ट, पंढरपुर १)
ताई की कहानियाँ ।)
भूदान का लेखा (आँकड़ों में) ।)
धरती के गीत -)
भूदान-लहरी -)
भूदान-यज्ञ-गीत -)
विनोबा-संवाद ।=)
सत्याग्रही शक्ति ।-)
जीवन-परिवर्तन (नाटक) ।)
कुलदीप (नाटक) ।)
प्राकृतिक चिकित्सा-विधि १।।)
बापू के पत्र १।)
स्मरणांजलि १।।)
कुष्ठ-सेवा १।)
मेरा जीवन-विकास ।।)
प्यारे बापू (तीन भाग) १।=)
विकेंद्रित अर्थ-व्यवस्था ।।=)
तपोधन विनोबा १।।)
बुनाई ३)
हिमालय की गोद में जयप्रकाश ।।।)
किशोरलाल भाईकी जीवन-साधना २)
गुजरात के महाराज २)
अन्तिम झाँकी १।।)
ग्राम-स्वराज्य ।।-)
सुधरे हुए खेती-औजार ।।)
क्रांति की पुकार ।)
ग्रामराज क्यों ? ।=)
घरेलू कताई की आम बातें १।)